1. श्रीमद-भागवत स्तवः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

हे प्रभु, हे वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, हे सर्वव्यापी भगवान्, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। मैं भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे परम सत्य हैं और व्यक्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के समस्त कारणों के आदि कारण हैं। वे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सारे जगत से अवगत रहते हैं और वे परम स्वतंत्र हैं, क्योंकि उनसे परे अन्य कोई कारण है ही नहीं। उन्होंने ही सर्वप्रथम आदि जीव ब्रह्माजी के हृदय में वैदिक ज्ञान प्रदान किया। उन्हीं के कारण बड़े-बड़े मुनि तथा देवता उसी तरह मोह में पड़ जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि में जल या जल में स्थल देखकर कोई माया के द्वारा मोहग्रस्त हो जाता है। उन्हीं के कारण ये सारे भौतिक ब्रह्माण्ड, जो प्रकृति के तीन गुणों की प्रतिक्रिया के कारण अस्थायी रूप से प्रकट होते हैं, वास्तविक लगते हैं जबकि ये अवास्तविक होते हैं। अतः मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो भौतिक जगत के भ्रामक रूपों से सर्वथा मुक्त अपने दिव्य धाम में निरन्तर वास करते हैं। मैं उनका ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे ही परम सत्य हैं।(१.१.१)

2. श्री सुत स्तवः

सूत उवाच
यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु- स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २॥

श्रील सूत गोस्वामी ने कहा : मैं उन महामुनि (शुकदेव गोस्वामी) को सादर नमस्कार करता हूँ जो सबों के हृदय में प्रवेश करने में समर्थ हैं। जब वे यज्ञोपवीत संस्कार अथवा उच्च जातियों द्वारा किए जाने वाले अनुष्ठानों को सम्पन्न किये बिना संन्यास ग्रहण करने चले गये तो उनके पिता व्यासदेव उनके वियोग के भय से आतुर होकर चिल्ला उठे, ‘‘हे पुत्र,’’ उस समय जो वैसी ही वियोग की भावना में लीन थे, केवल ऐसे वृक्षों ने शोकग्रस्त पिता के शब्दों का प्रतिध्वनि के रूप में उत्तर दिया।(१.२.२)

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक- मध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥

मैं समस्त मुनियों के गुरु, व्यासदेव के पुत्र (शुकदेव) को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने संसार के गहन अंधकारमय भागों को पार करने के लिए संघर्षशील उन निपट भौतिकतावादियों के प्रति अनुकम्पा करके वैदिक ज्ञान के सार रूप इस परम गुह्य पुराण को स्वयं आत्मसात् करने के बाद अनुभव द्वारा कह सुनाया।(१.२.३)

3. श्री कुन्ती स्तवः

कुन्त्युवाच
नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥ १८ ॥

श्रीमती कुन्ती ने कहा : हे कृष्ण, मैं आपको नमस्कार करती हूँ, क्योंकि आप ही आदि पुरुष हैं और इस भौतिक जगत के गुणों से निर्लिप्त रहते हैं। आप समस्त वस्तुओं के भीतर तथा बाहर स्थित रहते हुए भी सबों के लिए अदृश्य हैं।(१.८.१८)

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् ।
न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥ १९ ॥

सीमित इन्द्रिय-ज्ञान से परे होने के कारण, आप ठगिनी शक्ति (माया) के पर्दे से ढके रहनेवाले शाश्वत अव्यय तत्तव हैं। आप मूर्ख दर्शक के लिए ठीक उसी प्रकार अदृश्य रहते हैं, जिस प्रकार अभिनेता के वस्त्र पहना हुआ कलाकार पहचान में नहीं आता।(१.८.१९)

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥ २० ॥

आप उन्नत अध्यात्मवादियों तथा आत्मा एवं पदार्थ में अन्तर करने में सक्षम होने से शुद्ध बने विचारकों के हृदयों में भक्ति के दिव्य विज्ञान का प्रसार करने के लिए स्वयं अवतरित होते हैं। तो फिर हम स्त्रियाँ आपको किस तरह पूर्ण रूप से जान सकती हैं ?(१.८.२०)

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २१ ॥

अत: मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करती हूँ, जो वसुदेव के पुत्र, देवकी के लाडले, नन्द के लाल तथा वृन्दावन के अन्य ग्वालों एवं गौवों तथा इन्द्रियों के प्राण बनकर आये हैं।(१.८.२१)

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ २२ ॥

जिनके उदर के मध्य में कमलपुष्प के सदृश गर्त है, जो सदैव कमल-पुष्प की माला धारण करते हैं, जिनकी चितवन कमल-पुष्प के समान शीतल है और जिनके चरणों (के तलवों) में कमल अंकित हैं, उन भगवान् को मैं सादर नमस्कार करती हूँ।(१.८.२२)

यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता ।
विमोचिताहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ २३ ॥

हे हृषीकेश, हे इन्द्रियों के स्वामी तथा देवों के देव, आपने दीर्घ काल तक बन्दीगृह में बन्दिनी बनाई गई और दुष्ट राजा कंस द्वारा सताई जा रही अपनी माता देवकी को तथा अनवरत विपत्तियों से घिरे हुए मेरे पुत्रों समेत मुझको मुक्त किया है।(१.८.२३)

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शना-दसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।
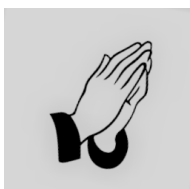
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥ २४ ॥

हे कृष्ण, आपने हमें विषाक्त भोजन से, भीषण अग्नि-काण्ड से, मानव-भक्षीओं से, दुष्ट सभा से, वनवास-काल के कष्टों से तथा महारथियों द्वारा लड़े गये युद्ध से बचाया है। और अब आपने हमें अश्वत्थामा के अस्त्र से बचा लिया है।(१.८.२४)

विपदः सन्तु ताः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५ ॥

मैं चाहती हूँ कि ये सारी विपत्तियाँ बारम्बार आयें, जिससे हम आपका दर्शन पुन: पुन: कर सकें, क्योंकि आपके दर्शन का अर्थ यह है कि हमें बारम्बार होने वाले जन्म तथा मृत्यु को नहीं देखना पड़ेगा। (१.८.२५)

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥ २६ ॥

हे प्रभु, आप सरलता से प्राप्त होने वाले हैं, लेकिन केवल उन्हीं के द्वारा, जो भौतिक दृष्टि से अकिंचन हैं। जो सम्मानित कुल, ऐश्वर्य, उच्च शिक्षा तथा शारीरिक सौंदर्य के द्वारा भौतिक प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने के प्रयास में लगा रहता है, वह आप तक एकनिष्ठ भाव से नहीं पहुँच पाता।(१.८.२६)

नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥ २७ ॥

मैं निर्धनों के धन आपको नमस्कार करती हूँ। आपको प्रकृति के भौतिक गुणों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से कोई सरोकार नहीं है। आप आत्म-तुष्ट हैं, अतएव आप परम शान्त तथा अद्वैतवादियों के स्वामी कैवल्य-पति हैं।(१.८.२७)

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ।
समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥ २८ ॥

हे भगवान्, मैं आपको शाश्वत समय, परम नियन्ता, आदि-अन्त से रहित तथा सर्वव्यापी मानती हूँ। आप सबों पर समान रूप से दया दिखलाते हैं। जीवों में जो पारस्परिक कलह है, वह सामाजिक मतभेद के कारण है।(१.८.२८)

न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ।
न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद् द्वेष्यश्च यस्मिन् विषमा मतिर्नृणाम् ॥२९॥

हे भगवान्, आपकी दिव्य लीलाओं को कोई समझ नहीं सकता, क्योंकि वे मानवीय प्रतीत होती हैं और इस कारण भ्रामक हैं। न तो आपका कोई विशेष कृपा-पात्र है, न ही कोई आपका अप्रिय है। यह केवल लोगों की कल्पना ही है कि आप पक्षपात करते हैं।(१.८.२९)

जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ।
तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३० ॥

हे विश्वात्मा, यह सचमुच ही चकरा देनेवाली बात (विडम्बना) है कि आप निष्क्रिय रहते हुए भी कर्म करते हैं और प्राणशक्ति रूप तथा अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं। आप स्वयं पशुओं, मनुष्यों, ऋषियों तथा जलचरों के मध्य अवतरित होते हैं। सचमुच ही यह चकरानेवाली बात है।(१.८.३०)

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद् या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् ।
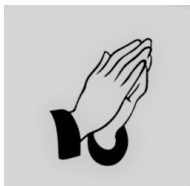
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥

हे कृष्ण, जब आपने कोई अपराध किया था, तब यशोदा ने जैसे ही आपको बाँधने के लिए रस्सी उठाई, तो आपकी व्याकुल आँखें अश्रुओं से डबडबा आईं, जिससे आपकी आँखों का काजल धुल गया। यद्यपि आपसे साक्षात् काल भी भयभीत रहता है, फिर भी आप भयभीत हुए। यह दृश्य मुझे मोहग्रस्त करनेवाला है ।(१.८.३१)

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥ ३२ ॥

कुछ कहते हैं कि अजन्मा का जन्म पुण्यात्मा राजाओं की कीर्तिका विस्तार करने के लिए हुआ है और कुछ कहते हैं कि आप अपने परम भक्त राजा यदु को प्रसन्न करने के लिए जन्मे हैं। आप उसके कुल में उसी प्रकार प्रकट हुए हैं, जिस प्रकार मलय पर्वत में चन्दन होता है ।(१.८.३२)

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ।
अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥

अन्य लोग कहते हैं कि चूँकि वसुदेव तथा देवकी दोनों ने आपके लिए प्रार्थना की थी, अतएव आप उनके पुत्र-रूप में जन्मे हैं। निस्सन्देह, आप अजन्मा हैं, फिर भी आप देवताओं का कल्याण करने तथा उनसे ईर्ष्या करनेवाले असुरों को मारने के लिए जन्म स्वीकार करते हैं ।(१.८.३३)

भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ।
सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥ ३४ ॥

कुछ कहते हैं कि जब यह संसार, भार से बोझिल समुद्री नाव की भाँति, अत्यधिक पीड़ित हो उठा तथा आपके पुत्र ब्रह्मा ने प्रार्थना की, तो आप कष्ट का शमन करने के लिए अवतरित हुए हैं ।(१.८.३४)

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ ३५ ॥

तथा कुछ कहते हैं कि आप श्रवण, स्मरण, पूजन आदि की भक्ति को जागृत करने के लिए प्रकट हुए हैं, जिससे भौतिक कष्टों को भोगनेवाले बद्धजीव इसका लाभ उठाकर मुक्ति प्राप्त कर सकें ।(१.८.३५)

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥ ३६ ॥

हे कृष्ण, जो आपके दिव्य कार्यकलापों का निरन्तर श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण करते हैं या दूसरों को ऐसा करते देखकर हर्षित होते हैं, वे निश्चय ही आपके उन चरणकमलों का दर्शन करते हैं, जो जन्म-मृत्यु के पुनरागमन को रोकनेवाले हैं ।(१.८.३६)

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात् परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥ ३७ ॥

हे मेरे प्रभु, अपने सारे कर्तव्य स्वयं पूरे कर दिये हैं। आज जब हम आपकी कृपा पर पूरी तरह आश्रित हैं और जब हमारा और कोई रक्षक नहीं है और जब सारे राजा हमसे शत्रुता किये हुए हैं, तो क्या आप हमें छोड़कर चले जायेंगे ?(१.८.३७)

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ।
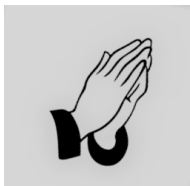
भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥ ३८ ॥

जिस तरह आत्मा के अदृश्य होते ही शरीर का नाम तथा यश समाप्त हो जाता है, उसी तरह यदि आप हमारे ऊपर कृपा-दृष्टि नहीं करेंगे, तो पाण्डवों तथा यदुओं समेत हमारा यश तथा गतिविधियाँ तुरन्त ही नष्ट हो जाएँगी।(१.८.३८)

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ।
त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ ३९ ॥

हे गदाधर (कृष्ण), इस समय हमारे राज्य में आपके चरण-चिह्नों की छाप पड़ी हुई है, और इसके कारण यह सुन्दर लगता है, लेकिन आपके चले जाने पर यह ऐसा नहीं रह जायेगा।(१.८.३९)

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ।
वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥

ये सारे नगर तथा ग्राम सब प्रकार से समृद्ध हो रहे हैं, क्योंकि जड़ी-बूटियों तथा अन्नों की प्रचुरता है, वृक्ष फलों से लदे हैं, नदियाँ बह रही हैं, पर्वत खनिजों से तथा समुद्र सम्पदा से भरे पड़े हैं। और यह सब उन पर आपकी कृपा-दृष्टि पड़ने से ही हुआ है।(१.८.४०)

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥ ४१ ॥

अतः हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, हे ब्रह्माण्ड के आत्मा, हे विश्व-रूप, कृपा करके मेरे स्वजनों, पाण्डवों तथा वृष्णियों के प्रति मेरे स्नेह-बन्धन को काट डालें।(१.८.४१)

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥

हे मधुपति, जिस प्रकार गंगा नदी बिना किसी व्यवधान के सदैव समुद्र की ओर बहती है, उसी प्रकार मेरा आकर्षण अन्य किसी ओर न बँट कर आपकी ओर निरन्तर बना रहे।(१.८.४२)

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग् राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ४३ ॥

हे कृष्ण, हे अर्जुन के मित्र, हे वृष्णिकुल के प्रमुख, आप उन समस्त राजनीतिक पक्षों के विध्वंसक हैं, जो इस धरा पर उपद्रव फैलानेवाले हैं। आपका शौर्य कभी क्षीण नहीं होता। आप दिव्य धाम के स्वामी हैं और आप गायों, ब्राह्मणों तथा भक्तों के कष्टों को दूर करने के लिए अवतरित होते हैं। आपमें सारी योग-शक्तियाँ हैं और आप समस्त विश्व के उपदेशक (गुरु) हैं। आप सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं। मैं आपको सादर प्रणाम करती हूँ।(१.८.४३)

4. श्रीभीष्म स्तवः

श्रीभीष्म उवाच

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ ३२ ॥
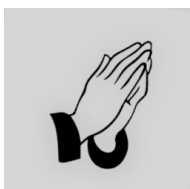
भीष्मदेव ने कहा : अभी तक मैं जो सोचता, जो अनुभव करता तथा जो चाहता था, वह विभिन्न विषयों तथा वृत्तियों के अधीन था, किन्तु अब मुझे उसे परम शक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण में लगाने दो। वे सदैव आत्मतुष्ट रहनेवाले हैं, किन्तु कभी-कभी भक्तों के नायक होने के कारण, इस भौतिक जगत में अवतरित होकर दिव्य आनन्द-लाभ करते हैं, यद्यपि यह सारा भौतिक जगत उन्हीं के द्वारा सृजित है।(१.९.३२)

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुन के घनिष्ठ मित्र हैं। वे इस धरा पर अपने दिव्य शरीर सहित प्रकट हुए हैं, जो तमाल वृक्ष सदृश नीले रंग का है। उनका शरीर तीनों लोकों (उच्च, मध्य तथा अधोलोक) में हर एक को आकृष्ट करनेवाला है। उनका चमचमाता पीताम्बर तथा चन्दनचर्चित मुखकमल मेरे आकर्षण का विषय बने और मैं किसी प्रकार के फल की इच्छा न करूँ।(१.९.३३)

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्- कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान- त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४ ॥

युद्धक्षेत्र में (जहाँ मित्रतावश श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ रहे थे) भगवान् कृष्ण के लहराते केश घोड़ों की टापों से उठी धूल से धूसरित हो गये थे तथा श्रम के कारण उनका मुख-मण्डल पसीने की बूँदों से भीग गया था। मेरे तीक्ष्ण बाणों से बने घावों से इन अलंकरणों की शोभा उन्हें अच्छी लग रही थी। मेरा मन उन्हीं श्रीकृष्ण के पास चले।(१.९.३४)

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥ ३५ ॥

अपने मित्र के आदेश का पालन करते हुए, भगवान् श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में अर्जुन तथा दुर्योधन के सैनिकों के बीच में प्रविष्ट हो गये और वहाँ स्थित होकर उन्होंने अपनी कृपापूर्ण चितवन से विरोधी पक्ष की आयु क्षीण कर दी। यह सब शत्रु पर उनके दृष्टिपात करने मात्र से ही हो गया। मेरा मन उन कृष्ण में स्थिर हो।(१.९.३५)

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ।
कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥ ३६ ॥

जब युद्धक्षेत्र में अर्जुन अपने समक्ष सैनिकों तथा सेनापतियों को देखकर अज्ञान से कलुषित हो रहा लग रहा था, तो भगवान् ने उसके अज्ञान को दिव्य ज्ञान प्रदान करके समूल नष्ट कर दिया। उनके चरणकमल सदैव मेरे आकर्षण के लक्ष्य बने रहें।(१.९.३६)

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा- मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु- र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥

मेरी इच्छा को पूरी करते हुए तथा अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर, वे रथ से नीचे उतर आये, उसका पहिया उठा लिया और तेजी से मेरी ओर दौड़े, जिस तरह कोई सिंह किसी हाथी को मारने के लिए दौड़ पड़ता है। इसमें उनका उत्तरीय वस्त्र भी रास्ते में गिर गया।(१.९.३७)

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥ ३८ ॥
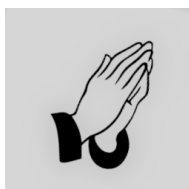
भगवान् श्रीकृष्ण जो मोक्ष के दाता हैं, वे मेरे अनन्तिम गंतव्य हों। युद्ध-क्षेत्र में उन्होंने मेरे ऊपर आक्रमण किया, मानो वे मेरे पैने बाणों से बने घावों के कारण क्रुद्ध हो गये हों। उनका कवच छितरा गया था और उनका शरीर खून से सन गया था।(१.९.३८)

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो- र्यमिह निरीक्ष्य हता गताः स्वरूपम् ॥ ३९ ॥

मृत्यु के अवसर पर मेरा चरम आकर्षण भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति हो। मैं अपना ध्यान अर्जुन के उस सारथी पर एकाग्र करता हूँ, जो अपने दाहिने हाथ में चाबुक लिए थे और बाएँ हाथ से लगाम की रस्सी थामे और सभी प्रकार से अर्जुन के रथ की रक्षा करने के प्रति अत्यंत सावधान थे। जिन लोगों ने कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में उनका दर्शन किया, उन सबों ने मृत्यु के बाद अपना मूल स्वरूप प्राप्त कर लिया।(१.९.३९)

ललितगतिविलासवल्गुहास- प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४० ॥

मेरा मन उन भगवान् श्रीकृष्ण में एकाग्र हो, जिनकी चाल तथा प्रेम भरी मुस्कान ने व्रजधाम की रमणियों (गोपियों) को आकृष्ट कर लिया। [रास लीला से] भगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर गोपिकाओं ने भगवान् की लाक्षणिक गतियों का अनुकरण किया।(१.९.४०)

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः- सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥ ४१ ॥

महाराज युधिष्ठिर द्वारा सम्पन्न राजसूय यज्ञ में विश्व के सारे महापुरुषों, राजाओं तथा विद्वानों की एक महान् सभा हुई थी और उस सभा में सबों ने श्रीकृष्ण की पूजा परम पूज्य भगवान् के रूप में की थी। यह सब मेरी आँखों के सामने हुआ और मैंने इस घटना को याद रखा, जिससे मेरा मन भगवान् में लगा रहे। (१.९.४१)

तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥ ४२ ॥

अब मैं पूर्ण एकाग्रता से एक ईश्वर श्रीकृष्ण का ध्यान कर सकता हूँ, जो इस समय मेरे सामने उपस्थित हैं, क्योंकि अब मैं प्रत्येक के हृदय में, यहाँ तक कि मनोधर्मियों के हृदय में भी रहनेवाले उनके प्रति द्वैत भाव की स्थिति को पार कर चुका हूँ। वे सबों के हृदय में रहते हैं। भले ही सूर्य को भिन्न-भिन्न प्रकार से अनुभव किया जाय, किन्तु सूर्य तो एक ही है।(१.९.४२)

5. संजल्पमय स्तवः

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥

वे कहने लगीं : जैसा हमें निश्चित रूप से स्मरण है, यही हैं वे, जो आदि परमेश्वर हैं। प्रकृति के गुणों की व्यक्त सृष्टि के पूर्व, वे ही अकेले विद्यमान थे। चूँकि वे परमेश्वर हैं, अतएव सारे जीव उन्हीं में लीन होते हैं, मानो रात्रि में सोये हुए हों और उनकी शक्ति रुक गई हो।(१.१०.२१)

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।
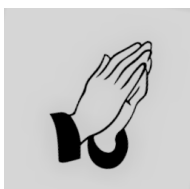
अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥ २२ ॥

तब भगवान् ने अपने अंशस्वरूप जीवों को, नाम तथा रूप प्रदान करने की इच्छा से, उन्हें भौतिक प्रकृति के मार्गदर्शन के अन्तर्गत कर दिया। उनकी ही अपनी शक्ति से भौतिक प्रकृति को पुनः सृष्टि करने के लिए अधिकृत कर दिया गया है।(१.१०.२२)

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।
पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥ २३ ॥

ये वे ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जिनके दिव्य रूप का अनुभव बड़े-बड़े भक्तों द्वारा किया जाता है, जिन्होंने सुदृढ़ भक्ति द्वारा तथा जीवन एवं इन्द्रियों पर पूर्ण संयम द्वारा, भौतिक चेतना से पूर्ण रूप से विशुद्ध हो चुके हैं। तथा अस्तित्व को विमल बनाने का यही एकमात्र मार्ग है(१.१०.२३)

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।
य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥ २४ ॥

हे सखियो, यहाँ पर वही भगवान् हैं, जिनकी आकर्षक तथा गोपनीय लीलाओं का वर्णन बड़े-बड़े भक्तों द्वारा वैदिक साहित्य के गुह्यतम अंशों में हुआ है। वे ही भौतिक जगत की सृष्टि करने वाले, पालने वाले तथा संहार करनेवाले हैं, फिर भी वे उससे अप्रभावित रहते हैं।(१.१०.२४)

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥ २५ ॥

जब भी राजा तथा प्रशासक, तमोगुण में स्थित पशुओं की तरह रहते हैं, तो भगवान् अपने दिव्य रूप में अपनी परम शक्ति, सत्य ऋत, को प्रकट करते हैं, श्रद्धालुओं पर विशेष दया दिखाते हैं, अद्भुत कार्य करते हैं तथा विभिन्न कालों तथा युगों में आवश्यकतानुसार विभिन्न दिव्य रूप प्रकट करते हैं।(१.१०.२५)

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल-महो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥ २६ ॥

ओह, यदुवंश कितना यशस्वी है और मथुरा की भूमि कितनी पुण्यमयी है, जहाँ समस्त जीवों के परम नायक, लक्ष्मीपति ने जन्म लिया और अपने बचपन में विचरण किया है।(१.१०.२६)

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।
पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥ २७ ॥

निस्सन्देह, यह कितना आश्चर्यजनक है कि द्वारका ने स्वर्ग के यश को पिछाड़ कर पृथ्वी की प्रसिद्धि को बढ़ाया है। द्वारका के निवासी उनके प्रिय स्वरूप में समस्त जीवों के आत्मा (कृष्ण)का सदैव दर्शन करते हैं। भगवान् उन पर दृष्टिपात करते हैं और अपनी मुसकान भरी चितवन से उन्हें कृतार्थ करते हैं। (१.१०.२७)

नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।
पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहु- र्व्रजस्त्रियः सम्मुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥
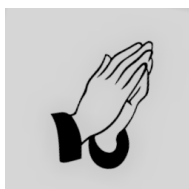
हे सखियो, तनिक उनकी पत्नियों के विषय में सोचो, जिनके साथ उनका पाणिग्रहण हुआ था। उन्होंने कैसा व्रत, स्नान, यज्ञ तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी की सम्यक पूजा की होगी, जिससे वे सब उनके अधरामृत का निरन्तर आस्वादन (चुम्बन द्वारा) कर रही हैं ? ब्रजभूमि की बालाएँ ऐसी कृपा की कल्पना से ही प्राय: मूर्छित हो जाती होंगी।(१.१०.२८)

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ।
प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥ २९ ॥

इन पत्नियों से सन्तानें हैं—प्रद्युम्न, साम्ब, अम्ब इत्यादि। उन्होंने शिशुपाल के नायकत्व में आए हुए अनेक शक्तिशाली राजाओं को हरा कर रुक्मिणी, सत्यभामा तथा जाम्बवती जैसी स्त्रियों यों का उनके स्वयंवर-समारोहों से बलपूर्वक अपहरण किया था। उन्होंने भौमासुर तथा उसके हजारों सहायकों का वध करके अन्य स्त्रियों का भी अपहरण किया था। ये सारी स्त्रियाँ धन्य हैं।(१.१०.२९)

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ।
यासां गृहात्पुष्करलोचनः पति- र्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥ ३० ॥

इन सारी स्त्रियों ने व्यक्तित्व तथा शुद्धि से विहीन होते हुए भी, अपने जीवन को धन्य किया। उनके पति कमलनयन भगवान् ने उन्हें घर में कभी अकेले नहीं छोड़ा। वे उन्हें बहुमूल्य भेंट प्रदान करके उनके हृदयों को प्रसन्न बनाते रहे। (१.१०.३०)

6. वासुदेव स्तुति

नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।
परायणं क्षेममिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत् परः प्रभुः ॥ ६ ॥

नागरिकों ने कहा : हे भगवन्, आप ब्रह्मा, चारों कुमार तथा स्वर्ग के राजा जैसे समस्त देवताओं द्वारा भी पूजित हैं। आप उन लोगों के परम आश्रय हैं, जो जीवन का सर्वोच्च लाभ उठाने के लिए इच्छुक हैं। आप परम दिव्य भगवान् हैं और प्रबल काल भी आप पर अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता।(१.११.६)

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ।
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥ ७ ॥

हे ब्रह्माण्ड के स्रष्टा, आप हमारे माता, शुभचिन्तक, प्रभु, पिता, आध्यात्मिक गुरु तथा आराध्य देव हैं। हम आपके चरण-चिह्नों पर चलते हुए सभी प्रकार से सफल हुए हैं। अतएव हमारी प्रार्थना है कि आप हमें अपनी कृपा का आशीर्वाद देते रहें।(१.११.७)

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥ ८ ॥

अहो! यह तो हमारा सौभाग्य है कि आज पुन: आपकी उपस्थिति से हम आपके संरक्षण में आ गये, क्योंकि आप स्वर्ग के निवासियों के यहाँ भी कभी-कभी जाते हैं। आपके स्मितमुख को देख पाना हमारे लिए अब सम्भव हो सका है, जो स्निग्ध चितवन से पूर्ण है। अब हम आपके सर्व-सौभाग्यशाली दिव्य रूप का दर्शन कर सकते हैं।(१.११.८)

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद् रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥ ९ ॥
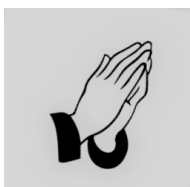
हे कमलनयन भगवान्, आप जब भी अपने मित्रों तथा सम्बंधियों से भेंट करने मथुरा, वृन्दावन या हस्तिनापुर चले जाते हैं, तो आपकी अनुपस्थिति में प्रत्येक क्षण हमें करोड़ों वर्षों के समान प्रतीत होता है। हे अच्युत, उस समय हमारी आँखें इस तरह व्यर्थ हो जाती हैं मानो सूर्य से बिछुड़ गई हों।(१.११.९)

कथं वयं नाथ चिरोषिते त्वयि प्रसन्नदृष्ट्याखिलतापशोषणम् ।
जीवेम ते सुन्दरहासशोभितमपश्यमाना वदनं मनोहरम् ।
इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ।
शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन् प्राविशत् पुरम् ॥ १० ॥

हे स्वामी, यदि आप सारे समय बाहर रहते हैं, तो हम आपके उस मनोहर मुखमण्डल को नहीं देख पाते, जिसकी मुसकान हमारे सारे कष्टों को दूर कर देती है। भला हम आपके बिना कैस□रह सकते हैं ?उनकी वाणी सुनकर, प्रजा तथा भक्तों पर अत्यन्त दयालु भगवान् ने द्वारकापुरी में प्रवेश किया और उन सबों पर अपनी दिव्य दृष्टि डालते हुए उनका अभिनन्दन स्वीकार किया।(१.११.१०)

7. श्री शुकदेवकृत मंगलाचरण

श्रीशुक उवाच

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिना- मन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥ १२ ॥

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जो भौतिक जगत की सृष्टि के लिए प्रकृति के तीन गुणों को स्वीकार करते हैं। वे प्रत्येक शरीर के भीतर निवास करनेवाले परम पूर्ण हैं और उनकी गतियाँ अचिन्त्य हैं।(२.४.१२)

भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसता- मसम्भवायाखिलसत्त्वमूर्तये ।
पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥ १३ ॥

मैं पुनः पूर्ण जगत-रुप तथा अध्यात्म-रूप उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जो पुण्यात्मा भक्तों को समस्त संकटों से मुक्ति दिलानेवाले तथा अभक्त असुरों की नास्तिक मनोवृत्ति की वृद्धि को विनष्ट करनेवाले हैं। वे सर्वोच्च आध्यात्मिक सिद्धि-प्राप्त योगियों को उनके विशिष्ट पद प्रदान करने वाले हैं।(२.४.१३)

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ १४ ॥

मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ जो यदुवंशियों के संगी हैं और अभक्तों के लिए सदैव समस्या बने रहते हैं। वे भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों जगतों के परम भोक्ता हैं, फिर भी वे वैकुण्ठ स्थित अपने धाम का भोग करते हैं। कोई भी उनके समतुल्य नहीं है, क्योंकि उनका दिव्य ऐश्वर्य अमाप्य है।(२.४.१४)

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १५ ॥

मैं उन सर्वमंगलमय भगवान् श्रीकृष्ण को सादर नमस्कार करता हूँ जिनके यशोगान, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण तथा पूजन से पाप करनेवाले के सारे पाप-फल तुरन्त धुल जाते हैं।(२.४.१५)

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात् सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ।
विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमा- स्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६ ॥

मैं सर्व-मंगलमय भगवान् श्रीकृष्ण को बारम्बार प्रणाम करता हूँ। उनके चरण-कमलों की शरण ग्रहण करने मात्र से उच्च कोटि के बुद्धिमान जन वर्तमान तथा भावी जगत की सारी आसक्तियों से छुटकारा पा जाते हैं और बिना किसी कठिनाई के आध्यात्मिक जगत की ओर अग्रसर होते हैं।(२.४.१६)

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १७ ॥

मैं समस्त मंगलमय भगवान् श्रीकृष्ण को पुनः पुनः सादर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि बड़ेबड़े विद्वान ऋषि, बड़े-बड़े दानी, यश-लब्ध कार्यकर्ता, बड़े-बड़े दार्शनिक तथा योगी, बड़े-बड़े वेदपाठी तथा बड़े-बड़े वैदिक सिद्धान्तों के बड़े-

बड़े अनुयायी तक भी ऐसे महान् गुणों को भगवान् की सेवा में समर्पित किये बिना कोई क्षेम (कुशलता) प्राप्त नहीं कर पाते।(२.४.१७)
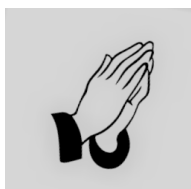
किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १८ ॥

किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कश, आभीर, शुम्भ, यवन, खस आदि जातियों के सदस्य तथा अन्य लोग, जो पाप कर्मों में लिप्त रहते हुए परम शक्तिशाली भगवान् के भक्तों की शरण ग्रहण करके शुद्ध हो सकते हैं, मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ।(२.४.१८)

स एष आत्मात्मवतामधीश्वर- स्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ।
गतव्यलीकैरजशङ्करादिभि- र्वितर्क्यलिङ्गो भगवान् प्रसीदताम् ॥ १९ ॥

वे परमात्मा हैं तथा समस्त स्वरूपसिद्ध पुरुषों के परमेश्वर हैं। वे साक्षात् वेद, धर्मग्रंथ (शास्त्र) तथा तपस्या हैं। वे ब्रह्माजी, शिवजी तथा कपट से रहित समस्त व्यक्तियों द्वारा पूजित हैं। आश्चर्य तथा सम्मान से ऐसे पूजित होनेवाले पूर्ण पुरुषोत्तम मुझ पर प्रसन्न हों।(२.४.१९)

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापति-र्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ॥ २० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण, जो समस्त भक्तों द्वारा पूज्य हैं, यदुवंश के अंधक तथा वृष्णि जैसे समस्त राजाओं के रक्षक तथा उनके यश हैं, लक्ष्मी देवी के पति, समस्त यज्ञों के निर्देशक अतएव समस्त जीवों के अग्रणी, समस्त बुद्धि के नियन्ता, समस्त दिव्य एवं भौतिक लोकों के अधिष्ठाता तथा पृथ्वी पर परम अवतार (सर्वेसर्वा) हैं, वे मुझ पर कृपालु हों।(२.४.२०)

यदङ्घ्र्यभिध्यानसमाधिधौतया धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ।
वदन्ति चैतत् कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम् ॥ २१ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही मुक्तिदाता हैं। भक्त प्रतिपल उनके चरण-कमलों का चिन्तन करके और महापुरुषों के चरणचिन्हों पर चलते हुए समाधि में परम सत्य का दर्शन कर सकता है। तथापि विद्वान ज्ञानीजन उनके विषय में अपनी सनक के अनुसार चिन्तन करते हैं। ऐसे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों।(२.४.२१)

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ २२ ॥
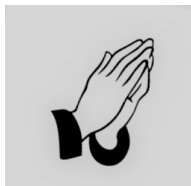
जिन्होंने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के हृदय में शक्तिशाली ज्ञान का विस्तार किया और सृष्टि तथा अपने विषय में पूर्ण ज्ञान की प्रेरणा दी और जो ब्रह्मा के मुख से प्रकट हुए प्रतीत हुए, वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों। (२.४.२२)

भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभु- र्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ।
भुङ्क्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः सोऽलङ्कृषीष्ट भगवान् वचांसि मे ॥ २३ ॥

ब्रह्माण्ड के भीतर लेटकर जो तत्तवों से निर्मित शरीरों को प्राणमय बनाते हैं और जो अपने पुरुष-अवतार में जीव को भौतिक गुणों के सोलह विभागों को, जो जीव के जनक रूप हैं अधीन करते हैं, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मेरे प्रवचनों को अलंकृत करने के लिए प्रसन्न हों।(२.४.२३)

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥ २४ ॥

मैं साक्षात् वासुदेव के अवतार उन श्रील व्यासदेव को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने वैदिक शास्त्रों का संकलन किया। शुद्ध भक्तगण भगवान् के कमल सदृश मुख से टपकते हुए अमृतोपम दिव्य ज्ञान का पान करते हैं।(२.४.२४)
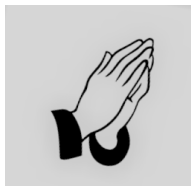
४. भागवत स्तोत्रं

देवा ऊचुः
नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु- संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥ ३९ ॥

देवताओं ने कहा : हे प्रभु, आपके चरणकमल शरणागतों के लिए छाते के समान हैं, जो संसार के समस्त कष्टों से उनकी रक्षा करते हैं। सारे मुनिगण उस आश्रय के अन्तर्गत समस्त भौतिक कष्टों को निकाल फेंकते हैं। अतएव हम आपके चरणकमलों को सादर नमस्कार करते है।(३.५.३९)

धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवा- स्तापत्रयेणाभिहता न शर्म ।
आत्मन्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रि- च्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥ ४० ॥

हे पिता, हे प्रभु, हे भगवान्, इस भौतिक संसार में जीवों को कभी कोई सुख प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि वे तीन प्रकार के कष्टों से अभिभूत रहते हैं। अतएव वे आपके उन चरणकमलों की छाया की शरण ग्रहण करते हैं, जो ज्ञान से पूर्ण है और इस लिए हम भी उन्हीं की शरण लेते हैं।(३.५.४०)

मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडै- श्छन्दःसुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ४१ ॥

भगवान् के चरणकमल स्वयं ही समस्त तीर्थस्थलों के आश्रय हैं। निर्मल मनवाले महर्षिगण वेदों रूपी पंखों के सहारे उड़कर सदैव आपके कमल सदृश मुख रूपी घोंसले की खोज करते हैं। उनमें से कुछ सर्वश्रेष्ठ नदी (गंगा) में शरण लेकर पद-पद पर आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, जो सारे पापफलों से मनुष्य का उद्धार कर सकते हैं।(३.५.४१)

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या सम्मृज्यमाने हृदयेऽवधाय ।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥ ४२ ॥

आपके चरणकमलों के विषय में केवल उत्सुकता तथा भक्ति पूर्वक श्रवण करने से तथा उनके विषय में हृदय में ध्यान करने से मनुष्य तुरन्त ही ज्ञान से प्रकाशित और वैराग्य के बल पर शान्त हो जाता है। अतएव हमें आपके चरणकमल रूपी पुण्यालय की शरण ग्रहण करनी चाहिए।(३.५.४२)

विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥ ४३ ॥

हे प्रभु, आप विराट जगत के सृजन, पालन तथा संहार के लिए अवतरित होते हैं इसलिए हम सभी आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, क्योंकि ये चरण आपके भक्तों को सदैव स्मृति तथा साहस प्रदान करने वाले हैं।(३.५.४३)

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥ ४४ ॥

हे प्रभु, जो लोग नश्वर शरीर तथा बन्धु-बाँधवों के प्रति अवांछित उत्सुकता के द्वारा पाशबद्ध हैं और जो लोग ''मेरा'' तथा ''मैं'' के विचारों से बँधे हुए हैं, वे आपके चरणकमलों का दर्शन नहीं कर पाते यद्यपि आपके चरणकमल उनके अपने ही शरीरों में स्थित होते हैं। किन्तु हम आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करें।(३.५.४४)
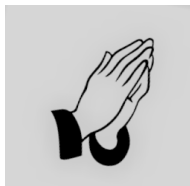
तान् वै ह्यसद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥ ४५ ॥

हे महान् परमेश्वर, वे अपराधी व्यक्ति, जिनकी अन्त:दृष्टि बाह्य भौतिकतावादी कार्यकलापों से अत्यधिक प्रभावित हो चुकी होती है वे आपके चरणकमलों का दर्शन नहीं कर सकते, किन्तु आपके शुद्ध भक्त दर्शन कर पाते हैं, क्योंकि उनका एकमात्र उद्देश्य आपके कार्यकलापों का दिव्य भाव से आस्वादन करना है।(३.५.४५)

पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ ४६ ॥

हे प्रभु, जो लोग अपनी गंभीर मनोवृत्ति के कारण प्रबुद्ध भक्ति-मय सेवा की अवस्था प्राप्त करते हैं, वे वैराग्य तथा ज्ञान के संपूर्ण अर्थ को समझ लेते हैं और आपकी कथाओं के अमृत को पीकर ही आध्यात्मिक आकाश में वैकुण्ठलोक को प्राप्त करते हैं।(३.५.४६)

तथापरे चात्मसमाधियोग- बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥ ४७ ॥

अन्य लोग भी जो कि दिव्य आत्म-साक्षात्कार द्वारा शान्त हो जाते हैं तथा जिन्होंने प्रबल शक्ति एवं ज्ञान के द्वारा प्रकृति के गुणों पर विजय पा ली है, आप में प्रवेश करते हैं, किन्तु उन्हें काफी कष्ट उठाना पड़ता है, जबकि भक्त केवल भक्ति-मय सेवा सम्पन्न करता है और उसे ऐसा कोई कष्ट नहीं होता।(३.५.४७)

तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाद्य त्वयानुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ।
सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥ ४८ ॥

हे आदि पुरुष, इसलिए हम एकमात्र आपके हैं। यद्यपि हम आपके द्वारा उत्पन्न प्राणी हैं, किन्तु हम प्रकृति के तीन गुणों के प्रभाव के अन्तर्गत एक के बाद एक जन्म लेते हैं, इसीलिए हम अपने कर्म में पृथक्-पृथक् होते हैं। अतएव सृष्टि के बाद हम आपके दिव्य आनन्द के हेतु सिम्मिलित रूप में कार्य नहीं कर सके।(३.५.४८)

यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र ।
यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥ ४९ ॥

हे अजन्मा, आप हमें वे मार्ग तथा साधन बतायें जिनके द्वारा हम आपको समस्त भोग्य अन्न तथा वस्तुएँ अर्पित कर सकें जिससे हम तथा इस जगत के अन्य समस्त जीव बिना किसी उत्पात के अपना पालन-पोषण कर सकें तथा आपके लिए और अपने लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर सकें।(३.५.४९)

त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।
त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥ ५० ॥

आप समस्त देवताओं तथा उनकी विभिन्न कोटियों के आदि साकार संस्थापक हैं फिर भी आप सबसे प्राचीन हैं और अपरिवर्तित रहते हैं। हे प्रभु, आपका न तो कोई उद्गम है, न ही कोई आपसे श्रेष्ठ है। आपने समस्त जीव रूपी वीर्य द्वारा बहिरंगा शक्ति को गर्भित किया है, फिर भी आप स्वयं अजन्मा हैं।(३.५.५०)

ततो वयं मत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥ ५१ ॥
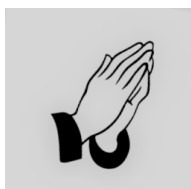
हे परम प्रभु, महत्-तत्त्व से प्रारंभ में उत्पन्न हुए हम सबों को अपना कृपापूर्ण निर्देश दें कि हम किस तरह से कर्म करें। कृपया हमें अपना पूर्ण ज्ञान तथा शक्ति प्रदान करें जिससे हम परवर्ती सृष्टि के विभिन्न विभागों में आपकी सेवा कर सकें।(३.५.५१)

९. श्रीगर्भोदकसायी स्तवः

ब्रह्मोवाच

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम्।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ १ ॥

ब्रह्माजी ने कहा : हे प्रभु, आज अनेकानेक वर्षों की तपस्या के बाद मैं आपके विषय में जान पाया हूँ। ओह! देहधारी जीव कितने अभागे हैं कि वे आपके स्वरूप को जान पाने में असमर्थ हैं। हे स्वामी, आप एकमात्र ज्ञेय तत्व हैं, क्योंकि आपसे परे कुछ भी सर्वोच्च नहीं है। यदि कोई वस्तु आपसे श्रेष्ठ प्रतीत होती भी है, तो वह परम पूर्ण नहीं है। आप पदार्थ की सृजन शक्ति को प्रकट करके ब्रह्म रूप में विद्यमान हैं।(३.९.१)

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥ २ ॥

मैं जिस रूप को देख रहा हूँ वह भौतिक कल्मष से सर्वथा मुक्त है और अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति के रूप में भक्तों पर कृपा दिखाने के लिए अवतरित हुआ है। यह अवतार अन्य अनेक अवतारों का उद्गम है और मैं स्वयं आपके नाभि रूपी घर से उगे कमल के फूल से उत्पन्न हुआ हूँ।(३.९.२)

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप- मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ ३ ॥

हे प्रभु, मैं आपके इस सच्चिदानन्द रूप से श्रेष्ठ अन्य कोई रूप नहीं देखता। वैकुण्ठ में आपकी निर्विशेष ब्रह्मज्योति में न तो यदाकदा परिवर्तन होता है और न अन्तरंगा शक्ति में कोई ह्रास आता है। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ, क्योंकि जहाँ मैं अपने भौतिक शरीर तथा इन्द्रियों पर गर्वित हूँ वहीं आप विराट जगत का कारण होते हुए भी पदार्थ द्वारा अस्पृश्य हैं।(३.९.३)

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम्।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ ४ ॥
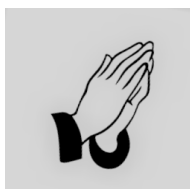
पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का यह वर्तमान रूप या उनके द्वारा विस्तार किया हुआ कोई भी दिव्य रूप सारे ब्रह्माण्डों के लिए समान रूप से मंगलमय है।चूँकि आपने यह नित्य साकार रूप प्रकट किया है,जिसका ध्यान आपके भक्त करते हैं,इसलिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।जिन्हें नरकगामी होना बदा है वे आपके साकार रूप की उपेक्षा करते हैं,क्योंकि वे लोग भौतिक विषयों की ही कल्पना करते रहते हैं!(३.९.४)

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम्।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥५॥

हे प्रभु, जो लोग वैदिक ध्वनि की वायु द्वारा ले जाई गई आपके चरणकमलों की सुगन्ध को अपने कानों के द्वारा सूँघते हैं, वे आपकी भक्ति-मय सेवा को स्वीकार करते हैं। उनके लिए आप उनके हृदय रूपी कमल से कभी भी विलग नहीं होते।(३.९.५)

तावद्भयं द्रविणदेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।

तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥ ६ ॥

हे प्रभु, संसार के लोग समस्त भौतिक चिन्ताओं से उद्विग्न रहते हैं—वे सदैव भयभीत रहते हैं। वे सदैव धन, शरीर तथा मित्रों की रक्षा करने का प्रयास करते हैं, वे शोक तथा अवैध इच्छाओं एवं साज–सामग्री से पूरित रहते हैं तथा लोभवश ''मैं'' तथा ''मेरे'' की नश्वरधारणाओं पर अपने दुराग्रह को आधारित करते हैं। जब तक वे आपके सुरक्षित चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करते तब तक वे ऐसी चिन्ताओं से भरे रहते हैं(३.९.६)

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गा- त्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥ ७ ॥

हे प्रभु, वे व्यक्ति जो आपके दिव्य कार्यकलापों के विषय में सर्वमंगलकारी कीर्तन तथा श्रवण करने से वंचित हैं निश्चित रूप से वे अभागे हैं और सद्बुद्धि से विहीन हैं। वे तनिक देर के लिए इन्द्रियतृप्ति का भोग करने हेतु अशुभ कार्यों में लग जाते हैं।(३.९.७)

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवरषैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाच्युत रुषा च सुदुर्भरेण सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥ ८ ॥

हे महान् कर्ता, मेरे प्रभु, ये सभी दीन प्राणी निरन्तर भूख, प्यास, शीत, कफ तथा पित्त से व्यग्र रहते हैं, इन पर कफ युक्त शीतऋतु, भीषण गर्मी, वर्षा तथा अन्य अनेक क्षुब्ध करने वाले तत्त्व आक्रमण करते रहते हैं और ये प्रबल कामेच्छाओं तथा दु:सह क्रोध से अभिभूत होते रहते हैं। मुझे इन पर दया आती है और मैं इनके लिए अत्यन्त सन्तप्त रहता हूँ।(३.९.८)

यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थ- मायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ।
तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसङ्क्रमेत व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥ ९ ॥

हे प्रभु, आत्मा के लिए भौतिक दुखों का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं होता। फिर भी जब तक बद्धात्मा शरीर को इन्द्रिय भोग के निमित्त देखता है तब तक वह आपकी बहिरंगा शक्ति द्वारा प्रभावित होने से भौतिक कष्टों के पाश से बाहर नहीं निकल पाता।(३.९.९)

अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।
दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥ १० ॥

ऐसे अभक्तगण अपनी इन्द्रियों को अत्यन्त कष्टप्रद तथा विस्तृत कार्य में लगाते हैं और रात में उनिद्र रोग से पीड़ित रहते हैं, क्योंकि उनकी बुद्धि विविध मानसिक चिन्ताओं के कारण उनकी नींद को लगातार भंग करती रहती है। वे अतिमानवीय शक्ति द्वारा अपनी विविध योजनाओं में हताश कर दिए जाते हैं। यहाँ तक कि बड़े–बड़े ऋषि–मुनि यदि आपकी दिव्य कथाओं से विमुख रहते हैं, तो वे भी इस भौतिक जगत में ही चक्कर लगाते रहते हैं।(३.९.१०)

त्वं भक्तियोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ ११ ॥

हे प्रभु, आपके भक्तगण प्रामाणिक श्रवण विधि द्वारा कानों के माध्यम से आपको देख सकते हैं और इस तरह उनके हृदय विमल हो जाते हैं तथा आप वहाँ पर अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं। आप अपने भक्तों पर इतने दयालु हैं कि आप अपने को उस अध्यात्म के विशेष नित्य रूप में प्रकट करते हैं जिसमें वे सदैव आपका चिन्तन करते हैं।(३.९.११)

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै- राराधितः सुरगणैर्हृदिबद्धकामैः ।
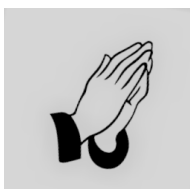
यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥ १२ ॥

हे प्रभु, आप उन देवताओं की पूजा से बहुत अधिक तुष्ट नहीं होते जो आपकी पूजा अत्यन्त ठाठ-बाट से तथा विविध साज-सामग्री के साथ करते तो हैं, किन्तु भौतिक लालसाओं से पूर्ण होते हैं। आप हर एक के हृदय में परमात्मा के रूप में अपनी अहैतुकी कृपा दर्शाने के लिए स्थित रहते हैं। आप नित्य शुभचिन्तक हैं, किन्तु आप अभक्तों के लिए अनुपलब्ध हैं।(३.९.१२)

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यै- र्दानेन चोग्रतपसा परिचर्यया च ।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्म्रियते न यत्र ॥ १३ ॥

किन्तु वैदिक अनुष्ठान, दान, कठोर तपस्या तथा दिव्य सेवा जैसे पुण्य कार्य भी, जो लोगों द्वारा सकाम फलों को आपको अर्पित करके आपकी पूजा करने तथा आपको तुष्ट करने के उद्देश्य से किये जाते हैं, लाभप्रद होते हैं। धर्म के ऐसे कार्य व्यर्थ नहीं जाते।(३.९.१३)

शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेद- मोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ।
विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीला- रासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥ १४ ॥

मैं उन परब्रह्म को नमस्कार करता हूँ जो अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा शाश्वत विशिष्ट अवस्था में रहते हैं। उनका विभेदित न किया जा सकने वाला निर्विशेष स्वरूप आत्म-साक्षात्कार हेतु बुद्धि द्वारा पहचाना जाता है। मैं उनको नमस्कार करता हूँ जो अपनी लीलाओं के द्वारा विराट जगत के सृजन, पालन तथा संहार का आनन्द लेते हैं।(३.९.१४)

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
तेऽनैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतामृतं तमजं प्रपद्ये ॥ १५ ॥

मैं उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ जिनके अवतार, गुण तथा कर्म सांसारिक मामलों के रहस्यमय अनुकरण हैं। जो व्यक्ति इस जीवन को छोड़ते समय अनजाने में भी उनके दिव्य नाम का आवाहन करता है उसके जन्म-जन्म के पाप तुरन्त धुल जाते हैं और वह उन भगवान् को निश्चित रूप से प्राप्त करता है(३.९.१५)

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ।
भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोह- स्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ १६ ॥

आप लोक रूपी वृक्ष की जड़ हैं। यह वृक्ष सर्वप्रथम भौतिक प्रकृति को तीन तनों के रूप में—मुझ, शिव तथा सर्वशक्तिमान आपके रूप में—सृजन, पालन तथा संहार के लिए भेदकर निकला है और हम तीनों से अनेक शाखाएँ निकल आई हैं। इसलिए हे विराट जगत रूपी वृक्ष, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।(३.९.१६)

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥

सामान्य लोग मूर्खतापूर्ण कार्यों में लगे रहते हैं। वे अपने मार्गदर्शन हेतु आपके द्वारा प्रत्यक्ष घोषित लाभप्रद कार्यों में अपने को नहीं लगाते। जब तक उनकी मूर्खतापूर्ण कार्यों की प्रवृत्ति बलवती बनी रहती है तब तक जीवन-संघर्ष में उनकी सारी योजनाएँ छिन्न-भिन्न होती रहेंगी। अतएव मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ जो नित्यकाल स्वरूप हैं।(३.९.१७)

यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्य- मध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ।
तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समान- स्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥१८ ॥
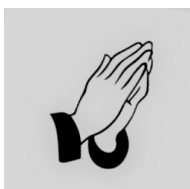
हे प्रभु, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ जो अथक काल तथा समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं। यद्यपि मैं ऐसे स्थान में स्थित हूँ जो दो परार्धों की अवधि तक विद्यमान रहेगा, और यद्यपि मैं ब्रह्माण्ड के अन्य सभी लोकों का अगुआ हूँ, और यद्यपि मैंने आत्म-साक्षात्कार हेतु अनेकानेक वर्षों तक तपस्या की है, फिर भी मैं आपको नमस्कार करता हूँ।(३.९.१८)

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनि- ष्वात्मेच्छयात्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।
रेमे निरस्तविषयोऽप्यवरुद्धदेह- स्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १९ ॥

हे प्रभु, आप अपनी दिव्य लीलाएँ संपन्न करने हेतु स्वेच्छा से विविध जीवयोनियों में,मनुष्येतर पशुओं में तथा देवताओं में प्रकट होते हैं। आप भौतिक कल्मष से तनिक भी प्रभावित नहीं होते। आप धर्म के अपने सिद्धान्तों के दायित्वों को पूरा करने के लिए ही आते हैं, अत:, हे परमेश्वर ऐसे विभिन्न रूपों को प्रकट करने के लिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ।(३.९.१९)

योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।
अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥ २०॥

हे प्रभु, आप उस प्रलयकालीन जल में शयन करने का आनन्द लेते हैं जहाँ प्रचण्ड लहरें उठती रहती हैं और बुद्धिमान लोगों को अपनी नींद का सुख दिखाने के लिए आप सर्पों की शय्या का आनन्द भोगते हैं। उस काल में ब्रह्माण्ड के सारे लोक आपके उदर में स्थित रहते हैं।(३.९.२०)

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योग- निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ २१ ॥

हे मेरी पूजा के लक्ष्य, मैं आपकी कृपा से ब्रह्माण्ड की रचना करने हेतु आपके कमलनाभि रूपी घर से उत्पन्न हुआ हूँ। जब आप नींद का आनन्द ले रहे थे, तब ब्रह्माण्ड के ये सारे लोक आपके दिव्य उदर के भीतर स्थित थे। अब आपकी नींद टूटी है,तो आपके नेत्र प्रात:काल में खिलते हुए कमलों की तरह खुले हुए हैं (३.९.२१)

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान् भगेन ।
तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥ २२ ॥

परमेश्वर मुझ पर कृपालु हों। वे इस जगत में सारे जीवों के एकमात्र मित्र तथा आत्मा हैं और वे अपने छ: ऐश्वर्यों द्वारा जीवों के चरम सुख हेतु इन सबों का पालन-पोषण करते हैं। वे मुझ पर कृपालु हों, जिससे मैं पहले की तरह सृजन करने की आत्मपरीक्षण शक्ति से युक्त हो सकूँ, क्योंकि मैं भी उन शरणागत जीवों में से हूँ जो भगवान् को प्रिय हैं।(३.९.२२)

एष प्रपन्नवरदो रमयात्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।
तस्मिन् स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

भगवान् सदा ही शरणागतों को वर देने वाले हैं। उनके सारे कार्य उनकी अन्तरंगा शक्ति रमा या लक्ष्मी के माध्यम से संपन्न होते हैं। मेरी उनसे यही विनती है कि भौतिक जगत के सृजन में वे मुझे अपनी सेवा में लगा लें और मेरी यही प्रार्थना है कि मैं अपने कर्मों द्वारा भौतिक रूप से प्रभावित न होऊँ, क्योंकि इस तरह मैं स्रष्टा होने की मिथ्या-प्रतिष्ठा त्यागने में सक्षम हो सकूँगा।(३.९.२३)

नाभिह्रदतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।
रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥२४॥
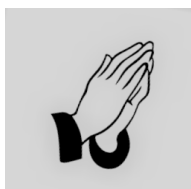
भगवान् की शक्तियाँ असंख्य हैं। जब वे प्रलय-जल में लेटे रहते हैं, तो उस नाभिरूपी झील से, जिसमें कमल खिलता है, मैं समग्र विश्वशक्ति के रूप में उत्पन्न होता हूँ। इस समय मैं विराट जगत के रूप में उनकी विविध शक्तियों को उद्घाटित करने में लगा हुआ हूँ। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि अपने भौतिक कार्यों को करते समय मैं वैदिक स्तुतियों की ध्वनि से कहीं विचलित न हो जाऊँ।(३.९.२४)

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्ध- प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन्।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिरापनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥

भगवान् जो कि परम हैं और सबसे प्राचीन हैं, अपार कृपालु हैं। मैं चाहता हूँ कि वे अपने कमलनेत्रों को खोल कर मुसकाते हुए मुझे वर दें। वे संपूर्ण विराट सृष्टि का उत्थान कर सकते हैं और अपने कृपापूर्ण आदेशों के द्वारा हमारा विषाद दूर कर सकते हैं।(३.९.२५)

10. श्रीमद वराहदेवा स्तुति

ऋषय ऊचुः
जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरद्धय- स्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ ३४ ॥

सारे ऋषि अति आदर के साथ बोल पड़े" हे समस्त यज्ञों के अजेय भोक्ता, आपकी जय हो, जय हो, आप साक्षात् वेदों के रूप में विचरण कर रहे हैं और आपके शरीर के रोमकूपों में सारे सागर समाये हुए हैं। आपने किन्हीं कारणों से (पृथ्वी का उद्धार करने के लिए) अब सूकर का रूप धारण किया है।(३.१३.३४)

रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम्।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोम- स्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥ ३५ ॥

हे प्रभु, आपका स्वरूप यज्ञ संपन्न करके पूजा के योग्य है, किन्तु दुष्टात्माएँ इसे देख पाने में असमर्थ हैं। गायत्री तथा अन्य सारे वैदिक मंत्र आपकी त्वचा के सम्पर्क में हैं। आपके शरीर के रोम कुश हैं, आपकी आँखें घृत हैं और आपके चार पाँव चार प्रकार के सकाम कर्म हैं।(३.१३.३५)

स्रक्तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयो- रिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३६ ॥

हे प्रभु, आपकी जीभ यज्ञ का पात्र (स्रक्) है, आपका नथुना यज्ञ का अन्य पात्र (स्रुवा) है। आपके उदर में यज्ञ का भोजन-पात्र (इडा) है और आपके कानों के छिद्रों में यज्ञ का अन्य पात्र (चमस) है। आपका मुख ब्रह्मा का यज्ञ पात्र (प्राशित्र) है, आपका गला यज्ञ पात्र है, जिसका नाम सोमपात्र है तथा आप जो भी चबाते हैं वह अग्निहोत्र कहलाता है।(३.१३.३६)

दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सत्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥ ३७ ॥

हे प्रभु, इसके साथ ही साथ सभी प्रकार की दीक्षा के लिए आपके बारम्बार प्राकट्य की आकांक्षा भी है। आपकी गर्दन तीनों इच्छाओं का स्थान है और आपकी दाढ़ें दीक्षा-फल तथा सभी इच्छाओं का अन्त हैं, आप की जिव्हा दीक्षा के पूर्व-कार्य हैं, आपका सिर यज्ञ रहित अग्नि तथा पूजा की अग्नि है तथा आप की जीवनी-शक्ति समस्त इच्छाओं का समुच्चय है।(३.१३.३७)
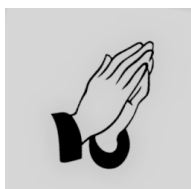
सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धि- स्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ३८ ॥

हे प्रभु, आपका वीर्य सोम नामक यज्ञ है। आपकी वृद्धि प्रातःकाल संपन्न किये जाने वाले कर्मकाण्डीय अनुष्ठान हैं। आपकी त्वचा तथा स्पर्श अनुभूति अग्निष्टोम यज्ञ के सात तत्त्व हैं। आपके शरीर के जोड़ बारह दिनों तक किये जाने वाले विविध यज्ञों के प्रतीक हैं। अतएव आप सोम तथा असोम नामक सभी यज्ञों के लक्ष्य हैं और आप एकमात्र यज्ञों से बँधे हुए हैं।(३.१३.३८)

नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता- द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावित- ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ३९ ॥

हे प्रभु, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और वैश्विक-प्रार्थनाओं, वैदिक मंत्रों तथा यज्ञ की सामग्री द्वारा पूजनीय हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। आप समस्त दृश्य तथा अदृश्य भौतिक कल्मष से मुक्त शुद्ध मन द्वारा अनुभवगम्य हैं। हम आपको भक्ति-योग के ज्ञान के परम गुरु के रूप में सादर नमस्कार करते हैं।(३.१३.३९)

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ४० ॥

हे पृथ्वी के उठाने वाले, आपने जिस पृथ्वी को पर्वतों समेत उठाया है, वह उसी तरह सुन्दर लग रही है, जिस तरह जल से बाहर आने वाले क्रुद्ध हाथी के द्वारा धारण की गई पत्तियों से युक्त एक कमलिनी।(३.१३.४०)

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ४१ ॥

हे प्रभु, जिस तरह बादलों से अलंकृत होने पर विशाल पर्वतों के शिखर सुन्दर लगने लगते हैं उसी तरह आपका दिव्य शरीर सुन्दर लग रहा है, क्योंकि आप पृथ्वी को अपनी दाढ़ों के सिरे पर उठाये हुए हैं।(३.१३.४१)

संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४२ ॥

हे प्रभु, यह पृथ्वी चर तथा अचर दोनों प्रकार के निवासियों के रहने के लिए आपकी पत्नी है और आप परम पिता हैं। हम उस माता पृथ्वी समेत आपको सादर नमस्कार करते हैं जिसमें आपने अपनी शक्ति स्थापित की है, जिस तरह कोई दक्ष यज्ञकर्ता अरणि काष्ठ में अग्नि स्थापित करता है।(३.१३.४२)

कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ ४३ ॥

हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, आपके अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो जल के भीतर से पृथ्वी का उद्धार कर सकता? किन्तु यह आपके लिए बहुत आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि ब्रह्माण्ड के सृजन में आपने अति अद्भुत कार्य किया है। अपनी शक्ति से आपने इस अद्भुत विराट जगत की सृष्टि की है।(३.१३.४३)

विधुन्वता वेदमयं निजं वपु- र्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ।
सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभि- र्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥ ४४ ॥

हे परमेश्वर, निस्सन्देह, हम जन, तप तथा सत्य लोकों जैसे अतीव पवित्र लोकों के निवासी हैं फिर भी हम आपके शरीर के हिलने से आपके कंधों तक लटकते बालों के द्वारा छिड़के गए जल की बूँदों से शुद्ध बन गये हैं।(३.१३.४४)
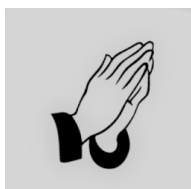
स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैषते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥ ४५ ॥

हे प्रभु, आपके अद्भुत कार्यों की कोई सीमा नहीं है। जो भी व्यक्ति आपके कार्यों की सीमा जानना चाहता है, वह निश्चय ही मतिभ्रष्ट है। इस जगत में हर व्यक्ति प्रबल योगशक्तियों से बँधा हुआ है। कृपया इन बद्धजीवों को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान करें।(३.१३.४५)

11. नारायणस्य चातुर्सना कृत स्तवः

कुमारा ऊचुः
योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः
यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्रानुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥ ४६ ॥

कुमारों ने कहा : हे प्रिय प्रभु, आप धूर्तों के समक्ष प्रकट नहीं होते यद्यपि आप हर एक के हृदय के भीतर आसीन रहते हैं। किन्तु जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम आपको अपने समक्ष देख रहे हैं यद्यपि आप अनन्त हैं। हमने आपके विषय में अपने पिता ब्रह्मा के द्वारा अपने कानों से जो कथन सुने हैं, वे अब आपके कृपापूर्ण प्राकट्य से वस्तुत: साकार हो गए हैं।(३.१५.४६)

तं त्वां विदाम भगवन् परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन सम्प्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ।
यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगै- रुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥ ४७ ॥

हम जानते हैं कि आप परम सत्य अर्थात् परमेश्वर हैं, जो अपने दिव्य रूप को अकलुषित (विशुद्ध) सतोगुण में प्रकट करते हैं। आपका यह दिव्य शाश्वत रूप आपकी कृपा से ही अविचल भक्ति के द्वारा उन मुनियों द्वारा समझा जाता है जिनके हृदय भक्तिमयी विधि से शुद्ध किये जा चुके हैं।(३.१५.४७)

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किम्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ।
येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥४८॥

अपने को भगवान् के शुभ कार्यों तथा उनकी लीलाओं की कथाओं को सुनने में लगाते हैं, जो कीर्तन तथा श्रवण के योग्य होती हैं। ऐसे व्यक्ति सर्वोच्च भौतिक वर की, अर्थात् मुक्ति की भी परवाह नहीं करते, स्वर्गलोक के भौतिक सुख जैसे कम महत्वपूर्ण वरों के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं।(३.१५.४८)

कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ता- च्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥४९॥

हे प्रभु, हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि जब तक हमारे हृदय तथा मन आपके चरणकमलों की सेवा में लगे रहें, हमारे शब्द (आपके कार्यों के कथन से) सुन्दर बनते रहें जिस तरह आपके चरणकमलों पर चढ़ाये गये तुलसीदल सुन्दर लगने लगते हैं तथा जब तक हमारे कान आपके दिव्य गुणों के कीर्तन से सदैव पूरित होते रहें, तब तक आप जीवन की जिस किसी भी नारकीय स्थिति में हमें जन्म दे सकते हैं।(३.१५.४९)

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः ॥ ५०॥
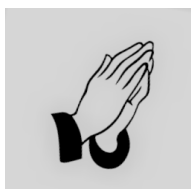
अत: हे प्रभु, हम भगवान् के रूप में आपके नित्य स्वरूप को सादर नमस्कार करते हैं जिसे आपने इतनी कृपा करके हमारे समक्ष प्रकट किया है। आपका परम नित्य स्वरूप अभागे अल्पज्ञ व्यक्तियों द्वारा नहीं देखा जा सकता, किन्तु हम इसे देखकर अपने मन में तथा दृष्टि में अत्यधिक तुष्ट हैं।(३.१५.५०)

12. श्री वराहदेवा स्तुति

देवा ऊचुः

नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।
दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुन्तुद- स्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥ ३० ॥

देवताओं ने भगवान् को सम्बोधित करते हुए कहा—हम आपको नमस्कार करते हैं। आप समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं और आपने शुद्ध सात्विक भाव में विश्व की स्थिति बनाये रखने के लिए वराह रूप धारण किया है। यह हमारा सौभाग्य है कि समस्त लोकों को कष्ट देने वाला असुर आपके हाथों मारा गया और हे भगवान्, अब हम आपके चरण-कमलों की भक्ति करने के लिए स्वतन्त्र हैं।(३.१९.३०)

13. सत्य-युग अवतारस्य विष्णु स्तुति

ऋषिरुवाच

जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः सांसिद्ध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ।
यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भि- राशासते योगिनो रूढयोगाः ॥ १३ ॥

कर्दम मुनि ने कहा—हे परम पूज्य भगवान्, समस्त अस्तित्वों के आगार आपका दर्शन प्राप्त करके मेरी दर्शन की साध पूरी हो गई। महान् योगीजन बारम्बार जन्म लेकर गहन ध्यान में आपके दिव्य रूप का दर्शन करने की आकांक्षा करते रहते हैं।(३.२१.१३)

ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्- पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ।
उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥ १४ ॥

आपके चरण-कमल सांसारिक अज्ञान के सागर को पार करने के लिए सच्चे पोत(नाव) के तुल्य हैं। माया के वशीभूत केवल अज्ञानी पुरुष ही इन चरणों की पूजा इन्द्रियों के क्षुद्र तथा क्षणिक सुख की प्राप्ति हेतु करते हैं जिनकी प्राप्ति नरक में सड़ने वाले व्यक्ति भी कर सकते हैं। तो भी, हे भगवान्, आप इतने दयालु हैं कि उन पर भी आप अनुग्रह करते हैं।(३.२१.१४)

तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ।
उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥ १५ ॥

अत: मैं भी ऐसी समान स्वभाव वाली कन्या से विवाह करने की इच्छा लेकर आपके चरणकमलों की शरण में आया हूँ, जो मेरे विवाहित जीवन में मेरी कामेच्छाओं को पूरा करने में कामधेनु के समान सिद्ध हो सके। आपके चरण प्रत्येक वस्तु के देने वाले हैं, क्योंकि आप कल्पवृक्ष के समान हैं।(३.२१.१५)

प्रजापतेस्ते वचसाधीश तन्त्या लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ।
अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लानिमिषाय तुभ्यम् ॥ १६ ॥
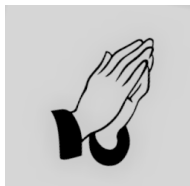
हे भगवान्, आप समस्त जीवात्माओं के स्वामी तथा नायक हैं। आपके आदेश से सभी बद्धजीव मानो डोरी से बँधकर अपनी-अपनी इच्छाओं की तुष्टि में निरन्तर लगे रहते हैं। उन्हीं का अनुसरण करते हुए, हे धर्ममूर्ते, शाश्वत काल रूप आपको मैं भी अपनी आहुति (बलि) अर्पण करता हूँ।(३.२१.१६)

लोकांश्च लोकानुगतान् पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम्।
परस्परं त्वद्गुणवादसीधु- पीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥ १७ ॥

फिर भी जिन पुरुषों ने रूढ़ सांसारिकता तथा इनके पशुतुल्य अनुयायियों का परित्याग कर दिया है और जिन्होंने परस्पर विचार-विनिमय के द्वारा आपके गुणों तथा कार्यकलापों के मादक अमृत (सुधा) का पान करके आपके चरण-कमलों की छत्रछाया ग्रहण की है वे भौतिक देह की मूल आवश्यकताओं से मुक्त हो सकते हैं। (३.२१.१७)

न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व।
षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥ १८ ॥

आपका तीन नाभिवाला (काल) चक्र अमर ब्रह्म की धुरी के चारों ओर घूम रहा है। इसमें तेरह तीलियाँ (अरे), 360 जोड़, छह परिधियाँ तथा उस पर अनन्त पत्तियाँ (पत्तर) पिरोयी हुई हैं। यद्यपि इसके घूमने से सम्पूर्ण सृष्टि की जीवन-अवधि घट जाती है, किन्तु यह प्रचण्ड वेगवान् चक्र भगवान् के भक्तों की आयु का स्पर्श नहीं कर सकता।(३.२१.१८)

एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया- द्वितीययात्मन्नधियोगमायया।
सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवन् स्वशक्तिभिः ॥ १९ ॥

हे भगवान्, आप अकेले ही ब्रह्माण्डों की सृष्टि करते हैं। हे श्रीभगवान्, इन ब्रह्माण्डों की सृष्टि करने की इच्छा से, आप उनकी सृष्टि करते, उन्हें पालते और फिर अपनी शक्तियों से उनका अन्त कर देते हैं। ये शक्तियाँ आपकी दूसरी शक्ति योगमाया के अधीन हैं, जिस प्रकार एक मकड़ी अपनी शक्ति से जाला बुनती है और पुनः उसे निगल जाती है।(३.२१.१९)

नैतद्बताधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम्।
अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या भगवान् विलक्षितः ॥ २० ॥

हे भगवान्, इच्छा के न होते हुए भी आप स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों की इस सृष्टि को हमारी ऐन्द्रिय तुष्टि के लिए प्रकट करते हैं। आपकी अहैतुकी कृपा हमें प्राप्त हो, क्योंकि आप अपने नित्य रूप में तुलसीदल की माला से विभूषित होकर हमारे समक्ष प्रकट हुए हैं।(३.२१.२०)

तं त्वानुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम्।
नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपाद- सरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥ २१ ॥

मैं आपके चरण-कमलों में निरन्तर सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी शरण ग्रहण करना श्रेयस्कर है, क्योंकि आप अकिंचनों पर समस्त आशीर्वादों की वृष्टि करने वाले हैं। आपने इन भौतिक लोकों को अपनी ही शक्ति से विस्तार दिया है, जिससे समस्त जीवात्माएँ आपकी अनुभूति के द्वारा सकाम कर्मों से विरक्ति प्राप्त कर सकें। (३.२१.२१)

14. श्री कर्दमस्य स्तुति

अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः।
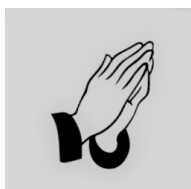
कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥ २७ ॥

कर्दम मुनि ने कहा—ओह! इस ब्रह्माण्ड के देवता लम्बी अवधि के बाद कष्ट में पड़ी हुई उन आत्माओं पर प्रसन्न हुए हैं, जो अपने कुकृत्यों के कारण भौतिक बन्धन में पड़े हुए हैं।(३.२४.२७)

बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ।
द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥ २८ ॥

परिपक्व योगीजन योग समाधि में अनेक जन्म लेकर एकान्त स्थानों में रह कर श्रीभगवान् के चरणकमलों को देखने का प्रयत्न करते रहते हैं।(३.२४.२८)

स एव भगवानद्य हेलनं नगणय्य नः ।
गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥ २९ ॥

हम जैसे सामान्य गृहस्थों की उपेक्षा का ध्यान न करते हुए वही श्रीभगवान् अपने भक्तों की सहायता के लिए ही हमारे घरों में प्रकट होते हैं।(३.२४.२९)

स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ।
चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥ ३० ॥

कर्दम मुनि ने कहा—सदैव अपने भक्तों का मानवर्धन करने वाले मेरे प्रिय भगवान्, आप अपने वचनों को पूरा करने तथा वास्तविक ज्ञान का प्रसार करने के लिए ही मेरे घर में अवतरित हुए हैं।(३.२४.३०)

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥ ३१ ॥

हे भगवन्, यद्यपि आपका कोई भौतिक रूप नहीं है, किन्तु आपके अपने ही अनन्त रूप हैं। वे सचमुच ही आपके दिव्य रूप हैं और आपके भक्तों को आनन्दित करनेवाले हैं।(३.२४.३१)

त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा सदाभिवादार्हणपादपीठम् ।
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोध- वीर्यश्रिया पूर्तमहं प्रपद्ये ॥ ३२ ॥

हे भगवान्, आपके चरणकमल ऐसे कोष के समान हैं, जो परम सत्य को जानने के इच्छुक बड़े-बड़े ऋषियों-मुनियों का सदैव आदर प्राप्त करने वाला है। आप ऐश्वर्य, वैराग्य, दिव्य यश, ज्ञान, वीर्य और सौन्दर्य से ओत-प्रोत हैं अत: मैं आपके चरणकमलों की शरण में हूँ।(३.२४.३२)

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ।
आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥ ३३ ॥

मैं कपिल के रूप में अवतरित होने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण लेता हूँ, जो स्वतन्त्र रूप से शक्तिमान तथा दिव्य हैं, जो परम पुरुष हैं तथा पदार्थ और काल को मिलाकर सबों के भगवान् हैं, जो त्रिगुणमय सभी ब्रह्माण्डों के पालनकर्ता हैं और प्रलय के पश्चात् भौतिक प्रपञ्चों को अपने में लीन कर लेते हैं।(३.२४.३३)

आ स्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयावतीर्णर्ण उताप्तकामः ।
परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः ॥ ३४ ॥
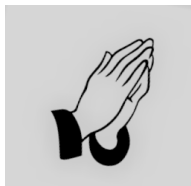
समस्त जीवात्माओं के स्वामी मुझे आप से आज कुछ पूछना है। चूँकि आपने मुझे अब पितृ-ऋण से मुक्त कर दिया है और मेरे सभी मनोरथ पूरे हो चुके हैं, अत: मैं संन्यास-मार्ग ग्रहण करना चाहता हूँ। इस गृहस्थ जीवन को त्याग कर मैं शोकरहित होकर अपने हृदय में सदैव आपको धारण करते हुए सर्वत्र भ्रमण करना चाहता हूँ।(३.२४.३४)

15. मात्रु गर्भस्तय जीवस्य स्तुति

जन्तुरुवाच

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्त- नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम्।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥ १२ ॥

जीव कहता है : मैं उन भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ जो अपने विभिन्न नित्य स्वरूपों में प्रकट होते हैं और इस भूतल पर घूमते रहते हैं। मैं उन्हीं की शरण ग्रहण करता हूँ, क्योंकि वे ही मुझे निर्भय कर सकते हैं और उन्हीं से मुझे यह जीवन-अवस्था प्राप्त हुई है, जो मेरे अपवित्र कार्यों के सर्वथा अनुरूप है।(३.३१.१२)

यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम्।
आस्ते विशुद्धमविकारमखण्डबोध- मातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ॥ १३ ॥

मैं विशुद्ध आत्मा अपने कर्म के द्वारा बँधा हुआ, माया की व्यवस्थावश इस समय अपनी माता के गर्भ में पड़ा हुआ हूँ। मैं उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ जो यहाँ मेरे साथ हैं, किन्तु जो अप्रभावित हैं और अपरिवर्तनशील हैं। वे असीम हैं, किन्तु संतप्त हृदय में देखे जाते हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।(३.३१.१३)

यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरे च्छन्नोऽयथेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम्।
तेनाविकुण्ठमहिमानमृषिं तमेनं वन्दे परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम् ॥ १४ ॥

मैं अपने इस पंचभूतों से निर्मित भौतिक शरीर में होने के कारण परमेश्वर से विलग हो गया हूँ, फलत: मेरे गुणों तथा इन्द्रियों का दुरुपयोग हो रहा है, यद्यपि मैं मूलत: आध्यात्मिक हूँ। चूँकि ऐसे भौतिक शरीर से रहित होने के कारण भगवान् प्रकृति तथा जीव से परे हैं और चूँकि उनके आध्यात्मिक गुण महिमामय हैं, अत: मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।(३.३१.१४)

यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन् सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण।
नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥ १५ ॥

जीव आगे प्रार्थना करता है : जीवात्मा प्रकृति के वशीभूत रहता है और जन्म तथा मरण का चक्र बनाये रखने के लिए कठिन श्रम करता रहता है। यह बद्ध जीवन भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध की विस्मृति के कारण है। अत: बिना भगवान् की कृपा के कोई भगवान् की दिव्य प्रेमा-भक्ति में पुन: किस प्रकार संलग्न हो सकता है?(३.३१.१५)

ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देव- स्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः।
तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमाना- स्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥ १६ ॥

भगवान् के आंशिक स्वरूप अन्तर्यामी परमात्मा के अतिरिक्त और कौन समस्त चर तथा अचर वस्तुओं का निर्देशन कर रहा है? वे काल की इन तीनों अवस्थाओं भूत,वर्तमान तथा भविष्य में उपस्थित रहते हैं। अत: बद्धजीव उनके ही आदेश से विभिन्न कर्मों में रत है और इस बद्ध जीवन के तीनों तापों से मुक्त होने के लिए हमें उनकी ही शरण ग्रहण करनी होगी।(३.३१.१६)

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनासृग्- विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः।
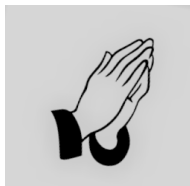
इच्छन्नितो विवसितुं गणयन् स्वमासान् निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन् कदा नु ॥१७॥

अपनी माता के उदर में रक्त, मल तथा मूत्र के कूप में गिर कर और अपनी माँ की जठराग्नि से दग्ध देहधारी जीव बाहर निकलने की व्यग्रता में महीनों की गिनती करता रहता है और प्रार्थना करता है, ''हे भगवान्, यह अभागा जीव कब इस कारागार से मुक्त हो पाएगा ?''(३.३१.१७)

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश सङ्ग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ।
स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनाञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥१८॥

हे भगवान्, आपकी अहैतुकी कृपा से मुझमें चेतना आई, यद्यपि मैं अभी केवल दस मास का हूँ। पतितात्माओं के मित्र भगवान् की इस अहैतुकी कृपा के लिए कृतज्ञता प्रकट करने के हेतु मेरे पास हाथ जोड़कर प्रार्थना करने के अतिरिक्त है ही क्या ?(३.३१.१८)

पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ।
यत्सृष्टयासं तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् ॥ १९ ॥

अन्य प्रकार का शरीरधारी जीव केवल अन्त:प्रेरणा से देखता है, वह उस शरीर के ग्राह्य तथा अग्राह्य अनुभवों से ही परिचित होता है, किन्तु मुझे ऐसा शरीर प्राप्त है, जिसमें मैं अपनी इन्द्रियों को वश में रखता हूँ और अपने गन्तव्य को समझता हूँ, अत:मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जिनके आशीर्वाद से मुझे यह शरीर प्राप्त हुआ है और जिनकी कृपा से मैं उन्हें भीतर और बाहर देख सकताहूँ!(३.३१.१९)

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ।
यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥ २० ॥

अत: हे प्रभु, यद्यपि मैं अत्यन्त भयावह परिस्थिति में रह रहा हूँ, किन्तु मैं अपनी माँ के गर्भ से बाहर आकर भौतिक जीवन के अन्धकूप में गिरना नहीं चाहता। देवमाया नामक आपकी बहिरंगा शक्ति तुरन्त नवजात शिशु को पकड़ लेती है और उसके बाद तुरन्त ही झूठा स्वरूपज्ञान प्रारम्भ हो जाता है, जो निरन्तर जन्म तथा मृत्यु के चक्र का शुभारम्भ है।(३.३१.२०)

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ।
भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ २१ ॥

अत: और अधिक क्षुब्ध न होकर मैं अपने मित्र विशुद्ध चेतना की सहायता से अज्ञान के अन्धकार से अपना उद्धार करूँगा। केवल भगवान् विष्णु के चरणकमलों को अपने मन में धारण करके मैं बारम्बार जन्म तथा मृत्यु के लिए अनेक माताओं के गर्भों में प्रविष्ट करने से बच सकूँगा।(३.३१.२१)

16. श्री देवहुति कृत श्रीकपिलदेव स्तवः

देवहूतिरुवाच

अथाप्यजोऽन्तःसलिले शयानं भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ।
गुणप्रवाहं सदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥ २ ॥

देवहूति ने कहा : ब्रह्माजी अजन्मा कहलाते हैं, क्योंकि वे आपके उदर से निकलते हुए कमल-पुष्प से जन्म लेते हैं और आप ब्रह्माण्ड के तल पर समुद्र में शयन करते रहते हैं। लेकिन ब्रह्माजी ने भी केवल अनन्त ब्रह्माण्डों के उद्गम स्रोत, आपका ध्यान ही किया।(३.३३.२)

स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।
सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसन्धि- रात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ ३ ॥

हे भगवान्, यद्यपि आपको निजी रूप से कुछ करना नहीं रहता, किन्तु आपने अपनी शक्तियाँ प्रकृति के गुणों की अन्त:क्रियाओं में वितरित कर दी हैं जिसके बल पर दृश्यजगत की उत्पत्ति, पालन तथा संहार होता है। हे भगवान्, आप दृढ़संकल्प हैं और समस्त जीवों के भगवान् हैं। आपने उन्हीं के लिए यह संसार रचा और यद्यपि आप एक हैं, किन्तु आपकी शक्तियाँ अनेक प्रकार से कार्य करती हैं। यह हमारे लिए अकल्पनीय है।(३.३३.३)

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ।
विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥ ४ ॥

आपने मेरे उदर से श्रीभगवान् के रूप में जन्म लिया है। हे भगवन्, यह उस परमेश्वर के लिए किस प्रकार सम्भव हो सका जिसके उदर में यह सारा दृश्य-जगत स्थित है? इसका उत्तर होगा कि ऐसा सम्भव है, क्योंकि कल्प के अन्त में आप वटवृक्ष की एक पत्ती पर लेट जाते हैं और एकछोटे से बालक की भाँति अपने चरणकमल के अँगूठे को चूसते हैं।(३.३३.४)

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये ।
यथावतारास्तव सूकरादय- स्तथायमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ ५ ॥

हे भगवान्, आपने पतितों के पापपूर्ण कर्मों को घटाने तथा उनके भक्ति एवं मुक्ति के ज्ञान को बढ़ाने के लिए यह शरीर धारण किया है। चूँकि ये पापात्माएँ आपके निर्देश पर आश्रित हैं, अत: आप स्वेच्छा से सूकर तथा अन्य रूपों में अवतरित होते हैं। इसी प्रकार आप अपने आश्रितों को दिव्य ज्ञान वितरित करने के लिए प्रकट हुए हैं।(३.३३.५)

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ ६ ॥
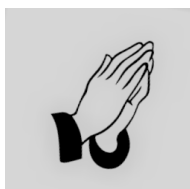
उन व्यक्तियों की आध्यात्मिक उन्नति के विषय में क्या कहा जाय जो परम पुरुष का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, यदि कुत्ता खाने वाले परिवार में उत्पन्न व्यक्ति भी भगवान् के पवित्र नाम का एक बार भी उच्चारण करता है अथवा उनका कीर्तन करता है, उनकी लीलाओं का श्रवण करता है, उन्हें नमस्कार करता है, या कि उनका स्मरण करता है, तो वह तुरन्त वैदिक यज्ञ करने के लिए योग्य बन जाता है।(३.३३.६)

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ ७ ॥

ओह! वे कितने धन्य हैं जिनकी जिह्वाएँ आपके पवित्र नाम का जप करती हैं! कुत्ता खाने वाले वंशों में उत्पन्न होते हुए भी ऐसे पुरुष पूजनीय हैं। जो पुरुष आपके पवित्र नाम का जप करते हैं उन्होंने सभी प्रकार की तपस्याएँ तथा हवन किये होंगे और आर्यों के सदाचार प्राप्त किये होंगे। आपके पवित्र नाम का जप करते रहने के लिए उन्होंने तीर्थस्थानों में स्नान किया होगा, वेदों का अध्ययन किया होगा और अपेक्षित हर वस्तु की पूर्ति की होगी।(३.३३.७)

तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ।

स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥ ८ ॥

हे भगवान्, मुझे विश्वास है कि आप कपिल नाम से स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु अर्थात् परब्रह्म हैं। सारे ऋषि-मुनि इन्द्रियों तथा मन के उद्वेगों से मुक्त होकर आपका ही चिन्तन करते हैं, क्योंकि आपकी कृपा से ही मनुष्य भव-बन्धन से छूट सकता है। प्रलय के समय सारे वेद आपमें ही स्थान पाते हैं।(३.३३.८)
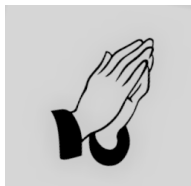
17. श्री नर-नारायण स्तुति

देवा ऊचुः

यो मायया विरचितं निजयात्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ।
एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥ ५६ ॥

देवताओं ने कहा : हम उस दिव्य रूप भगवान् को नमस्कार करते हैं जिन्होंने इस दृश्य जगत की सृष्टि अपनी बहिरंगा शक्ति के रूप में की है, जो उनमें उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार वायु तथा बादल आकाश में रहते हैं और जो अब धर्म के घर में नर-नारायण ऋषि के रूप में प्रकट हुए हैं।(४.१.५६)

सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान् सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ।
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपतारविन्दम् ॥ ५७ ॥

वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, जो वास्तविक रूप से प्रामाणिक वैदिक साहित्य द्वारा जाने जाते हैं और जिन्होंने सृष्ट जगत की समस्त विपत्तियों को विनष्ट करने के लिए शान्ति तथा समृद्धि का सृजन किया है, हम देवताओं पर कृपापूर्ण दृष्टिपात करें। उनकी कृपापूर्ण चितवन लक्ष्मी के आसन निर्मल कमल की शोभा को मात करने वाली है।(४.१.५७)

18. दक्षध्यानेंन यज्ञे प्रदुर्भुतस्य हरे स्तवः

दक्ष उवाच

शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम् ।
तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्या- मास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ॥ २६ ॥

दक्ष ने भगवान् को सम्बोधित करते हुए कहा—हे प्रभु, आप समस्त कल्पना-अवस्थाओं से परे हैं। आप परम चिन्मय, भय-रहित और भौतिक माया को वश में रखने वाले हैं। यद्यपि आप माया में स्थित प्रतीत होते हैं, किन्तु आप दिव्य हैं। आप भौतिक कल्मष से मुक्त हैं, क्योंकि आप परम स्वतंत्र हैं।(४.७.२६)

ऋत्विज ऊचुः

तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात् कर्मण्यवग्रहधियो भगवन्विदामः ।
धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदोव्यवस्थाः ॥ २७ ॥

पुरोहितों ने भगवान् को सम्बोधित करते हुए कहा—हे भगवन्, आप भौतिक कल्मष से परे हैं। शिव के अनुचरों द्वारा दिये गये शाप के कारण हम सकाम कर्म में लिप्त हैं, अतः हम पतित हो चुके हैं और आपके विषय में कुछ भी नहीं जानते। उल्टे, हम यज्ञ के नाम पर अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के लिए वेदत्रयी के आदेशों में आ फँसे हैं। हमें ज्ञात है कि आपने देवताओं को अपने-अपने उनके भाग दिये जाने की व्यवस्था कर रखी है।(४.७.२७)

सदस्या ऊचुः

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र- व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः द्वन्द्वश्वभ्रे
खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ।२८।

सभा के सदस्यों ने भगवान् को सम्बोधित किया—हे संतप्त जीवों के एकमात्र आश्रय, इस बद्ध संसार के दुर्ग में काल-रूपी सर्प प्रहार करने की ताक में रहता है। यह संसार तथाकथित सुख तथा दुख की खंदकों से भरा पड़ा है और

अनेक हिंस्र पशु आक्रमण करने को सन्नद्ध रहते हैंशोक रूपी अग्नि सदैव प्रज्ज्वलित रहती है और मृषा सुख की मृगतृष्णा सदैव मोहती रहती है, किन्तु मनुष्य को इनसे छुटकारा नहीं मिलता। इस प्रकार अज्ञानी पुरुष जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं और अपने तथाकथित कर्तव्यों के भार से सदा दबे रहते हैं। हमें ज्ञात नहीं कि वे आपके चरणकमलों की शरण में कब जाएँगे।(४.७.२८)

रुद्र उवाच

तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ।
यदि रचितधियं माविद्यलोकोऽपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥२९॥

शिवजी ने कहा : हे भगवान्, मेरा मन तथा मेरी चेतना निरन्तर आपके पूजनीय चरणकमलों पर स्थिर रहती है, जो समस्त वरों तथा इच्छाओं की पूर्ति के स्रोत होने के कारण समस्त मुक्त महामुनियों द्वारा पूजित हैं क्योंकि आपके चरण कमल ही पूजा के योग्य। आपके चरणकमलों में मन को स्थिर रखकर मैं उन व्यक्तियों से विचलित नहीं होता जो यह कहकर मेरी निन्दा करते हैं कि मेरे कर्म पवित्र नहीं हैं। मैं उनके आरोपों की परवाह नहीं करता और मैं उसी प्रकार दयावश उन्हें क्षमा कर देता हूँ, जिस प्रकार आप समस्त जीवों के प्रति दया प्रदर्शित करते हैं।(४.७.२९)

भृगुरुवाच

यन्मायया गहनयापहतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः ।
नात्मन्श्रितं तव विदन्त्यधुनापि तत्त्वं सोऽयं प्रसीदतु भवान् प्रणतात्मबन्धुः ॥३०॥

भृगु मुनि ने कहा : हे भगवन्, सर्वोच्च ब्रह्मा से लेकर सामान्य चींटी तक सारे जीव आपकी माया शक्ति के दुर्लंघ्य जादू के वशीभूत हैं और इस प्रकार वे अपनी स्वाभाविक स्थिति से अपरिचित हैं। देहात्मबुद्धि में विश्वास करने के कारण सभी मोह के अंधकार में पड़े हुए हैं। वे वास्तव में यह नहीं समझ पाते कि आप प्रत्येक जीवात्मा में परमात्मा के रूप में कैसे रहते हैं, न तो वे आपके परम पद को ही समझ सकते हैं। किन्तु आप समस्त शरणागत जीवों के नित्य सखा एवं रक्षक हैं। अतः आप हम पर कृपालु हों और हमारे समस्त पापों को क्षमा कर दें।(४.७.३०)

ब्रह्मोवाच

नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थ- भेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ।
ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद् व्यतिरिक्तो मतस्त्वम् ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी ने कहा : हे भगवन्, यदि कोई पुरुष आपको ज्ञानअर्जित करने की विभिन्न विधियों द्वारा जानने का प्रयास करे तो वह आपके व्यक्तित्व एवं शाश्वत रूप को नहीं समझ सकता।आपकी स्थिति भौतिक सृष्टि की तुलना में सदैव दिव्य है, जबकि आपको समझने के प्रयास,लक्ष्य तथा साधन सभी भौतिक और काल्पनिक हैं।(४.७.३१)

इन्द्र उवाच

इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् ।
सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधै- र्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥ ३२ ॥

राजा इन्द्र ने कहा : हे भगवन्, प्रत्येक हाथ में आयुध धारण किये आपका यह अष्टभुज दिव्य रूप सम्पूर्ण विश्व के कल्याण हेतु प्रकट होता है और मन तथा नेत्रों को अत्यन्त आनन्दित करने वाला है। आप इस रूप में अपने भक्तों से ईर्ष्या करने वाले असुरों को दण्ड देने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।(४.७.३२)
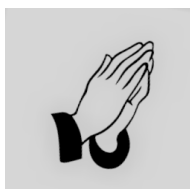
पत्न्य ऊचुः

यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाद्य दक्षकोपात् ।
तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥ ३३ ॥

याज्ञिकों की पत्नियों ने कहा : हे भगवान्, वह यज्ञ ब्रह्मा के आदेशानुसार व्यवस्थित किया गया था, किन्तु दुर्भाग्यवश दक्ष से क्रुद्ध होकर शिव ने समस्त दृश्य को ध्वस्त कर दिया और उनके रोष के कारण यज्ञ के निमित्त लाये गये पशु निर्जीव पड़े हैं। अत: यज्ञ की सारी तैयारियाँ बेकार हो चुकी हैं। अब आपके कमल जैसे नेत्रों की चितवन से इस यज्ञस्थल की पवित्रता पुनः प्राप्त हो।(४.७.३३)

ऋषय ऊचुः

अनन्वितं ते भगवन् विचेष्टितं यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे ।
विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥ ३४ ॥

ऋषियों ने प्रार्थना की: हे भगवान्, आपके कार्य अत्यन्त आश्चर्यमय हैं और यद्यपि आप सब कुछ अपनी विभिन्न शक्तियों से करते हैं, किन्तु आप उनसे लिप्तनहीं होते। यहाँ तक कि आप सम्पत्ति की देवी लक्ष्मीजी से भी लिप्त नहीं हैं, जिनकी पूजा ब्रह्माजी जैसे बड़े-बड़े देवताओं द्वारा उनकी कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती है।(४.७.३४)

सिद्धा ऊचुः

अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ।
तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः ॥ ३५ ॥

सिद्धों ने स्तुति की : हे भगवन्, हमारे मन उस हाथी के समान हैं, जो जंगल की आग से त्रस्त होने पर नदी में प्रविष्ट हो ते ही सभी कष्ट भूल सकता है। उसी तरह ये हमारे मन भी आपकी दिव्य लीलाओं की अमृत-नदी में निमज्जित हैं और ऐसे दिव्य आनन्द में निरन्तर बने रहना चाहते हैं, जो परब्रह्म में तदाकार होने के सुख के समान ही है।(४.७.३५)

यजमान्युवाच

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पुरुषः ॥ ३६ ॥

दक्ष की पत्नी ने इस प्रकार प्रार्थना की—हे भगवान्, यह हमारा सौभाग्य है कि आप यज्ञस्थल में पधारे हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ और आपसे प्रार्थना करती हूँ कि इस अवसर पर आप प्रसन्न हों। यह यज्ञस्थल आपके बिना शोभा नहीं पा रहा था, जिस प्रकार कि सिर के बिना धड़ शोभा नहीं पाता।(४.७.३६)

लोकपाला ऊचुः

दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन विश्वम् ।
माया ह्येषा भवदीया हि भूमन् यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥ ३७ ॥

विभिन्न लोकों के लोकपालों ने इस प्रकार कहा : हे भगवन्, हम अपनी प्रत्यक्ष प्रतीति पर ही विश्वास करते हैं, किन्तु इस परिस्थिति में हम नहीं जानते कि हमने आपका दर्शन वास्तव में अपनी भौतिक इन्द्रियों से किया है अथवा नहीं। इन इन्द्रियों से तो हम दृश्य जगत को ही देख पाते हैं, किन्तु आप तो पाँच तत्त्वों के परे हैं। आप तो छठवें तत्त्व हैं। अत: हम आपको भौतिक जगत की सृष्टि के रूप में देख रहे हैं।(४.७.३७)
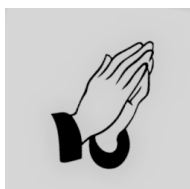
योगेश्वरा ऊचुः
प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ।
अथापि भक्त्येशतयोपधावता- मनन्यवृत्त्यानुगृहाण वत्सल ॥ ३८ ॥

महान् योगियों ने कहा : हे भगवान्, जो लोग यह जानते हुए कि आप समस्त जीवात्माओं के परमात्मा हैं, आपको अपने से अभिन्न देखते हैं, वे निश्चय ही आपको परम प्रिय हैं। जो आपको स्वामी तथा अपने आपको दास मानकर आपकी भक्ति में अनुरक्त रहते हैं, आप उन पर परम कृपालु रहते हैं। आप कृपावश उन पर सदैव हितकारी रहते हैं।(४.७.३८)

जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयात्ममायया ।
रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥ ३९ ॥

हम उन परम पुरुष को सादर नमस्कार करते हैं जिन्होंने नाना प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न कीं और उन्हें भौतिक जगत के त्रिगुणों के वशीभूत कर दिया जिससे उनकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार हो सके। वे स्वयं बहिरंगा शक्ति के अधीन नहीं हैं, वे साक्षात् रूप में भौतिक गुणों के विविध प्राकट्य से रहित हैं और मिथ्या मायामोह से दूर हैं।(४.७.३९)

ब्रह्मोवाच
नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ।
निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च ॥ ४० ॥

साक्षात् वेदों ने कहा : हे भगवान्, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं, क्योंकि आप सतोगुण के आश्रय होने के कारण समस्त धर्म तथा तपस्या के स्रोत हैं; आप समस्त भौतिक गुणों से परे हैं और कोई भी न तो आपको और न आपकी वास्तविक स्थिति को जानने वाला है।(४.७.४०)

अग्निरुवाच
यत्तेजसाहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ।
तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥ ४१ ॥

अग्निदेव ने कहा : हे भगवान्, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ क्योंकि आपकी ही कृपा से मैं प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी हूँ और मैं यज्ञ में प्रदत्त घृतमिश्रित आहुतियाँ स्वीकार करता हूँ। यजुर्वेद में वर्णित पाँच प्रकार की हवियाँ आपकी ही विभिन्न शक्तियाँ हैं और आपकी पूजा पाँच प्रकार के वैदिक मंत्रों से की जाती है। यज्ञ का अर्थ ही आप अर्थात् परम भगवान् है।(४.७.४१)

देवा ऊचुः
पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन् सलिल उरगेन्द्राधिशयने ।
पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥ ४२ ॥

देवताओं ने कहा : हे भगवान्, पहले जब प्रलय हुआ था, तो आपने भौतिक जगत की विभिन्न शक्तियों को संरक्षित कर लिया था। उस समय ऊर्ध्वलोकों के सभी वासी, जिनमें सनक जैसे मुक्त जीव भी थे, दार्शनिक चिन्तन द्वारा आपका ध्यान कर रहे थे। अतः आप आदिपुरुष हैं। आप प्रलयकालीन जल में शेषशय्या पर शयन करते हैं। अब आज आप हमारे के समक्ष दिख रहे हैं। हम सभी आप के दास हैं। कृपया हमें शरण दीजिये।(४.७.४२)

गन्धर्वा ऊचुः
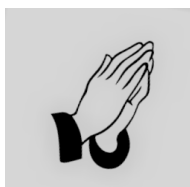
अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ।
क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य विभूमन् तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥ ४३ ॥

गन्धर्वों ने कहा : हे भगवन्, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र तथा मरीचि समेत समस्त देवता तथा ऋषिगण आपके ही शरीर के विभिन्न अंश हैं। आप परम शक्तिमान हैं, यह सारी सृष्टि आपके लिए खिलवाड़ मात्र है। हम सदैव आपको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् रूप में स्वीकार करते है और आपको सादर नमस्कार करते हैं।(४.७.४३)

विद्याधरा ऊचुः

त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन् कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ।
क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ॥४४ ॥

विद्याधरों ने कहा : हे प्रभु, यह मानव देह सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने केनिमित्त है, किन्तु आपकी बहिरंगा शक्ति के वशीभूत होकर जीवात्मा अपने आपको भ्रमवश देह तथा भौतिक शक्ति मान बैठता है, अत: माया के वश में आकर वह सांसारिक भोग द्वारा सुखी बनना चाहता है। वह दिग्भ्रमित हो जाता है और क्षणिक माया-सुख के प्रति सदैव आकर्षित होता रहता है। किन्तु आपके दिव्य कार्यकलाप इतने प्रबल हैं कि यदि कोई उनके श्रवण तथा कीर्तन में अपने को लगाए तो मोह से उसका उद्धार हो सकता है।(४.७.४४)

ब्राह्मणा ऊचुः

त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ।
त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणों ने कहा : हे भगवान्, आप साक्षात् यज्ञ हैं। आप ही घृत की आहुति हैं; आप अग्नि हैं; आप वैदिक मंत्रों के उच्चारण हैं, जिनसे यज्ञ कराया जाता है; आप ईंधन हैं; आप ज्वाला हैं; आप कुश हैं और आप ही यज्ञ के पात्र हैं। आप यज्ञकर्ता पुरोहित हैं, इन्द्र आदि देवतागण आप ही हैं और आप यज्ञ-पशु हैं। जो कुछ भी यज्ञ में अर्पित किया जाता है, वह आप या आपकी शक्ति है।(४.७.४५)

त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ।
स्तूयमानो नदल्लीलया योगिभि- र्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥ ४६ ॥

हे भगवान्, हे साक्षात् वैदिक ज्ञान, अत्यन्त पुरातन काल पहले, पिछले युग में जब आप महान् सूकर अवतार के रूप में प्रकट हुए थे तो आपने पृथ्वी को जल के भीतर से इस प्रकार ऊपर उठा लिया था जिस प्रकार कोई हाथी सरोवर में से कमलिनी को उठा लाता है। जब आपने उस विराट सूकर रूप में दिव्य गर्जन किया, तो उस ध्वनि को यज्ञ मंत्र के रूप में स्वीकार कर लिया गया और सनक जैसे महान् ऋषियों ने उसका ध्यान करते हुए आपकी स्तुति की।(४.७.४६)

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥ ४७ ॥

हे भगवान्, हम आपके दर्शन के लिए प्रतीक्षारत थे क्योंकि हम वैदिक अनुष्ठानों के अनुसार यज्ञ करने में असमर्थ रहे हैं। अत: हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हम पर प्रसन्न हों। आपके पवित्र नाम-कीर्तन मात्र से समस्त बाधाएँ दूर हो जाती हैं। हम आपके समक्ष आपको सादर नमस्कार करते हैं।(४.७.४७)

19. श्री ध्रुवस्य श्री पृस्निगर्भस्य स्तवः

ध्रुव उवाच

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ६ ॥

ध्रुव महाराज ने कहा : हे भगवन्, आप सर्वशक्तिमान हैं। मेरे अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर आपने मेरी सभी सोई हुई इन्द्रियों को—हाथों, पाँवों, स्पर्शेन्द्रिय, प्राण तथा मेरी वाणी को—जाग्रत कर दिया है। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(४.९.६)

एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।
सृष्ट्वानुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥

हे भगवन्, आप सर्वश्रेष्ठ हैं, किन्तु आप आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों में अपनी विभिन्न शक्तियों के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट होते रहते हैं। आप अपनी बहिरंगा शक्ति से भौतिक जगत की समस्त शक्ति को उत्पन्न करके बाद में भौतिक जगत में परमात्मा के रूप में प्रविष्ट हो जाते हैं। आप परम पुरुष हैं और क्षणिक गुणों से अनेक प्रकार की सृष्टि करते हैं, जिस प्रकार कि अग्नि विभिन्न आकार के काष्ठखण्डों में प्रविष्ट होकर विविध रूपों में चमकती हुई जलती है।(४.९.७)

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥ ८ ॥

हे स्वामी, ब्रह्मा पूर्ण रूप से आपके शरणागत हैं। आरम्भ में आपने उन्हें ज्ञान दिया तो वे समस्त ब्रह्माण्ड को उसी तरह देख और समझ पाये जिस प्रकार कोई मनुष्य नींद से जगकर तुरन्त अपने कार्य समझने लगता है। आप मुक्तिकामी समस्त पुरुषों के एकमात्र आश्रय हैं और आप समस्त दीन-दुखियों के मित्र हैं। अतः पूर्ण ज्ञान से युक्त विद्वान पुरुष आपको किस प्रकार भुला सकता है ?(४.९.८)

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य-मिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥९॥

जो व्यक्ति इस चमड़े के थैले (शवतुल्य देह) की इन्द्रियतृह्विश्वत के लिए ही आपकी पूजा करते हैं, वे निश्चय ही आपकी माया द्वारा प्रभावित हैं। आप जैसे कल्पवृक्ष तथा जन्म-मृत्यु से मुक्ति के कारण को पार करके भी मेरे समान मूर्ख व्यक्ति आपसे इन्द्रियतृप्ति हेतु वरदान चाहते हैं, जो नरक में रहनेवाले व्यक्तियों के लिए भी उपलब्ध हैं।(४.९.९)

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म- ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत् किं त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥१०॥

हे भगवन्, आपके चरणकमलों के ध्यान से या शुद्ध भक्तों से आपकी महिमा का श्रवण करने से जो दिव्य आनन्द प्राप्त होता है, वह उस ब्रह्मानन्द अवस्था से कहीं बढ़कर है, जिसमें मनुष्य अपने को निर्गुण ब्रह्म से तदाकार हुआ सोचता है। चूँकि ब्रह्मानन्द भी भक्ति से मिलनेवाले दिव्य आनन्द से परास्त हो जाता है, अतः उस क्षणिक आनन्दमयता का क्या कहना, जिसमें कोई स्वर्ग तक पहुँच जाये और जो कालरूपी तलवार के द्वारा विनष्ट हो जाता है ? भले ही कोई स्वर्ग तक क्यों न उठ जाये, कालक्रम में वह नीचे गिर जाता है।(४.९.१०)

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥ ११ ॥

ध्रुव महाराज ने आगे कहा : हे अनन्त भगवान्, कृपया मुझे आशीर्वाद दें जिससे मैं उन महान् भक्तों की संगति कर सकूँ जो आपकी दिव्य प्रेमा भक्ति में उसी प्रकार निरन्तर लगे रहते हैं जिस प्रकार नदी की तरंगें लगातार बहती रहती हैं। ऐसे दिव्य भक्त नितान्त कल्मषरहित जीवन बिताते हैं। मुझे विश्वास है कि भक्तियोग से मैं संसार रूपी अज्ञान के सागर को पार कर सकूँगा जिसमें अग्नि की लपटों के समान भयंकर संकटों की लहरें उठ रही हैं। यह मेरे लिए सरल रहेगा, क्योंकि मैं आपके दिव्य गुणों तथा लीलाओं के सुनने के लिए पागल हो रहा हूँ, जिनका अस्तित्व शाश्वत है।(४.९.११)

ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ।
ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्द- सौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥ १२ ॥

हे कमलनाभ भगवान्, यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे भक्त की संगति करता है, जिसका हृदय सदैव आपके चरणकमलों की सुगन्ध में लुब्ध रहता है, तो वह न तो कभी अपने भौतिक शरीर के प्रति आसक्त रहता है और न सन्तति, मित्र, घर, सम्पत्ति तथा पत्नी के प्रति देहात्मबुद्धि रखता है, जो भौतिकतावादी पुरुषों को अत्यन्त ही प्रिय हैं। वस्तुतः वह उनकी तनिक भी परवाह नहीं करता।(४.९.१२)

तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्य- मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ।
रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ १३ ॥

हे भगवन्, हे परम अजन्मा, मैं जानता हूँ कि जीवात्माओं की विभिन्न योनियाँ, यथा पशु, पक्षी, रेंगनेवाले जीव, देवता तथा मनुष्य सारे ब्रह्माण्ड में फैली हुई हैं, जो समग्र भौतिक शक्ति से उत्पन्न हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि ये कभी प्रकट रूप में रहती हैं, तो कभी अप्रकट रूप में, किन्तु मैने ऐसा परम रूप कभी नहीं देखा जैसा कि अब आप का देख रहा हूँ। अब किसी भी सिद्धान्त के बनाने की आवश्यकता नहीं रह गई है।(४.९.१३)

कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान् स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के ।
यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्म- गर्भे द्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥१४॥

हे भगवन्, प्रत्येक कल्प के अन्त में भगवान् गर्भोदकशायी विष्णु ब्रह्माण्ड में दिखाई पड़नेवाली प्रत्येक वस्तु को अपने उदर में समाहित कर लेते हैं। वे शेषनाग की गोद में लेट जाते हैं, उनकी नाभि से एक डंठल में से सुनहला कमल-पुष्प फूट निकलता है और इस कमल-पुष्प पर ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं। मैं समझ सकता हूँ कि आप वही परमेश्वर हैं। अतः मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(४.९.१४)

त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥१५॥

हे भगवन्, अपनी अखंड दिव्य चितवन से आप बौद्धिक कार्यों की समस्त अवस्थाओं के परम साक्षी हैं। आप शाश्वत-मुक्त हैं, आप शुद्ध सत्व में विद्यमान रहते हैं और अपरिवर्तित रूप में परमात्मा में विद्यमान हैं। आप छह ऐश्वर्यों से युक्त आदि भगवान् हैं और भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के शाश्वत स्वामी हैं। इस प्रकार आप सामान्य जीवात्माओं से सदैव भिन्न रहते हैं। विष्णु रूप में आप सारे ब्रह्माण्ड के कार्यों का लेखा-जोखा रखते हैं, तो भी आप पृथक् रहते हैं और समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं।(४.९.१५)

यस्मिन् विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।
तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्य- मानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥ १६ ॥
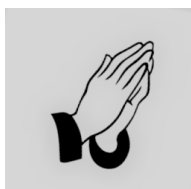
हे भगवन्, ब्रह्म के आप के निर्गुण प्राकट्य में सदैव दो विरोधी तत्त्व रहते हैं—ज्ञान तथा अविद्या। आपकी विविध शक्तियाँ निरन्तर प्रकट होती हैं, किन्तु निर्गुण ब्रह्म, जो अविभाज्य, आदि, अपरिवर्तित, असीम तथा आनन्दमय है, भौतिक जगत का कारण है। चूँकि आप वही निर्गुण ब्रह्म हैं, अतः मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(४.९.१६)

सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म- माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान् वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥१७॥

हे भगवन्, हे परमेश्वर, आप सभी वरों के परम साक्षात् रूप हैं, अतः जो बिना किसी कामना के आपकी भक्ति पर दृढ़ रहता है, उसके लिए राजा बनने तथा राज करने की अपेक्षा आपके चरण-कमलों की रज श्रेयस्कर है। आपके चरणकमल की पूजा का यही वरदान है। आप अपनी अहैतुकी कृपा से मुझ जैसे अज्ञानी भक्त के लिए पूर्ण परिपालक हैं, जिस प्रकार गाय अपने नवजात बछड़े को दूध पिलाती है और हमले से उसकी रक्षा करके उसकी देखभाल करती है।(४.९.१७)

20. श्री धरस्या पृथु स्तवः

धरोवाच

नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ।
नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुत- द्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥

पृथ्वी ने कहा : हे भगवन्, आपकी स्थिति दिव्य है और आपने अपनी माया के द्वारा तीनों गुणों की अन्योन्य क्रिया से स्वयं को नाना रूपों तथा योनियों में विस्तारित कर रखा है। अन्य कुछ स्वामियों से भिन्न आप सदैव दिव्य स्थिति में रहते हैं और भौतिक सृष्टि द्वारा प्रभावित नहीं होते जो विभिन्न भौतिक अन्योन्य क्रियाओं से प्रभावित है। फलतः आप भौतिक कर्मों से मोहग्रस्त नहीं होते।(४.१७.२९)

येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसङ्ग्रहः ।
स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वरा- डुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥ ३० ॥

पृथ्वी ने आगे कहा : हे भगवन्, आप भौतिक सृष्टि के पूर्ण संचालक हैं। आपने इस दृश्य जगत की तथा तीन गुणों की उत्पत्ति की है, अतः आपने मुझ पृथ्वी को बनाया है, जो समस्त जीवात्माओं की आश्रय है। फिर भी हे भगवन्, आप परम स्वतंत्र हैं। अब जबकि चूँकि आप मेरे समक्ष उपस्थित होकर मुझे अपने हथियारों से मारने के लिए उद्यत हैं, आप मुझे बताएँ कि मैं किसकी शरण गहूँ और मुझे शरण दे भी कौन सकता है ?(४.१७.३०)
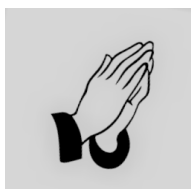
य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययात्माश्रययावितर्क्यया ।
तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥ ३१ ॥

आपने सृष्टि के प्रारम्भ में अपनी अकल्पनीय शक्ति से इन समस्त जड़ तथा चेतन जीवों को उत्पन्न किया है। अब आप उसी शक्ति से जीवात्माओं की रक्षा करने के लिए उद्यत हैं। आप धर्म के नियमों के परम रक्षक हैं। आप मुझ गोरूप को मारने के लिए इतने उत्सुक क्यों हैं ?(४.१७.३१)

नूनं बतेशस्य समीहितं जनै- स्तन्मायया दुर्जययाकृतात्मभिः ।
न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद् योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥ ३२ ॥

हे भगवन्, यद्यपि आप एक हैं, तो भी अपनी अकल्पनीय शक्तियों से आपने अपने को अनेक रूपों में विस्तारित कर रखा है। आपने इस ब्रह्माण्ड की रचना ब्रह्मा के माध्यम से की है। अतः आप प्रत्यक्षतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जो लोग अधिक अनुभवी नहीं हैं, वे आपके दिव्य कार्यों को नहीं समझ सकते क्योंकि वे व्यक्ति आपकी माया से आवृत हैं।(४.१७.३२)

सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभि- र्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।
तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥ ३३ ॥

हे भगवन्, आप अपनी शक्तियों द्वारा भौतिक तत्त्वों, इन्द्रियों, इनके नियामक देवों, बुद्धि,अहंकार तथा प्रत्येक वस्तु के आदि कारण हैं। अपनी शक्ति से आप इस सम्पूर्ण दृश्य जगत की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। आपकी ही शक्ति से प्रत्येक वस्तु कभी प्रकट होती है और कभी प्रकट नहीं होती है। अतः आप समस्त कारणों के कारण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ।(४.१७.३३)

स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद् भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ।
संस्थापयिष्यन्नज मां रसातला- दभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥ ३४ ॥

हे भगवन्, आप अजन्मा हैं। एक बार आपने आदि सूकर (वराह) रूप में मुझे ब्रह्माण्ड के नीचे के जल से बाहर निकाला था। आपने संसार के पालन हेतु अपनी शक्ति से सभी भौतिक तत्त्वों, इन्द्रियों तथा मन की उत्पत्ति की है।(४.१७.३४)

अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ।
स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥ ३५ ॥

हे भगवन्, इस प्रकार आपने एक बार जल-राशि से मेरा उद्धार किया, जिससे आपका नाम धराधर, अर्थात् पृथ्वी को धारण करनेवाला पड़ा। तो भी आप इस समय, महान् वीर के रूप में अपने तीखे बाणों से मुझे मारने के लिए उद्यत हैं। किन्तु मैं तो जल की नाव के सदृश हूँ जो प्रत्येक वस्तु को तैराये रखती है।(४.१७.३५)

नूनं जनैरीहितमीश्वराणा- मस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ।
न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभि- स्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥

हे भगवन्, मैं भी आपकी त्रिगुणात्मक शक्ति से उत्पन्न हूँ, फलतः मैं आपकी गतिविधियों से भ्रमित हूँ। जब आपके भक्तों के कार्यकलाप समझ के परे हैं, तो फिर आपकी लीलाओं के विषय में क्या कहा जाये ? इस प्रकार प्रत्येक वस्तु हमें विरोधाभासी और आश्चर्यजनक लगती है।(४.१७.३६)

21. श्री पृथुकृतो श्री विष्णु स्तवः

पृथुरुवाच
वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥ २३ ॥

हे प्रभो, आप वर देने वाले देवों में सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आपसे ऐसे वर क्यों माँगेगा जो प्रकृति के गुणों से मोहग्रस्त जीवात्माओं के निमित्त हैं ? ऐसे वरदान तो नरक में वास करने वाली जीवात्माओं को भी अपने जीवन-काल में स्वतः प्राप्त होते रहते हैं। हे भगवन्, आप निश्चित ही अपने साथ तादात्म्य प्रदान कर सकते हैं, किन्तु मैं ऐसा वर नहीं चाहता।(४.२०.२३)

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन् न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
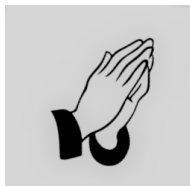
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥ २४ ॥

हे भगवान्, मैं आपसे तादात य के वर की इच्छा नहीं करता, क्योंकि इसमें आपके चरण-कमलों का अमृत रस नहीं है। मैं तो दस लाख कान प्राप्त करने का वर माँगता हूँ जिससे मैं आपके शुद्ध भक्तों के मुखारविन्दों से आपके चरण-कमलों की महिमा का गान सुन सकूँ।(४.२०.२४)

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥ २५ ॥

हे भगवान्, महान् पुरुष आपका महिमा-गान उत्तम श्लोकों द्वारा करते हैं। आपके चरण-कमलों की प्रशंसा केसर कणों के समान है। जब महापुरुषों के मुखों से निकली दिव्य वाणी आपके चरण-कमलों की केसर-धूलि की सुगन्ध का वहन करती है, तो विस्मृत जीवात्मा आपसे अपने सम्बन्ध को स्मरण करता है। इस प्रकार भक्त-गण क्रमशः जीवन के वास्तविक मूल्य को समझ पाते हैं। अतः हे भगवान्, मैं आपके शुद्ध भक्त के मुख से आपके विषय में सुनने का अवसर प्राप्त करने के अतिरिक्त किसी अन्य वर की कामना नहीं करता।(४.२०.२५)

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसङ्ग्रहेच्छया ॥ २६ ॥

हे अत्यन्त कीर्तिमय भगवान्, यदि कोई शुद्ध भक्तों की संगति में रहकर आपके कार्यकलापों की कीर्ति का एक बार भी श्रवण करता है, तो जब तक कि वह पशु तुल्य न हो, वह भक्तों की संगति नहीं छोड़ता, क्योंकि कोई भी बुद्धिमान पुरुष ऐसा करने की लापरवाही नहीं करेगा। आपकी महिमा के कीर्तन और श्रवण की पूर्णता तो धन की देवी लक्ष्मी जी द्वारा तक स्वीकार की गई थीं जो आपके अनन्त कार्यकलापों तथा दिव्य महिमा को सुनने की इच्छुक रहती थीं।(४.२०.२६)

अथाभजे त्वाखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ।
अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलि- र्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥ २७ ॥

अब मैं भगवान् के चरणकमलों की सेवा में संलग्न रहना और कमलधारिणी लक्ष्मीजी के समान सेवा करना चाहता हूँ, क्योंकि भगवान् समस्त दिव्य गुणों के आगार हैं। मुझे भय है कि लक्ष्मीजी तथा मेरे बीच झगड़ा छिड़ जाएगा, क्योंकि हम दोनों एक ही सेवा में एकाग्र भाव से लगे होंगे।(४.२०.२७)

जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ।
करोषि फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥ २८ ॥

हे जगदीश्वर, लक्ष्मीजी विश्व की माता हैं, तो भी मैं सोचता हूँ कि उनकी सेवा में हस्तक्षेप करने तथा उसी पद पर जिसके प्रति वे इतनी आसक्त हैं कार्य करने से, वे मुझसे क्रुद्ध हो सकती हैं। फिर भी मुझे आशा है कि इस भ्रम के होते हुए भी आप मेरा पक्ष लेंगे, क्योंकि आप दीनवत्सल हैं और भक्त की तुच्छ सेवाओं को भी बहुत करके मानते हैं। अतः यदि वे रुष्ट भी हो जाँय तो आपको कोई हानि नहीं होगी, क्योंकि आप आत्मनिर्भर हैं, अतः उनके बिना भी आपका काम चल सकता है।(४.२०.२८)

भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ।
भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥ २९ ॥

बड़े-बड़े साधु पुरुष जो सदा ही मुक्त रहते हैं, आपकी भक्ति करते हैं, क्योंकि भक्ति के द्वारा ही इस संसार के मोहों से छुटकारा पाया जा सकता है। हे भगवन्, मुक्त जीवों द्वारा आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करने का एकमात्र कारण यही हो सकता है कि ऐसे जीव आपके चरणकमलों का निरन्तर ध्यान धरते हैं।(४.२०.२९)
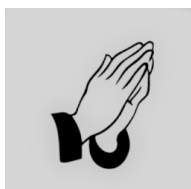
मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ।
वाचा नु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥ ३० ॥

हे भगवन्, आपने अपने विशुद्ध भक्त से जो कुछ कहा है, वह निश्चय ही अत्यन्त मोह में डालने वाला है। आपने वेदों में जो लालच दिये हैं, वे शुद्ध भक्तों के लिए उपयुक्त नहीं हैं। सामान्य लोग वेदों की अमृतवाणी से बँधकर कर्मफल से मोहित होकर पुन: पुन: सकाम कर्मों में लगे रहते हैं।(४.२०.३०)

त्वन्माययाद्धा जन ईश खण्डितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ।
यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥ ३१ ॥

हे भगवन्, आपकी माया के कारण इस भौतिक जगत के सभी प्राणी अपनी वास्तविक स्वाभाविक स्थिति भूल गये हैं और वे अज्ञानवश समाज, मित्रता तथा प्रेम के रूप में निरन्तर भौतिक सुख की कामना करते हैं। अत: आप मुझे किसी प्रकार का भौतिक लाभ माँगने के लिए न कहें, बल्कि जिस प्रकार पिता अपने पुत्र द्वारा माँगने की प्रतीक्षा किये बिना उसके कल्याण के लिए सब कुछ करता है, उसी प्रकार से आप भी जो मेरे हित में हो मुझे प्रदान करें।(४.२०.३१)

22. श्री रूद्र गीतं

श्रीरुद्र उवाच
जितं त आत्मविद्धुर्यस्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे ।
भवताराधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥ ३३ ॥

शिवजी ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इस प्रकार स्तुति की: हे भगवान्, आप धन्य हैं। आप सभी स्वरूपसिद्धों में महान् हैं चूंकि आप उनका सदैव कल्याण करने वाले हैं, अत: आप मेरा भी कल्याण करें। आप अपने सर्वात्मक उपदेशों के कारण पूज्य हैं। आप परमात्मा हैं, अत: पुरुषोत्तम स्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ।(४.२४.३३)

नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने ।
वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥ ३४ ॥

हे भगवान्, आपकी नाभि से कमल पुष्प निकलता है, इस प्रकार से आप सृष्टि के उद्गम हैं। आप इन्द्रियों तथा तन्मात्राओं के नियामक हैं। आप सर्वव्यापी वासुदेव भी हैं। आप परम शान्त हैं और स्वयंप्रकाशित होने के कारण आप छह प्रकार के विकारों से विचलित नहीं होते।(४.२४.३४)

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च ।
नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥ ३५ ॥

हे भगवान्, आप सूक्ष्म भौतिक तत्त्वों के उद्गम, समस्त संघटन और संहार के स्वामी,संकर्षण नामक अधिष्ठाता तथा समस्त बुद्धि के अधिष्ठाता प्रद्युम्ना हैं। अत: मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(४.२४.३५)

नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने ।
नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥ ३६ ॥

हे परम अधिष्ठाता अनिरुद्ध रूप भगवान्, आप इन्द्रियों तथा मन के स्वामी हैं। अत: मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। आप अनन्त तथा साथ ही साथ संकर्षण कहलाते हैं, क्योंकि अपने मुख से निकलने वाली धधकती हुई अग्नि से आप सारी सृष्टि का संहार करने में समर्थ हैं।(४.२४.३६)

स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ।
नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥ ३७ ॥

हे भगवान् अनिरुद्ध, आपके आदेश से स्वर्ग तथा मोक्ष के द्वार खुलते हैं। आप निरन्तर जीवों के शुद्ध हृदय में निवास करते हैं, अत: मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप स्वर्ण सदृश वीर्य के स्वामी हैं और इस प्रकार आप अग्नि रूप में चातुर्होत्र इत्यादि वैदिक यज्ञों में सहायता करते हैं। अत: मैं आपको नमस्कार करता हूँ।(४.२४.३७)

नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ।
तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥ ३८ ॥

हे भगवन्, आप पितृलोक तथा सभी देवताओं के भी पोषक हैं। आप चन्द्रमा के प्रमुख श्रीविग्रह और तीनों वेदों के स्वामी हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि आप समस्त जीवात्माओं की तृप्ति के मूल स्रोत हैं।(४.२४.३८)

सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ।
नमस्त्रैलोक्यपालाय सह ओजोबलाय च ॥ ३९ ॥

हे भगवान्, आप विराटस्वरूप हैं जिसमें समस्त जीवात्माओं के शरीर समाहित हैं। आप तीनों लोकों के पालक हैं, फलत: आप मन, इन्द्रियों, शरीर तथा प्राण का पालन करने वाले हैं। अत: मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(४.२४.३९)

अर्थलिङ्गाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने ।
नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ४० ॥

हे भगवान्, आप अपनी दिव्य वाणी (शब्दों) को प्रसारित करके प्रत्येक वस्तु का वास्तविक अर्थ प्रकट करने वाले हैं। आप भीतर-बाहर सर्वव्याप्त आकाश हैं और इस लोक में तथा इससे परे किये जाने वाले समस्त पुण्यकर्मों के परम लक्ष्य हैं। अत: मैं आपको पुन: पुन:सादर नमस्कार करता हूँ।(४.२४.४०)

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ।
नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥

हे भगवान्, आप पुण्यकर्मों के फलों के दृष्टा हैं। आप प्रवृत्ति, निवृत्ति तथा उनके कर्म-रूपी परिणाम (फल) हैं। आप अधर्म से जनित जीवन के दुखों के कारणस्वरूप हैं, अत: आप मृत्यु हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(४.२४.४१)

नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने ।
नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥ ४२ ॥

हे भगवान्, आप आशीर्वादों के समस्त प्रदायकों में सर्वश्रेष्ठ, सबसे प्राचीन तथा समस्त भोक्ताओं में परम भोक्ता हैं। आप समस्त सांख्य योग-दर्शन के अधिष्ठाता हैं। आप समस्त कारणों के कारण भगवान् कृष्ण हैं। आप सभी धर्मों में श्रेष्ठ हैं, आप परम मन हैं और आपका मस्तिष्क (बुद्धि) ऐसा है, जो कभी कुण्ठित नहीं होता। अत: मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।(४.२४.४२)
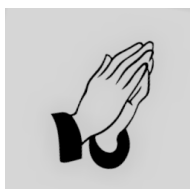
शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहङ्कृतात्मने ।
चेतआकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥ ४३ ॥

हे भगवान्, आप कर्ता, करण और कर्म—इन तीनों शक्तियों के नियामक हैं। अत: आप शरीर, मन तथा इन्द्रियों के परम नियन्ता हैं। आप अहंकार के परम नियन्ता रुद्र भी हैं। आप वैदिक आदेशों के ज्ञान तथा उनके अनुसार किए जाने वाले कर्मों के स्रोत हैं।(४.२४.४३)

दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ।
रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥ ४४ ॥

हे भगवान्, मैं आपको उस रूप में देखने का इच्छुक हूँ, जिस रूप में आपके अत्यन्त प्रिय भक्त आपकी पूजा करते हैं। आपके अन्य अनेक रूप हैं, किन्तु मैं तो उस रूप का दर्शन करना चाहता हूँ जो भक्तों को विशेष रूप से प्रिय है। आप मुझ पर अनुग्रह करें और मुझे वह स्वरूप दिखलाएं, क्योंकि जिस रूप की भक्त पूजा करते हैं वही इन्द्रियों की इच्छाओं को पूरा कर सकता है।(४.२४.४४)

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसङ्ग्रहम् ।
चार्वायतचतुर्बाहु सुजातरुचिराननम् ॥ ४५ ॥
पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम् ।
सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥ ४६ ॥

भगवान् की सुन्दरता वर्षाकालीन श्याम मेघों के समान है। उनके शारीरिक अंग वर्षा जल के समान चमकीले हैं। दरअसल, वे समस्त सौंदर्य के समष्टि (सारसर्वस्व) हैं। भगवान् की चार भुजाएं हैं, सुन्दर मुख है और उनके नेत्र कमलदलों के तुल्य हैं। उनकी नाक उन्नत, उनकी हँसी मोहने वाली, उनका मस्तक सुन्दर तथा उनके कान सुन्दर और आभूषणों से सज्जित हैं।(४.२४.४५-४६)

प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकै रूपशोभितम् ।
लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥ ४७ ॥
स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ।
शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ ४८ ॥

भगवान् अपने मुक्त तथा दयापूर्ण हास्य तथा भक्तों पर तिरछी चितवन के कारण अनुपम सुन्दर लगते हैं। उनके बाल काले तथा घुँघराले हैं। हवा में उड़ता उनका वस्त्र कमल के फूलों में से उड़ते हुए केशर-रज के समान प्रतीत होता है। उनके झलमलाते कुण्डल, चमचमाता मुकुट, कंकण, बनमाला, नूपुर, करधनी तथा शरीर के अन्य आभूषण शंख, चक्र, गदा तथा कमल पुष्प से मिलकर उनके वक्षस्थल पर पड़ी कौस्तुभमणि की प्राकृतिक शोभा को बढ़ाते हैं।(४.२४.४७-४८)

सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् ।
श्रियानपायिन्या क्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥ ४९ ॥

भगवान् के कन्धे सिंह के समान हैं। इन पर मालाएँ, हार एवं घुँघराले बाल पड़े हैं, जो सदैव झिलमिलाते रहते हैं। इनके साथ ही साथ कौस्तुभमणि की सुन्दरता है और भगवान् के श्याम वक्षस्थल पर श्रीवत्स की रेखाएँ हैं, जो लक्ष्मी के प्रतीक हैं। इन सुवर्ण रेखाओं की चमाहट सुवर्ण कसौटी पर बनी सुवर्ण लकीरों से कहीं अधिक सुन्दर है। दरअसल ऐसा सौन्दर्य सुवर्ण कसौटी को मात करने वाला है।(४.२४.४९)
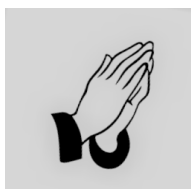
पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् ।
प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्यावर्तगभीरया ॥ ५० ॥

भगवान् का उदर (पेट) त्रिवली के कारण सुन्दर लगता है। गोल होने के कारण उनका उदर वटवृक्ष के पत्त के समान जान पड़ता है और जब वे श्वास-प्रश्वास लेते हैं, तो इन सलबटों का हिलना-जुलना अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता हैं। भगवान् की नाभि के भीतर की कुण्डली इतनी गहरी है मानो सारा ब्रह्माण्ड उसी में से उत्पन्न हुआ हो और पुनः उसी में समा जाना चाहता हो।(४.२४.५०)

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् ।
समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरुनिम्नजानुसुदर्शनम् ॥ ५१ ॥

भगवान् की कटि का अधोभाग श्यामल रंग का है और पीताम्बर से ढका है। उसमें सुनहली, जरीदार करधनी है। उनके एक समान चरणकमल, पिंडलियाँ, जाँघें तथा घुटने अनुपम सुन्दर हैं। निस्सन्देह, भगवान् का सम्पूर्ण शरीर अत्यन्त सुडौल प्रतीत होता है।(४.२४.५१)

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ।
प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥ ५२ ॥

हे भगवन्, आपके दोनों चरणकमल इतने सुन्दर हैं मानो शरत् ऋतु में उगने वाले कमल पुष्प के खिलते हुए दो दल हों। दरअसल आपके चरणकमलों के नाखूनों से इतना तेज निकलता है कि वह बद्धजीव के हृदय के सारे अंधकार को तुरन्त छिन्न कर देता है। हे स्वामी, मुझे आप अपना वह स्वरूप दिखलायें जो किसी भक्त के हृदय के अन्धकार को नष्ट कर देता है। मेरे भगवन्, आप सबों के परम गुरु हैं, अतः आप जैसे गुरु के द्वारा अज्ञान के अंधकार से आवृत सारे बद्धजीव प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं।(४.२४.५२)

एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम् ।
यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ ५३ ॥

हे भगवन्, जो लोग अपने जीवन को परिशुद्ध बनाना चाहते हैं, उन्हें उपर्युक्त विधि से आपके चरणकमलों का ध्यान करना चाहिए। जो अपने वर्ण के अनुरूप कार्य को पूरा करने की धुन में हैं और जो भय से मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें भक्तियोग की इस विधि का अनुसरण करना चाहिए।(४.२४.५३)

भवान् भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ।
स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥ ५४ ॥

हे भगवन्, स्वर्ग का राजा इन्द्र भी जीवन के परम लक्ष्य—भक्ति—को प्राप्त करने का इच्छुक रहता है। इसी प्रकार जो अपने को आपसे अभिन्न मानते हैं (अहं ब्रह्मास्मि), उनके भी एकमात्र लक्ष्य आप ही हैं। किन्तु आपको प्राप्त कर पाना उनके लिए अत्यन्त कठिन है जब कि भक्त सरलता से आपको पा सकता है।(४.२४.५४)

तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥ ५५ ॥

हे भगवन्, शुद्ध भक्ति कर पाना तो मुक्त पुरुषों के लिए भी कठिन है, किन्तु आप हैं कि एकमात्र भक्ति से ही प्रसन्न हो जाते हैं। अतः जीवन-सिद्धि का इच्छुक ऐसा कौन पुरुष होगा जो आत्म-साक्षात्कार की अन्य विधियों को अपनाएगा?(४.२४.५५)
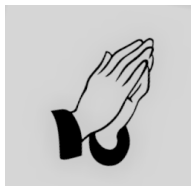
यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ।
विश्वं विध्वंसयन् वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥ ५६ ॥

उनके भृकुटि-विस्तार-मात्र से जो दुर्जेय काल तत्क्षण सारे ब्रह्माण्ड का संहार कर सकता है, वही दुर्जेय काल आपको चरणकमलों की शरण में गये भक्त के निकट तक नहीं पहुँच पाता।(४.२४.५६)

क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५७ ॥

संयोग से भी यदि कोई क्षण भर के लिए भक्त की संगति पा जाता है, तो उसे कर्म और ज्ञान के फलों का तनिक भी आकर्षण नहीं रह जाता। तब उन देवताओं के वरदानों में उसके लिए रखा ही क्या है, जो जीवन और मृत्यु के नियमों के अधीन हैं ?(४.२४.५७)

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयो- रन्तर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ।
भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ ५८ ॥

हे भगवन्, आपके चरणकमल समस्त कल्याण के कारण हैं और समस्त पापों के कल्मष को विनष्ट करने वाले हैं। अत: मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे अपने भक्तों की संगति का आशीर्वाद दें, क्योंकि आपके चरणकमलों की पूजा करने से वे पूर्णतया शुद्ध हो चुके हैं और बद्धजीवों पर अत्यन्त कृपालु हैं। मेरी समझ में तो आपका असली आशीर्वाद यही होगा कि आप मुझे ऐसे भक्तों की संगति करने की अनुमति दें।(४.२४.५८)

न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ।
यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥ ५९ ॥

जिसका हृदय भक्तियोग से पूर्ण रूप से पवित्र हो चुका हो तथा जिस पर भक्ति देवी की कृपा हो, ऐसा भक्त कभी भी अंधकूप सदृश माया द्वारा मोहग्रस्त नहीं होता। इस प्रकार समस्त भौतिक कल्मष से रहित होकर ऐसा भक्त आपके नाम, यश, स्वरूप, कार्य इत्यादि को अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक समझ सकता है।(४.२४.५९)

यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ।
तत् त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६० ॥

हे भगवन्, निर्गुण ब्रह्म सूर्य के प्रकाश अथवा आकाश की भाँति सर्वत्र फैला हुआ है। और जो सारे ब्रह्माण्ड भर में फैला है तथा जिसमें सारा ब्रह्माण्ड दिखाई देता है, वह निर्गुण ब्रह्म आप ही हैं।(४.२४.६०)

यो माययेदं पुरुरूपयासृजद् बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ।
यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया त्वमात्मतन्त्रं भगवन् प्रतीमहि ॥ ६१ ॥

हे भगवन्, आपकी शक्तियाँ अनेक हैं और वे नाना रूपों में प्रकट होती हैं। आपने ऐसी ही शक्तियों से इस दृश्य जगत की उत्पत्ति की है और यद्यपि आप इसका पालन इस प्रकार करते हैं मानो यह चिरस्थायी हो, किन्तु अन्त में आप इसका संहार कर देते हैं। यद्यपि आप कभी-भी ऐसे परिवर्तनों द्वारा विचलित नहीं होते, किन्तु जीवात्माएँ इनसे विचलित होती रहती हैं, इसलिए वे इस दृश्य जगत को आपसे भिन्न अथवा पृथक् मानती हैं। हे भगवन्, आप सर्वदा स्वतंत्र हैं और मैं तो इसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।(४.२४.६१)

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ।

भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६२ ॥

हे भगवन्, आपका विराट रूप, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार (जो भौतिक हैं) तथा आपके अंश रूप सर्व नियामक परमात्मा इन सभी पाँच तत्त्वों से बना है। भक्तों के अतिरिक्त अन्य योगी—यथा कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी—अपने-अपने पदों में अपने-अपने कार्यों द्वारा आपकी पूजा करते हैं। वेदों में तथा शास्त्रों में जो वेदों के निष्कर्ष हैं, कहा गया है कि केवल आप ही पूज्य हैं। सभी वेदों का यही अभिमत है।(४.२४.६२)

त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्ति- स्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ।
महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥ ६३ ॥

हे भगवन्, आप समस्त कारणों के कारण एकमात्र परम पुरुष हैं। इस भौतिक जगत की सृष्टि के पूर्व आपकी भौतिक शक्ति सुप्त रहती है, किन्तु जब आपकी शक्ति गतिमान होती है, तो आपके तीनों गुण—सत्त्व, रज तथा तमो गुण—क्रिया करते हैं। फलस्वरूप समष्टि भौतिक शक्ति अर्थात् अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा विभिन्न देवता एवं ऋषिगण प्रकट होते हैं। इस प्रकार भौतिक जगत की उत्पत्ति होती है।(४.२४.६३)

सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्ट- श्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ।
अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्त- र्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ॥ ६४ ॥

हे भगवन्, आप अपनी शक्तियों के द्वारा सृष्टि कर लेने के बाद, सृष्टि में चार रूपों में प्रवेश करते हैं। आप जीवों के अन्त:करण में स्थित होने के कारण उन्हें जानते हैं और यह भी जानते हैं कि वे किस प्रकार इन्द्रिय-भोग कर रहे हैं। इस भौतिक जगत का तथाकथित सुख ठीक वैसा ही है जैसा कि शहद के छत्तों में मधु एकत्र होने के बाद मधुमक्खी द्वारा उसका आस्वाद।(४.२४.६४)

स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ।
भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥ ६५ ॥

हे भगवन्, आपकी परम सत्ता का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया जा सकता, किन्तु संसार की गतिविधियों को देखकर कि समय आने पर सब कुछ विनष्ट हो जाता है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। काल का वेग अत्यन्त प्रचण्ड है और प्रत्येक वस्तु किसी अन्य वस्तु के द्वारा विनष्ट होती जा रही है—जैसे एक पशु दूसरे पशु द्वारा निगल लिया जाता है। काल प्रत्येक वस्तु को उसी प्रकार तितर-बितर कर देता है, जिस प्रकार आकाश में बादलों को वायु छिन्न-भिन्न कर देती है।(४.२४.६५)

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ६६ ॥

हे भगवन्, इस संसार के सारे प्राणी कुछ-न-कुछ योजना बनाने में पागल हैं तथा यह या वह करते रहने की इच्छा से काम में जुटे रहते हैं। अनियंत्रित लालच के कारण यह सब होता है। जीवात्मा में भौतिक सुख की लालसा सदैव बनी रहती है, किन्तु आप नित्य सतर्क रहते हैं और समय आने पर आप उस पर उसी प्रकार टूट पड़ते हैं जिस प्रकार सर्प चूहे पर झपटता है और आसानी से निगल जाता है।(४.२४.६६)

कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ।
विशङ्कयास्मद्गुरुरर्चति स्म यद् विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥ ६७ ॥
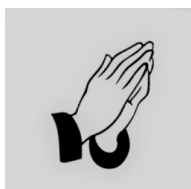
हे भगवन्, कोई भी विद्वान् पुरुष जानता है कि आपकी पूजा के बिना सारा जीवन व्यर्थ है। भला यह जानते हुए वह आपके चरणकमलों की उपासना क्यों त्यागेगा? यहाँ तक कि हमारे गुरु तथा पिता ब्रह्मा ने बिना किसी भेदभाव के आपकी आराधना की और चौदहों मनुओं ने उनका अनुसरण किया।(४.२४.६७)

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन् परमात्मन् विपश्चिताम्।
विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः॥ ६८॥

हे भगवन्, जो वास्तव में विद्वान् मनुष्य हैं, वे सभी आपको परब्रह्म एवं परमात्मा के रूप में जानते हैं। यद्यपि सारा ब्रह्माण्ड भगवान् रुद्र से भयभीत रहता है, क्योंकि वे अन्ततः प्रत्येक वस्तु को नष्ट करने वाले हैं, किन्तु विद्वान् भक्तों के लिए आप निर्भय आश्रय हैं।(४.२४.६८)

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः॥ ६९॥

हे राजपुत्रो, तुम लोग विशुद्ध हृदय से राजाओं की भाँति अपने-अपने नियत कर्म करते रहो। भगवान् के चरणकमलों पर अपने मन को स्थिर करते हुए इस स्तुति (स्तोत्र) का जप करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा, क्योंकि इससे भगवान् तुम पर अत्यधिक प्रसन्न होंगे।(४.२४.६९)

तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम्।
पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम्॥ ७०॥

अतः हे राजकुमारो, भगवान् सबके हृदयों में स्थित हैं। वे तुम लोगों के भी हृदयों में हैं, अतः भगवान् की महिमा का जप करो और निरन्तर उसी का ध्यान करो।(४.२४.७०)

योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः।
समाहितधियः सर्व एतदभ्यसतादृताः॥ ७१॥

हे राजपुत्रो, मैंने स्तुति के रूप में तुम्हें पवित्र नाम-जप की योगपद्धति बतला दी है। तुम सब इस स्तोत्र को अपने मनों में धारण करते हुए इस पर दृढ़ रहने का व्रत लो जिससे तुम महान् मुनि बन सको। तुम्हें चाहिए कि मुनि की भाँति मौन धारण करके तथा ध्यानपूर्वक एवं आदर सहित इसका पालन करो।(४.२४.७१)

इदमाह पुरास्माकं भगवान् विश्वसृक्पतिः।
भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम्॥ ७२॥

सर्वप्रथम समस्त प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा ने हमें यह स्तुति सुनायी थी। भृगु आदि प्रजापतियों को भी इसी स्तोत्र की शिक्षा दी गई थी, क्योंकि वे संतानोत्पत्ति करना चाह रहे थे।(४.२४.७२)

ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः।
अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः॥ ७३॥

जब ब्रह्मा द्वारा हम सब प्रजापतियों को प्रजा उत्पन्न करने का आदेश हुआ तो हमने भगवान् की प्रशंसा में इस स्तोत्र का जप किया जिससे हम समस्त अविद्या से पूरी तरह से मुक्त हो गये। इस तरह हम विविध प्रकार के जीवों की उत्पत्ति कर पाये।(४.२४.७३)
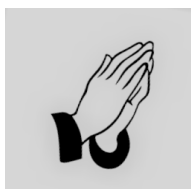
अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् ।
अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥ ७४ ॥

भगवान् कृष्ण के भक्त जिसका मन सदैव उन्हीं में लीन रहता है और जो अत्यन्त ध्यान तथा आदरपूर्वक इस स्तोत्र का जप करता है शीघ्र ही जीवन की परम सिद्धि प्राप्त होगी।(४.२४.७४)

श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् ।
सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥ ७५ ॥

इस संसार में उपलब्धि के अनेक प्रकार हैं, किन्तु इन सबों में ज्ञान की उपलब्धि सर्वोपरि मानी जाती है, क्योंकि ज्ञान की नौका में आरूढ़ होकर ही अज्ञान के सागर को पार किया जा सकता है। अन्यथा यह सागर दुस्तर है।(४.२४.७५)

य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ।
अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ॥ ७६ ॥

यद्यपि भगवान् की भक्ति करना एवं उनकी पूजा करना अत्यन्त कठिन है, किन्तु यदि कोई मेरे द्वारा रचित एवं गाये गये इस स्तोत्र का केवल पाठ करता है, तो वह सरलतापूर्वक भगवान् की कृपा प्राप्त कर सकता है।(४.२४.७६)

विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरम् ।
मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥ ७७ ॥

समस्त शुभ आशीर्वादों में से सर्वप्रिय वस्तु भगवान् हैं। जो मनुष्य मेरे द्वारा गाये गये इस गीत को गाता है, वह भगवान् को प्रसन्न कर सकता है। ऐसा भक्त भगवान् की भक्ति में स्थिर होकर परमेश्वर से मनवाञ्छित फल प्राप्त कर सकता है।(४.२४.७७)

इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः ।
शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ॥ ७८ ॥

जो भक्त प्रात:काल उठकर हाथ जोड़कर शिवजी के द्वारा गाई गई इस स्तुति का जप करता है और अन्यों को सुनाता है, वह निश्चय ही समस्त कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाता है।(४.२४.७८)

23. श्री प्रचेतसम श्री हरि स्तुति

प्रचेतस ऊचुः
नमो नमः ्चो शविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ।
मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥ २२ ॥

प्रचेताओं ने कहा : हे भगवन्, आप समस्त प्रकार के क्लशों को हरने वाले हैं। आपके उदार दिव्य गुण तथा पवित्र नाम कल्याणप्रद हैं। इसका निर्णय पहले ही हो चुका है। आप मन तथा वाणी से भी अधिक वेग से जा सकते हैं। आप भौतिक इन्द्रियों द्वारा नहीं देखे जा सकत। अत: हम आपको बारम्बार सादर नमस्कार करते हैं।(४.३०.२२)

शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ।
नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥ २३ ॥
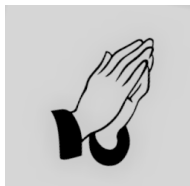
हे भगवन्, हम आपको प्रणाम करने की याचना करते हैं। जब मन आप में स्थिर होते हैं, तो यह द्वैतपूर्ण संसार भौतिक सुख का स्थान होते हुए भी व्यर्थ प्रतीत होता है। आपका दिव्य रूप दिव्य आनन्द से पूर्ण है। अत: हम आपका अभिवादन करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के रूप में आपका प्राकट्य इस दृश्य जगत की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के उद्देश्य से होता है।(४.३०.२३)

नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ।
वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥ २४ ॥

हे भगवन्, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं, क्योंकि आपका अस्तित्व समस्त भौतिक प्रभावों से पूर्णतया स्वतंत्र है। आप सदैव अपने भक्तों के क्लशों को हर लेते हैं, क्योंकि आपका मस्तिष्क जानता है कि ऐसा किस प्रकार करना चाहिए। आप परमात्मा रूप में सर्वत्र रहते हैं, अत: आप वासुदेव कहलाते हैं। आप वसुदेव को अपना पिता मानते हैं और आप कृष्ण नाम से विख्यात हैं। आप इतने दयालु हैं कि अपने समस्त प्रकार के भक्तों के प्रभाव को बढ़ाते हैं।(४.३०.२४)

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥ २५ ॥

हे भगवन्, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं, क्योंकि आपकी ही नाभि से कमल पुष्प निकलता है, जो समस्त जीवों का उद्गम है। आप सदैव कमल की माला से सुशोभित रहते हैं और आपके चरण सुगंधित कमल पुष्प के समान हैं। आपके नेत्र भी कमल पुष्प की पंखड़ियों के सदृश हैं, अत: हम आपको सदा ही सादर नमस्कार करते हैं।(४.३०.२५)

नमः कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे ।
सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुंक्ष्महि साक्षिणे ॥ २६ ॥

हे भगवन्, आपके द्वारा धारण किया गया वस्त्र कमल पुष्प के केसर के समान पीले रंग का है, किन्तु यह किसी भौतिक पदार्थ का बना हुआ नहीं है। प्रत्येक हृदय में निवास करने के कारण आप समस्त जीवों के समस्त कार्यों के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। हम आपको पुन:पुन: सादर नमस्कार करते हैं।(४.३०.२६)

रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसङ्क्षयम् ।
आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥ २७ ॥

हे भगवन्, हम बद्धजीव देहात्मबुद्धि के कारण सदैव अज्ञान से घिरे रहते हैं, अत: हमें भौतिक जगत के क्लश ही सदैव प्रिय लगते हैं। इन क्लशों से हमारा उद्धार करने के लिए ही आपने इस दिव्य रूप में अवतार लिया है। यह हम-जैसे कष्ट भोगने वालों पर आपकी अनन्त अहैतुकी कृपा का प्रमाण है। तो फिर उन भक्तों के विषय में क्या कहें जिनके प्रति आप सदैव कृपालु रहते हैं ?(४.३०.२७)

एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ।
यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याभद्ररन्धन ॥ २८ ॥

हे भगवन्, आप समस्त अमंगल के विनाशकर्ता हैं। आप अपने अर्चा-विग्रह विस्तार के द्वारा अपने दीन भक्तों पर दया करने वाले हैं। आप हम सबों को अपना शाश्वत दास समझें।(४.३०.२८)

येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ।
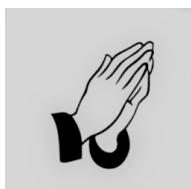
अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥ २९ ॥

जब भगवान् अपनी सहज दया से अपने भक्त के विषय में सोचते हैं, तो उस विधि से ही नवदीक्षित भक्तों की सारी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। जीव के अत्यन्त तुच्छ होने पर भी भगवान् प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित हैं। भगवान् जीव के सम्बन्ध में प्रत्येक बात, यहाँ तक कि उसकी समस्त इच्छाओं, को भी जानते रहते हैं। यद्यपि हम अत्यन्त तुच्छ जीव हैं फिर भी भगवान् हमारी इच्छाओं को क्यों नहीं जानेंगे ?(४.३०.२९)

असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते ।
प्रसन्नो भगवान् येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥ ३० ॥

हे जगत् के स्वामी, आप भक्तियोग के वास्तविक शिक्षक हैं। हमें सन्तोष है कि हमारे जीवन के परमलक्ष्य आप हैं और हम प्रार्थना करते हैं कि आप हम पर प्रसन्न हों। यही हमारा अभीष्ट वर है। हम आपकी पूर्ण प्रसन्नता के अतिरिक्त और कुछ भी कामना नहीं करते।(४.३०.३०)

वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ।
न ह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ॥ ३१ ॥

अतः हे स्वामी, हम आपसे वर देने के लिए प्रार्थना करेंगे, क्योंकि आप समस्त दिव्य प्रकृति से परे हैं और आपके ऐश्वर्यों का कोई अन्त नहीं है। अतः आप अनन्त नाम से विख्यात हैं।(४.३०.३१)

पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यन्न सेवते ।
त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ॥ ३२ ॥

हे स्वामी, जब भौंरा दिव्य पारिजात वृक्ष के निकट पहुँच जाता है, तो वह उसे कभी नहीं छोड़ता क्योंकि उसे ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। इसी प्रकार जब हमने आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण की है, तो हमें और क्या वर माँगने की आवश्यकता है ?(४.३०.३२)

यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ।
तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ॥ ३३ ॥

हे स्वामी, हमारी प्रार्थना है कि जब तक हम अपने सांसारिक कल्मष के कारण इस संसार में रहें और एक शरीर से दूसरे में तथा एक लोक से दूसरे लोक में घूमते रहें, तब तक हम उनकी संगति में रहें जो आपकी लीलाओं की चर्चा करने में लगे रहते हैं। हम जन्म-जन्मांतर विभिन्न शारीरिक रूपों में और विभिन्न लोको में इसी वर के लिए प्रार्थना करते हैं।(४.३०.३३)

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ३४ ॥

एक क्षण की भी शुद्ध भक्त की संगति के सामने स्वर्गलोक जाने अथवा पूर्ण मोक्ष पा कर ब्रह्मतेज में मिलने (कैवल्य) की कोई तुलना नहीं की जा सकती है। शरीर को त्याग कर मरने वाले जीवों के लिए सर्वश्रेष्ठ वर तो शुद्ध भक्तों की संगति है।(४.३०.३४)

यत्रेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ।
निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥ ३५ ॥
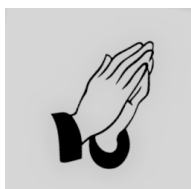
जब भी दिव्य लोक की कथाओं की चर्चा चलती है, श्रोतागण, भले ही क्षण-भर के लिए क्यों न हो, समस्त भौतिक तृष्णाएँ भूल जाते हैं। यही नहीं, आगे से वे एक दूसरे से न तो वैर करते हैं, न किसी कुण्ठा या भय से ग्रस्त होते हैं।(४.३०.३५)

यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ।
संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

जहाँ भक्तों के बीच भगवान् के पवित्र नाम का श्रवण तथा कीर्तन चलता रहता है, वहाँ भगवान् नारायण उपस्थित रहते हैं। संन्यासियों के चरम लक्ष्य भगवान् नारायण ही हैं और नारायण की पूजा उन व्यक्तियों द्वारा इस संकीर्तन आन्दोलन के माध्यम से की जाती है, जो भौतिक कल्मष से मुक्त हो चुके हैं। वे बारम्बार भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं।(४.३०.३६)

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥ ३७ ॥

हे भगवन्, आपके पार्षद तथा भक्त संसार-भर में तीर्थस्थानों तक को पवित्र करने के लिए भ्रमण करते रहते हैं। जो इस संसार से भयभीत हैं, क्या ऐसा कार्य इन सबके लिए रुचिकर नहीं होता?(४.३०.३७)

वयं तु साक्षाद्भगवन् भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन ।
सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्यो- र्भिषक्तमं त्वाद्य गतिं गताः स्म ॥ ३८ ॥

हे भगवन्, हम भाग्यशाली हैं कि आपके अत्यन्त प्रिय तथा अभिन्न मित्र शिवजी की क्षणमात्र की संगति से हम आपको प्राप्त कर सके हैं। आप इस संसार के असाध्य रोग का उपचार करने में समर्थ सर्वश्रेष्ठ वैद्य हैं। हमारा सौभाग्य था कि हमें आपके चरणकमलों का आश्रय प्राप्त हो सका।(४.३०.३८)

यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या ।
आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥ ३९ ॥
यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ।
सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय ॥ ४० ॥

हे भगवन्, हमने वेदों का अध्ययन किया है, गुरु बनाया है और ब्राह्मणों, भक्तों तथा आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यधिक उन्नत वरिष्ट पुरुषों को सम्मान प्रदान किया है। हमने अपने किसी भी भाई, मित्र या अन्य किसी से ईर्ष्या नहीं की। हमने जल के भीतर रहकर कठिन तपस्या भी की है और दीर्घकाल तक भोजन नहीं ग्रहण किया। हमारी ये सारी आध्यात्मिक सम्पदाएँ आपको प्रसन्न करने के लिए सादर समर्पित हैं। हम आपसे केवल यही वर माँगते हैं, अन्य कुछ भी नहीं।(४.३०.३९-४०)

मनुः स्वयम्भूर्भगवान् भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ।
अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवन्त्यथो त्वात्मसमं गृणीमः ॥ ४१ ॥

हे भगवन्, तप तथा ज्ञान के कारण सिद्धिप्राप्त बड़े-बड़े योगी तथा शुद्ध सत्व में स्थित लोगों के साथ-साथ मनु, ब्रह्मा तथा शिव जैसे महापुरुष भी आपकी महिमा तथा शक्तियों को पूरी तरह नहीं समझ पाते। फिर भी वे यथाशक्ति आपकी प्रार्थना करते हैं। उसी प्रकार हम इन महापुरुषों से काफी क्षुद्र होते हुए भी अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रार्थना कर रहे हैं।(४.३०.४१)

नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च ।
वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ ४२ ॥
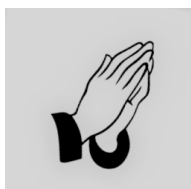
हे भगवन्, आपके न तो शत्रु हैं न मित्र। अत: आप सबों के लिए समान हैं। आप पापकर्मों के द्वारा कलुषित नहीं होते और आपका दिव्य रूप सदैव भौतिक सृष्टि से परे है। आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, क्योंकि आप सर्वव्यापी हैं, अत: आप वासुदेव कहलाते हैं। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।(४.३०.४२)
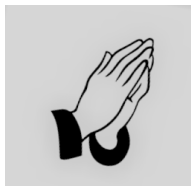
24. आन्ग्निघ्रतनयस्य नाभे पुत्रेष्टि यज्ञे ऋत्विजं यज्ञेश्वर

ऋत्विज ऊचुः

अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नम इत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान् प्रकृति गुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयो रर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥४॥ सकलजननिकायवृजिन-निरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ॥ ५ ॥

ऋत्विजगण इस प्रकार ईश्वर की स्तुति करने लगे—हे परम पूज्य, हम आपके दास मात्र हैं। यद्यपि आप पूर्ण हैं, किन्तु अहैतुकी कृपावश ही सही, हम दासों की यत्किंचित सेवा स्वीकार करें। हम आपके दिव्य रूप से परिचित नहीं हैं, किन्तु जैसा वेदों तथा प्रामाणिक आचार्यों ने हमें शिक्षा दी है, उसके अनुसार हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं। जीवात्माएँ प्रकृति के गुणों के प्रति अत्यधिक आकर्षित होती हैं, अत: वे कभी भी पूर्ण नहीं हैं, किन्तु आप समस्त भौतिक अवधारणाओं से परे हैं। आपके नाम, रूप तथा गुण सभी दिव्य हैं और व्यावहारिक बुद्धि की कल्पना के परे हैं। भला आपकी कल्पना कौन कर सकता है? इस भौतिक जगत में हम केवल नाम तथा गुण देख पाते हैं। हम आपको अपना नमस्कार तथा स्तुति अर्पित करने के अतिरिक्त और कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं। आपके शुभ दिव्य गुणों के कीर्तन से समस्त मानव जाति के पाप धुल जाते हैं। यही हमारा परम कर्तव्य है और इस प्रकार हम आपकी अलौकिक स्थिति को अंशमात्र ही जान सकते हैं।(५.३.४-५)

परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥ ६ ॥

हे परमेश्वर, आप सभी प्रकार से पूर्ण हैं। जब आपके भक्त गद्‌गद् वाणी से आपकी स्तुति करते हैं तथा आह्लादवश तुलसीदल, जल, पल्लव तथा दूब के अंकुर चढ़ाते हैं, तो आप निश्चय ही परम सन्तुष्ट होते हैं।(५.३.६)

अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥ ७ ॥

हमने आपकी पूजा में आपको अनेक वस्तुएँ अर्पित की हैं और आपके लिए अनेक यज्ञ किये हैं, किन्तु हम सोचते हैं कि आपको प्रसन्न करने के लिए इतने सारे आयोजनों की कोई आवश्यकता नहीं है।(५.३.७)

आत्मन एवानुसवनमञ्जसाव्यतिरेकेण बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किन्तु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥ ८ ॥

आप में प्रतिक्षण प्रत्यक्षतया, स्वयमेव, निरन्तर एवं असीमत: जीवन के समस्त लक्ष्यों एवं ऐश्वर्यों की वृद्धि हो रही है। दरअसल, आप स्वयं ही असीम सुख तथा आनन्द से युक्त हैं। हे ईश्वर, हम तो सदा ही भौतिक सुखों के फेर में रहते हैं। आपको इन समस्त याज्ञिक आयोजनों की आवश्यकता नहीं है। ये तो हमारे लिए हैं जिससे हम आपका आशीर्वाद पा सकें। ये सारे यज्ञ हमारे अपने कर्म-फल के लिए किये जाते हैं और वास्तव में आपको इनकी कोई अवश्यकता ही नहीं है।(५.३.८)

तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परमपरमपुरुष प्रकर्ष-करुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन् स्वयं नापचित एवेतर-वदिहोपलक्षितः ॥ ९ ॥

हे ईशाधश, हम धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष से पूर्णतया अनजान हैं क्योंकि हमें जीवनलक्ष्य का ठीक से पता नहीं है। आप यहाँ हमारे समक्ष साक्षात् इस प्रकार प्रकट हुए हैं जिस प्रकार कोई व्यक्ति जानबूझ कर अपनी पूजा कराने के लिए आया हो। किन्तु ऐसा नहीं है, आप तो इसलिए प्रकट हुए हैं जिससे हम आपके दर्शन कर सकें। आप अपनी
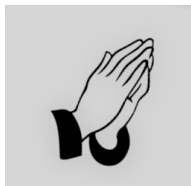
अगाध तथा अहैतुकी करुणावश हमारा उद्देश्य पूरा करने, हमारा हित करने तथा अपवर्ग का लाभ प्रदान करने हेतु प्रकट हुए हैं। हम अपनी अज्ञानता के कारण आपकी ठीक से उपासना भी नहीं कर पा रहे हैं, तो भी आप पधारे हैं।(५.३.९)

अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥ १० ॥

हे पूज्यतम, आप समस्त वरदायकों में श्रेष्ठ हैं और राजर्षि नाभि की यज्ञशाला में आपका प्राकट्य हमें आशीर्वाद देने के लिए हुआ है। चूँकि हम आपको देख पाये हैं इसलिए आपने हमें सर्वाधिक मूल्यवान वर प्रदान किया है।(५.३.१०)

असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनी-
नामनवरतपरिगुणितगुणगण परममङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि ॥ ११ ॥

हे ईश्वर, समस्त विचारवान मुनि तथा साधु पुरुष निरन्तर आपके दिव्य गुणों का गान करते रहते हैं। इन मुनियों ने अपनी ज्ञान-अग्नि से अपार मलराशि को पहले ही दग्ध कर दिया है और इस संसार से अपने वैराग्य को सुदृढ़ किया है। इस प्रकार वे आपके गुणों को ग्रहण कर आत्मतुष्ट हैं। तो भी जिन्हें आपके गुणों के गान में परम-आनन्द आता है उनके लिए भी आपका दर्शन दुर्लभ है।(५.३.११)

अथ कथञ्चित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सक
लकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचन-गोचराणि भवन्तु ॥ १२ ॥

हे ईश्वर, सम्भवहै कि हम कँपकँपाने, भूखे रहने, गिरने, जम्हाई लेने या ज्वर के कारण मृत्यु के समय शोचनीय रुग्ण अवस्था में रहने के कारण आपके नाम का स्मरण न कर पाएँ। अतः हे ईश्वर, हम आपकी स्तुति करते हैं क्योंकि आप भक्तों पर वत्सल रहते हैं। आप हमें अपने पवित्र नाम, गुण तथा कर्म को स्मरण कराने में सहायक हों जिससे हमारे पापी जीवन के सभी पाप दूर हो जाँय।(५.३.१२)

किञ्चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुपधावति
प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥ १३ ॥

हे ईश्वर, आपके समक्ष ये महाराज नाभि, हैं जिनके जीवन का परम लक्ष्य आपके ही समान पुत्र प्राप्त करना है। हे भगवन्, उसकी स्थिति उस व्यक्ति जैसी है, जो एक अत्यन्त धनवान पुरुष के पास थोड़ा सा अन्न माँगने के लिए जाता है। पुत्रेच्छा से ही वे आपकी उपासना कर रहे हैं यद्यपि आप उन्हें कोई भी उच्चस्थ पद प्रदान कर सकने में समर्थ हैं—चाहे वह स्वर्ग हो या भगवद्धाम का मुक्ति-लाभ।(५.३.१३)

को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययानवसितपदव्यानावृतमतिर्विषय-
विषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥ १४ ॥

हे ईश्वर, जब तक मनुष्य परम भक्तों के चरणकमलों की उपासना नहीं करता, तब तक उसे माया परास्त करती रहेगी और उसकी बुद्धि मोहग्रस्त बनी रहेगी। दरअसल, ऐसा कौन है जो विष तुल्य भौतिक सुख की तरंगों में न बहा हो! आपकी माया दुर्जेय है। न तो इस माया के पथ को कोई देख सकता है, न इसकी कार्य-प्रणाली को ही कोई बता सकता है।(५.३.१४)

यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्य-
द्देवहेलनं देववेवार्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥ १५ ॥
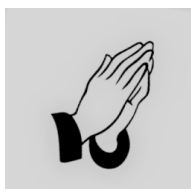
हे ईश्वर, आप अनेक अद्‌भुत कार्य कर सकने में समर्थ हैं। इस यज्ञ के करने का हमारा एकमात्र लक्ष्य पुत्र प्राप्त करना था, अतः हमारी बुद्धि अधिक प्रखर नहीं है। हमें जीवन-लक्ष्य निर्धारित करने का कोई अनुभव नहीं है। निसन्देह भौतिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु किये गये इस तुच्छ यज्ञ में आपको आमंत्रित करके हमने आपके चरण कमलों में महान् पाप किया है। अतः हे सर्वेश, आप अपनी अहैतुकी कृपा तथा समदृष्टि के कारण हमें क्षमा करें।(५.३.१५)

25. श्री संकर्षण स्तवः

श्रीभगवानुवाच

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥ १७ ॥

परम शक्तिमान भगवान् शिव कहते हैं—हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, मैं संकर्षण के रूप में आपको प्रणाम करता हूँ। आप समस्त दिव्य गुणों के आगार हैं। अनन्त होकर भी आप अभक्तों के लिए अप्रकट रहते हैं।(५.१७.१७)

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।
भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥ १८ ॥

हे प्रभो, आप ही एकमात्र आराध्य हैं, क्योंकि आप ही समस्त ऐश्वर्यों के आगार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आपके चरण-कमल भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं। आप भक्तों को अपने नाना रूपों द्वारा सन्तुष्ट करने वाले हैं। हे प्रभो, आप अपने भक्तों को भौतिक संसार के चंगुल से छुड़ाने वाले हैं। आपकी इच्छा से ही अभक्त लोग इस भौतिक संसार में उलझे रहते हैं। कृपया मुझे अपने नित्य दास के रूप में स्वीकार करें।(५.१७.१८)

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभि- र्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।
ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥ १९ ॥

हम अपने क्रोध के वेग को रोक नहीं पाते, अतः जब हम भौतिक वस्तुओं को देखते हैं तो उनसे आकर्षित या विकर्षित हुए बिना नहीं रह पाते। किन्तु परमेश्वर इस प्रकार कभी भी प्रभावित नहीं होते। यद्यपि इस भौतिक जगत की सृष्टि, पालन तथा संहार के हेतु इस पर दृष्टिपात करते हैं, किन्तु इससे रंचमात्र भी प्रभावित नहीं होते। अतः वह जो अपनी इन्द्रियों के वेग पर विजय प्राप्त करना चाहता है, उसे श्रीभगवान् के चरमकमलों की शरण लेनी चाहिए। तभी वह विजयी होगा।(५.१७.१९)

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥ २० ॥

कुत्सित दृष्टि वाले व्यक्तियों के लिए भगवान् के नेत्र मदिरा पीये हुए उन्मत्त पुरुष जैसे हैं। ऐसे अविवेकी पुरुष भगवान् पर रुष्ट होते हैं और अपने रोषवश उन्हें श्रीभगवान् अत्यन्त रुष्ट एवं भयावह लगते हैं। किन्तु यह माया है। जब भगवान् के चरणकमलों के स्पर्श से नाग-वधुएँ उत्तेजित हुईं तो वे लज्जावश उनकी और अधिक आराधना नहीं कर पाईं फिर भी भगवान् उनके स्पर्श से उत्तेजित नहीं हुए, क्योंकि समस्त परिस्थितियों में वे धीर बने रहते हैं। अतः ऐसा कौन होगा जो भगवान् की आराधना करना नहीं चाहेगा?(५.१७.२०)

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥ २१ ॥
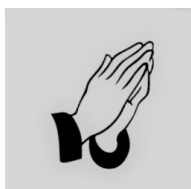
शिवजी कहते हैं—सभी महान् ऋषि भगवान् को सृजक, पालक और संहारक के रूप में स्वीकार करते हैं, यद्यपि वास्तव में उनका इन कार्यों से कोई सरोकार नहीं है। इसीलिए श्रीभगवान् को अनन्त कहा गया है। यद्यपि शेष अवतार के रूप में वे अपने फणों पर समस्त ब्रह्माण्डों को धारण करते हैं, किन्तु प्रत्येक ब्रह्माण्ड उन्हें सरसों के बीज से अधिक भारी नहीं लगता। अतः सिद्धि का इच्छुक ऐसा कौन पुरुष होगा जो ईश्वर की आराधना नहीं करेगा ?(५.१७.२१)

यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान् विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ।
यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥ २२ ॥
एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः ।
महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥ २३ ॥

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से ही ब्रह्माजी प्रकट होते हैं, जिनका शरीर महत् तत्त्व से निर्मित है और वह भौतिक प्रकृति के रजोगुण द्वारा प्रभावित बुद्धि का आगार है। ब्रह्माजी से मैं स्वयं मिथ्या अहंकार रूप में, जिसे रुद्र कहते हैं, उत्पन्न होता हूँ। मैं अपनी शक्ति से अन्य समस्त देवताओं, पंच तत्त्वों तथा इन्द्रियों को जन्म देता हूँ। अतः मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आराधना करता हूँ। वे हम सबों से श्रेष्ठ हैं और सभी देवता, महत् तत्त्व तथा इन्द्रियाँ, यहाँ तक कि ब्रह्माजी और स्वयं मैं उनके वश में वैसे ही हैं जिस प्रकार कि डोरी से बँधे पक्षी। केवल उन्हीं के अनुग्रह से हम इस जगत का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं। अतः मैं परमब्रह्म को सादर प्रणाम करता हूँ।(५.१७.२२-२३)

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥ २४ ॥

श्रीभगवान् की माया हम समस्त बद्ध जीवात्माओं को इस भौतिक जगत से बाँधती है, अतः उनकी कृपा के बिना हम जैसे तुच्छ प्राणी माया से छूटने की विधि नहीं समझ पाते। मैं उन श्रीभगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जो इस जगत की उत्पत्ति और लय के कारणस्वरूप हैं।(५.१७.२४)

26. श्री हयाग्रिव्मुर्तेर भगवत स्तवः

भद्रश्रवस ऊचुः
ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ २ ॥

राजा भद्रश्रवा तथा उसके घनिष्ठ सेवक इस प्रकार स्तुति करते हैं—इस भौतिक जगत में बद्धजीव के चित्त को शुद्ध करने वाले, समस्त धार्मिक विधानों के आगार भगवान् को हमारा नमस्कार है। हम उन्हें बारम्बार सादर नमस्कार करते हैं।(५.१८.२)

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।
ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥ ३ ॥

अहो! कितने आश्चर्य की बात है कि मूर्ख संसारी अपने सिर पर नाचती मृत्यु की ओर भी ध्यान नहीं देता। यह जानते हुए भी कि मृत्यु अटल है, वह उसके प्रति उदासीन एवं लापरवाह रहता है। चाहे उसके पिता की मृत्यु हो, अथवा पुत्र की मृत्यु क्यों न हो, वह उसकी सम्पत्ति का उपभोग करना चाहता है। प्रत्येक दशा में वह अर्जित धन से किसी की परवाह किये बिना सांसारिक सुख का उपभोग करने का प्रयत्न करता है।(५.१८.३)
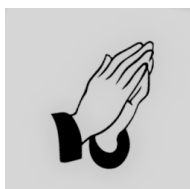
वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।
तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ ४ ॥

हे अजन्मा, आत्मज्ञान में समुन्नत वेदविद् अन्य तार्किकों तथा दार्शनिकों की तरह यह भलीभाँति जानते हैं कि यह भौतिक जगत नश्वर है। वे समाधि की दशा में इस जगत की वास्तविक स्थिति का अनुभव करते हैं। वे सत्य का भी उपदेश देते हैं। किन्तु कभी-कभी वे भी आपकी माया से मोहित हो जाते हैं। यह आपकी अपनी ही विचित्र लीला है, अतः मैं समझ सकता हूँ कि आपकी माया अत्यन्त विचित्र है। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(५.१८.४)

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ ५ ॥

हे भगवन्, यद्यपि आप इस भौतिक जगत की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय से सर्वथा विरत हैं और इन कार्यों से आप प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं होते, तो भी वे आपके द्वारा किये गये माने जाते हैं। हमें इस पर विस्मय नहीं होता, क्योंकि सर्वात्मरूप होने से आप समस्त कारणों के कारण हैं। आप प्रत्येक वस्तु से विलग रहते हुए भी प्रत्येक वस्तु के सक्रिय तत्त्व हैं। इस प्रकार हम अनुभव करते हैं कि आपकी अचिन्त्य शक्ति के कारण ही प्रत्येक घटना घटती है।(५.१८.५)

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः ।
प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥ ६ ॥

कल्प के अन्त में साक्षात् अज्ञान एक दैत्य का रूप धारण कर सभी वेदों को चुरा कर उन्हें रसातल ले गया। किन्तु श्रीभगवान् ने हयग्रीव का रूप धारण करके वेदों को पुनः प्राप्त किया और ब्रह्माजी के विनय करने पर उन्हें लाकर दे दिया। हे सत्यसंकल्प पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(५.१८.६)

27. श्री नृसिम्ह स्तुति

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥ ८ ॥

समस्त तेज के स्रोत भगवान् नृसिंहदेव, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे वज्र के समान नख तथा दांतों वाले प्रभु! आप इस भौतिक जगत में हमारी आसुरी सकाम कर्म-वासनाओं को मिटा दें। हमारे हृदय में प्रकट होकर हमारे अज्ञान को भगा दें, जिससे इस भौतिक जगत में हम निडर होकर जीवन के लिए संघर्ष कर सकें।(५.१८.८)
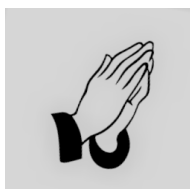
स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥

इस सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो और सभी इर्ष्यालु व्यक्ति शान्त हों, सभी जीवात्माएँ भक्तियोग का अभ्यास करके प्रशान्त हों, क्योंकि भक्ति करने पर वे एक दूसरे का कल्याण चिन्तन कर सकेंगे। अतः हम सभी भगवान् श्रीकृष्ण की परम भक्ति में लगकर उन्हीं के विचार में मग्न रहें।(५.१८.९)

मागारदारात्मजवित्तबन्धुषु सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ।
यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान् सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥ १० ॥

हे भगवन्, हमारी प्रार्थना है कि हम पारिवारिक जीवन के बन्धन जिसमें घर, स्त्री, सन्तान, मित्र, धन तथा सम्बन्धिजन इत्यादि सम्मिलित हैं, इसके प्रति कभी भी आकृष्ट न हों। यदि हम में किसी से किंचित आसक्ति हो भी तो वह भक्तों से हो जिनके लिए श्रीकृष्ण ही परम प्रिय हैं। जिस व्यक्ति को आत्म–साक्षात्कार हो चुका है और जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से तुष्ट रहता है। वह अपनी इन्द्रियतुष्टि का प्रयास नहीं करता। ऐसा व्यक्ति जल्दी ही कृष्णभावनामृत की ओर अग्रसर होता है, किन्तु जो भौतिक वस्तुओं में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, उनके लिए ऐसा कर पाना कठिन है।(५.१८.१०)

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम्।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम्॥ ११॥

ऐसे व्यक्तियों की संगति करने से, जिनके लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुकुन्द ही सब कुछ हैं, भगवान् के यशस्वी कार्यों को सुनकर शीघ्र ही समझ सकता है। मुकुन्द के यशस्वी कार्य इतने सक्षम हैं कि इनको सुनकर ही भगवान् की संगति प्राप्त की जा सकती है। निरन्तर उत्सुकतापूर्वक भगवान् के यशस्वी कार्यों का वर्णन सुनते रहने से परम सत्य श्रीभगवान् ध्वनि तरंगों के रूप में हृदय में प्रवेश करते हैं और समस्त कल्मष को दूर कर देते हैं। दूसरी ओर यद्यपि गंगास्नान से मल तथा संदूषण घटते हैं, किन्तु स्नान तथा पवित्र स्थानों के दर्शन से दीर्घकाल के अनन्तर ही हृदय स्वच्छ हो पाता है। अतः कौन ऐसा विज्ञपुरुष होगा जो जीवन की सिद्धि के लिए भक्तों की संगति नहीं करना चाहेगा?(५.१८.११)

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः॥ १२॥

जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव के प्रति शुद्ध भक्ति उत्पन्न कर लेता है उसके शरीर में सभी देवता तथा उनके महान् गुण यथा धर्म, ज्ञान तथा त्याग प्रकट होते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति भक्ति से रहित है और भौतिक कर्मों में व्यस्त रहता है उसमें कोई सद्गुण नहीं आते। भले ही कोई व्यक्ति योगाभ्यास में दक्ष क्यों न हो और अपने परिवार और सम्बन्धियों का भलीभाँति भरण–पोषण करता हो वह अपनी मनोकल्पना द्वारा भगवान् की बहिरंगा–शक्ति की सेवा में तत्पर होता है। भला ऐसे पुरुष में सद्गुण कैसे आ सकते हैं?(५.१८.१२)

हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा- मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम्॥ १३॥

जिस प्रकार जलचर प्राणी सदैव विशाल जलराशि में रहना चाहते हैं उसी प्रकार समस्त बद्धात्माएँ श्रीभगवान् के अपार अस्तित्व में रहने की कामना करती हैं। अतः यदि भौतिक गणना के आधार पर माना गया कोई श्रेष्ठ पुरुष किन्हीं कारणों से परमात्मा की शरण न ग्रहण कर गृहस्थ जीवन में लिप्त हो जाता है, तो उसकी श्रेष्ठता निम्न श्रेणी के तरुण दम्पत्ति जैसी होती है। भौतिक जीवन के प्रति अत्यधिक आसक्ति से समस्त आध्यात्मिक गुणों का लोप हो जाता है।(५.१८.१३)

तस्माद्रजोरागविषादमन्यु- मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम्।
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति॥ १४॥

अतः, हे असुरगण, गृहस्थ जीवन के तथाकथित सुख का परित्याग करके भगवान् नृसिंह देव के चरणारविन्दों की शरण ग्रहण करो। वे ही निर्भीकता की वास्तविक शरण–स्थली हैं। सांसारिक अनुरक्ति, दुर्दमनीय कामनाएँ, विषाद, क्रोध,

निराशा, भय, झूठी प्रतिष्ठा की भूख इन सबका मूल कारण गृहस्थ जीवन में आसक्ति है, जिसके कारण जीवन-मरण का चक्र चलता रहता है।(५.१८.१४)

28. श्री रमादेविकृत स्तुति

ॐ हां हीं हूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय-च्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्तायकामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ १८ ॥

मेरी समस्त इन्द्रियों के नियन्ता तथा समस्त वस्तुओं की उत्पत्ति के स्तोत्र भगवान् हृषीकेश को मेरा नमस्कार है। वे समस्त दैहिक, मानसिक तथा बौद्धिक कर्मों के अधीश्वर और उनके फलों के एकमात्र भोक्ता हैं। पाँचों इन्द्रियों के विषय तथा मन समेत ग्यारह इन्द्रियाँ उनकी आंशिक अभिव्यक्तियाँ हैं। वे समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं, जो उनकी शक्तिस्वरूपा होने के कारण उनसे अभिन्न हैं; वे प्रत्येक व्यक्ति की दैहिक और मानसिक शक्ति के कारण रूप हैं, जो उनसे अभिन्न हैं। दरअसल, वे समस्त जीवात्माओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले तथा उनके भर्ता हैं। समस्त वेदों का ध्येय उनकी उपासना है। अत: हम सभी उन्हें सविनय नमस्कार करते हैं। वे इस जन्म में तथा अगले जन्म में सदा हमारे अनुकूल रहें।(५.१८.१८)

स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषीकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥ १९ ॥

हे प्रभो, आप निश्चित रूप से समस्त इन्द्रियों के पूर्ण रूप से स्वतंत्र स्वामी हैं। अत: समस्त स्त्रियाँ जो अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए पति को पाने की कामना से संकल्पों का दृढ़पालन करके आपकी उपासना करती हैं, वे अवश्य ही मोहग्रस्त हैं। वे यह नहीं जानती कि ऐसा पति न तो उनकी और न ही उनकी सन्तानों की रक्षा कर सकता है। वह स्वयं ही काल, कर्मफल तथा प्रकृति-गुणों के अधीन है जो सब आपके अधीनस्थ हैं, अत: वह न तो सम्पत्ति की रक्षा कर सकता है और न अपने सन्तानों की।(५.१८.१९)

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥ २० ॥

जो स्वयं निर्भय है तथा जो सभी भयभीत व्यक्तियों को शरण प्रदान करता है, केवल वही वास्तव में पति तथा रक्षक हो सकता है। अत:, हे प्रभो, आप ही एकमात्र पति हैं, कोई अन्य इस पद का भागी नहीं हो सकता। यदि आप एकमात्र पति न होते तो आप भी अन्यों से डरते। अत: वेदों के पारंगत व्यक्ति आपको ही प्रत्येक का स्वामी स्वीकार करते हैं और यह मानते हैं कि आपसे बढ़कर कोई अन्य पति एवं रक्षक नहीं है।(५.१८.२०)

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्यते ॥ २१ ॥

हे भगवन्, जो स्त्री आपके चरणकमल की आराधना विशुद्ध प्रेमवश करती है, आप उसकी समस्त कामनाओं को स्वत: ही पूरा करते हैं। यदि कोई स्त्री आपके चरणकमलों की पूजा किसी विशेष प्रयोजन के लिए करती है, तो भी आप उसकी कामनाओं को शीघ्र पूरा करते हैं, किन्तु अन्तत: वह टूटे हुए मन से पश्चात्ताप करती है। अत: किसी भौतिक लाभ के लिए आपके चरणकमलों की आराधना नहीं की जानी चाहिए।(५.१८.२१)
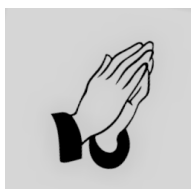
मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादय- स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ २२ ॥

हे अजेय परमेश्वर, मेरा आशीर्वाद पाने के लिए इन्द्रियसुख के अभिलाषी ब्रह्माजी तथा शिवजी आदि समस्त सुर-असुरगण घोर तपस्या करते हैं, किन्तु आपके चरणारविन्द की सेवा में संलग्न भक्त के अतिरिक्त अन्य पर मैं अनुग्रह नहीं करती, चाहे वह कितना भी महान् क्यों न हो। चूँकि मैं निरन्तर आपको अपने हृदय में बसाये रहती हूँ इसलिए मैं भक्त के अतिरिक्त अन्य किसी पर अनुग्रह नहीं करती।(५.१८.२२)

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥ २३ ॥

हे अच्युत, आपका कर-कमल सभी वरदानों का स्रोत है। अत: आपके शुद्ध भक्त उसकी पूजा करते हैं और आप अत्यन्त दयापूर्वक उनके शिरों पर अपना हाथ रखते हैं। मेरी भी यही कामना है कि आप मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखें, यद्यपि आप पहले से ही अपने वक्षस्थल पर श्रीलक्ष्म रूप में मुझे धारण करते हैं, किन्तु इस सम्मान को मैं मिथ्या प्रतिष्ठा की तरह मानती हूँ। आप अपनी वास्तविक दया भक्तों पर ही दिखाते हैं, मुझ पर नहीं। निस्सन्देह, आप सर्वसमर्थ नियंता हैं, आपके प्रयोजन को भला कौन समझ सकता है ?(५.१८.२३)

29. मनुकृता स्तुति

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय
महामत्स्याय नम इति ॥ २५ ॥

मैं सत्त्व स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार करता हूँ। वे प्राण, शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति तथा ज्ञानेन्द्रिय शक्ति के मूल स्रोत हैं। समस्त अवतारों में प्रकट होने वाले वे महामत्स्यावतार हैं। मैं पुन: उनको नमस्कार करता हूँ।(५.१८.२५)

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकै- रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ।
स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनय- न्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥ २६ ॥

हे ईश्वर, जिस प्रकार एक नट कठपुतलियों को तथा पति अपनी पत्नी को वश में रखता है, उसी प्रकार आप इस ब्रह्माण्ड की समस्त जीवात्माओं को, चाहे वे ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, अपने वश में रखने वाले हैं। यद्यपि आप जन-जन के हृदयों के भीतर परम साक्षी के रूप में और उनके बाहर भी निवास करते हैं, किन्तु समाज, जाति तथा देश के तथाकथित नेता आपको समझ नहीं पाते। केवल वैदिक मंत्रों की स्वरलहरियों को सुनने वाले आपको जान पाते हैं।(५.१८.२६)

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २७ ॥

हे ईश्वर, इस ब्रह्माण्ड के बड़े से बड़े नेता, यथा ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं से लेकर इस संसार के राजनीतिक नेताओं तक, सभी आपकी सत्ता के प्रति ईर्ष्यालु हैं। किन्तु आपकी सहायता के बिना वे न तो पृथक्-पृथक्, न ही सम्मिलित रूप से इस ब्रह्माण्ड के असंख्य जीवों का पालन कर सकते हैं। आप समस्त मनुष्यों, पशुओं (यथा गाय, गधा) तथा समस्त वनस्पतियों, रेंगने वाले जीवों, पक्षियों, पर्वतों तथा इस संसार में जो भी दिखाई पड़ता है उसके एकमात्र वास्तविक पालक हैं।(५.१८.२७)
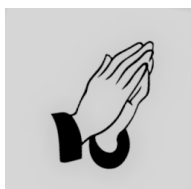
भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ।
मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥ २८ ॥

हे सर्वशक्तिमान ईश्वर, कल्पान्त में यह पृथ्वी, जो सभी प्रकार की जड़ी बूटियों तथा वृक्षों की आगार है, जल की बाढ़ से प्रलयकारी तरंगों के नीचे डूब गई। उस समय आपने पृथ्वी सहित मेरी रक्षा की और अत्यन्त वेग से आप समुद्र में भ्रमण करते रहे। हे अजन्मा, आप इस समग्र सृष्टि के वास्तविक पालनकर्ता हैं, इसलिए आप ही सभी जीवात्माओं के कारणस्वरूप हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(५.१८.२८)

30. पितृगनपतेरयमन कृत स्तवः

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो
वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ ३० ॥

हे प्रभो, कच्छप स्वरूप आपको मेरा सादर नमस्कार है। आप समस्त दिव्य गुणों के आगार हैं। आप भौतिकता से पूर्णतः रहित तथा परम सत्त्व में स्थित हैं। आप जल में विचरण करते रहते हैं, किन्तु कोई आपका पता नहीं लगा पाता, अतः मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। अपनी दिव्य स्थिति के कारण आप भूत, वर्तमान तथा भविष्य से बँधे नहीं रहते। आप सर्वत्र सर्वाधार रूप में उपस्थित रहते हैं, अतः मैं बारम्बार आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(५.१८.३०)

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पित- मर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ।
संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात् तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ ३१ ॥

हे भगवन्, यह विराट दृश्य अभिव्यक्ति आपकी अपनी सृजनात्मक शक्ति का प्रदर्शन है। इसके अन्तर्गत अनन्त रूप आपकी बहिरंगा शक्ति (माया) का प्रदर्शन मात्र है, अतः यह विराट रूप आपका वास्तविक रूप नहीं है। आपके वास्तविक रूप का दर्शन तो केवल दिव्य भावना भावित भावित भक्तजन कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं। इसलिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(५.१८.३१)

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ।
द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र- द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३२ ॥

हे प्रिय प्रभु, आप अपनी विविध शक्तियाँ अनगिनत रूपों में प्रदर्शित करते हैं—जैसे कि गर्भ से अंडे से तथा स्वेद से उत्पन्न होने वाले जीव; धरती से पौधों एवं वृक्षों के रूप में विकसित होने वाले जीव; देवता, विद्वान, ऋषि–मुनि तथा पितृओं सहित चर तथा अचर सारे जीव; बाह्यावकाश, स्वर्गलोक सहित उच्चतर ग्रहमंडल एवं पर्वत, नदियाँ, महासागरों तथा द्वीपों सहित पृथ्वी ग्रह इत्यादि।(५.१८.३२)

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनाम- रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ।
संख्या यया तत्त्वदृशापनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥ ३३ ॥

हे प्रभो, आपका नाम, रूप तथा आकृति असंख्य रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि आप कितने रूपों में विद्यमान हैं, फिर भी आपके स्वयं के अवतार कपिलदेव जैसे मुनियों ने इस विराट जगत में चौबीस तत्त्व निश्चित किये हैं। अतः यदि कोई सांख्य दर्शन में रुचि रखता है, तो उसे चाहिए कि विभिन्न सत्यों को वह आपसे सुने। दुर्भाग्यवश जो आपके भक्त नहीं हैं, वे केवल तत्त्वों की गणना कर पाते हैं, किन्तु आपके वास्तविक रूप से अनजान रहते हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(५.१८.३३)
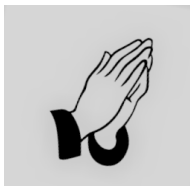
31. धरणी कृत स्तुतिः

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलि्राय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय
नमः कर्मशुचा ाय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ३५ ॥

हे प्रभो, हम विराट पुरुष के रूप में आपको सादर नमस्कार करते हैं। केवल मंत्रोच्चार से हम आपको पूर्णत: समझ सकते हैं। आप यज्ञरूप हैं, आप क्रतु हैं। अत: यज्ञ के सभी अनुष्ठान आपके दिव्य शरीर के अंशरूप हैं और केवल आप ही समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं। आपका स्वरूप दिव्य गुणों से युक्त है। आप 'त्रियुग ' कहलाते हैं, क्योंकि कलियुग में आपने प्रच्छन्न अवतार लिया है और आप छहों ऋद्धियों के स्वामी हैं।(५.१८.३५)

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ३६ ॥

ऋषि तथा मुनि काठ में छिपी अग्नि को अरणी के द्वारा उत्पन्न कर सकने में समर्थ हैं। हे प्रभो, परम सत्य को समझने में दक्ष ऐसे व्यक्ति आपको प्रत्येक वस्तु में, यहाँ तक कि अपने शरीर में भी देखने का प्रयास करते हैं किन्तु आप फिर भी अप्रकट रहते हैं। मानसिक या भौतिक क्रियाओं जैसी अप्रत्यक्ष विधियों से आपको नहीं समझा जा सकता। आप स्वत: प्रकट होने वाले हैं, अत: जब आप देख लेते हैं कि कोई व्यक्ति सर्वभावेन आपकी खोज में संलग्न है तभी आप अपने को प्रकट करते हैं। अत: मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।(५.१८.३६)

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि- र्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।
अन्वीक्षया्रातिशयात्मबुद्धिभि- र्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥ ३७ ॥
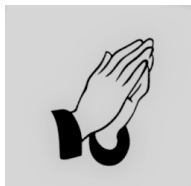
भौतिक सुख के साधन (शब्द, गन्ध, रूप, स्पर्श, स्वाद), ऐन्द्रिय कर्म, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता, शरीर, अनन्त काल तथा अहंकार—ये सभी आपकी माया से उत्पन्न हैं। जिन्होंने योग के द्वारा अपनी बुद्धि को स्थिर कर लिया है वे यह देख सकते हैं कि ये सभी तत्त्व आपकी माया के ही परिणाम हैं। वे आपके दिव्य रूप को भी प्रत्येक वस्तु की पृष्ठ भूमि में परम आत्मा के रूप में देख सकते हैं। अत: मैं पुन: पुन: आपको नमस्कार करता हूँ।(५.१८.३७)

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।
माया यथायो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ३८ ॥

हे प्रभो, आप इस भौतिक जगत की सृष्टि, पालन या संहार के इच्छुक नहीं हैं, किन्तु बद्धजीवों के लिए अपनी सृजनात्मक शक्ति के द्वारा इन क्रियाओं को निष्पादित करते हैं। जिस प्रकार चुम्बक-पत्थर के प्रभाव से लोहे का टुकड़ा घूमता है ठीक उसी प्रकार जब आप समस्त माया पर दृष्टि फेरते हैं, तो सारे जड़ पदार्थ गति करने लगते हैं।(५.१८.३८)

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥ ३९ ॥

हे प्रभो, इस ब्रह्माण्ड में आदि शूकर रूप में आपने हिरण्याक्ष दैत्य के साथ युद्ध करके उसका संहार किया। फिर आपने अपने दाढ़ो के अग्र भाग से मुझ पृथ्वी को गर्भोदक सागर से उसी प्रकार ऊपर उठा लिया जैसे क्रीड़ारत गज जल में से कमल-पुष्प तोड़ लेता है। मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ।(५.१८.३९)

32. श्री रामचंद्र स्तुतिः

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षि-तात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥ ३ ॥

हे प्रभो, मैं ॐ कार बीजमंत्र के जप से आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। मैं उन श्रीभगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो उत्तम पुरुषों में सर्वाधिक हैं। आप आर्यजनों के समस्त उत्तम गुणों के भंडार हैं। आपके गुण तथा आचरण सदैव एकसमान रहने वाला है और आप अपनी इन्द्रियों तथा मन को सदैव अपने वश में रखने वाले हैं। सामान्य व्यक्ति की भाँति आप आदर्श चरित्र प्रस्तुत करके अन्यों को आचरण करना सिखाते हैं। कसौटी केवल स्वर्ण के गुण की परीक्षा करने में समर्थ है, किन्तु आप ऐसे स्पर्श-मणि हैं, जिससे समस्त उत्तम गुणों की परीक्षा हो जाती है। आप भक्तों में अग्रणी ब्राह्मणों के द्वारा उपासित हैं। हे परम पुरुष, आप महाराजा हैं, अतः मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(५.१९.३)

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

भगवान् को, जिनका विशुद्ध रूप (सच्चिदानन्दविग्रह) भौतिक गुणों के द्वारा दूषित नहीं है, विशुद्ध चेतना के द्वारा ही देखा जा सकता है। वेदान्त में उसे अद्वितीय कहा गया है। अपने तेजवश वह भौतिक प्रकृति के कल्मष से अछूता है और भौतिक दृष्टि से पर है। अप्रभावित है, अतः वह दिव्य है। न तो वह कोई कर्म करता है, न उसका कोई भौतिक रूप अथवा नाम है। केवल श्रीकृष्णभावना में ही भगवान के दिव्य रूप के दर्शन किये जा सकते हैं। हमें चाहिए कि हम भगवान् रामचन्द के चरणकमलों में दृढ़तापूर्वक स्थित होकर उनको सादर नमन करें।(५.१९.४)

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥

राक्षसों के नायक रावण को यह वर प्राप्त था कि उसका वध मनुष्य ही कर सकता है, इसलिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र को मनुष्य रूप धारण करना पड़ा, किन्तु भगवान् रामचन्द्र का उद्देश्य मात्र रावण का वध करना ही नहीं था। वे तो मर्त्य-प्राणियों को यह शिक्षा देना चाहते थे कि भोग विलास अथवा पत्नी के चारों ओर केन्द्रित भौतिक सुख समस्त दुखों का कारण है। वे स्वयं में पूर्ण हैं और उन्हें किसी भी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं है। अतः भला वे माता सीता के अपहरण से क्या कष्ट भोगते ?(५.१९.५)

न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ ६ ॥

चूँकि भगवान् रामचन्द्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान वासुदेव हैं अतः वे इस भौतिक जगत से किसी प्रकार लिप्त नहीं हैं। वे सभी स्वरूपसिद्ध आत्माओं के परम प्रिय परमात्मा और उनके घनिष्ठ मित्र हैं। वे परम ऐश्वर्यवान् हैं। अतः पत्नी-विछोह के कारण उन्होंने न तो अधिक कष्ट उठाये होंगे, न ही उन्होंने अपनी पत्नी तथा अपने लघु भ्राता लक्ष्मण का परित्याग किया। उनके लिए इन दोनों में किसी एक का भी परित्याग सर्वथा असम्भव था।(५.१९.६)

न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस- श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ ७ ॥
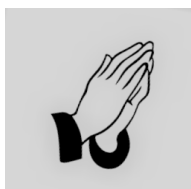
उच्चकुल में जन्म धारण करने, शारीरिक सौन्दर्य, वाकचातुरी, तीक्ष्ण बुद्धि या श्रेष्ठ जाति अथवा राष्ट्र जैसे भौतिक गुणों के कारण कोई चाह कर भी भगवान् रामचन्द्र से मैत्री स्थापित नहीं कर सकता। उनसे मित्रता स्थापित करने के लिए इन गुणों की आवश्यकता नहीं है, अन्यथा भला हम असभ्य वनवासियों को, बिना उच्च कुल में जन्म लिये तथा रूप-रंग न होते हुए और भद्र पुरुषों की भाँति बात कर सकने में सक्षम न होने पर भी अपने मित्रों के रूप में क्यों स्वीकार करते ?(५.१९.७)

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥ ८ ॥

अतः चाहे सुर हो या असुर, मनुष्य हो या मनुष्येतर प्राणी जैसे पशु या पक्षी, प्रत्येक को उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की पूजा करनी चाहिए जो इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में प्रकट होते हैं। भगवान् की पूजा के लिए किसी कठोर तप या साधना की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे अपने भक्त की तुच्छ सेवा को भी स्वीकार करने वाले हैं। इस प्रकार से वे तुष्ट हो जाते हैं और उनके तुष्ट होते ही भक्त सफल हो जाता है। निस्सन्देह, श्रीरामचन्द्र अयोध्या के समस्त भक्तों को वैकुण्ठ धाम वापस ले गये।(५.१९.८)

33. भारत-वर्से श्री नारदऋषि प्रणित श्री नारा-नारायण स्तुतिः

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय
ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥ ११ ॥

मैं समस्त सन्त पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् नर-नारायण को सादर नमस्कार करता हूँ। वे अत्यन्त आत्मसंयमित तथा आत्माराम हैं, वे झूठी प्रतिष्ठा से परे हैं और निर्धनों की एकमात्र सम्पदा हैं। वे मनुष्यों में परम सम्माननीय समस्त परमहंसों के गुरु हैं और आत्मसिद्धों के स्वामी हैं। मैं उनके चरणकमलों को पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ।(५.१९.११)

गायति चेदम्—
कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।
द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥ १२ ॥

परम शक्तिमान ऋषि नारद नर-नारायण की आराधना निम्नलिखित मंत्र का जप करके करते हैं—"पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् इस दृश्य जगत के सृष्टिकर्ता, पालक और संहारक हैं, तो भी वे मिथ्या अभिमान से पूर्णतया मुक्त हैं। यद्यपि मूढ़ों के लिए उन्होंने हमारे समान शरीर धारण करना स्वीकार किया प्रतीत होता है, किन्तु उन्हें भूख, प्यास तथा थकान जैसे शारीरिक कष्ट नहीं सताते। यद्यपि वे सर्वद्रष्टा हैं, किन्तु जिन वस्तुओं को वे देखते हैं उनसे उनकी इन्द्रियाँ दूषित नहीं होती। मैं ऐसे अनासक्त, जगत के साक्षी, परमात्मास्वरूप श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।"(५.१९.१२)

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ १३ ॥

हे योगेश्वर, आत्माराम भगवान् ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) ने योगक्रिया के विषय में जो कुछ कहा है यह उसकी व्याख्या है। मृत्यु के समय सभी योगी आपके चरण-कमलों में अपना मन स्थापित करके अपने भौतिक शरीर को त्यागते हैं। यह योग सिद्धि है।(५.१९.१३)
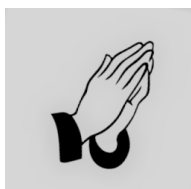
यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।
शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद् यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ १४ ॥

सामान्य रूप से भौतिकतावादी जन अपने वर्तमान तथा भावी शारीरिक सुखों में अत्यन्त लिप्त रहते हैं। अत: वे अपनी पत्नी, सन्तान तथा सम्पत्ति के विचारों में सदैव मग्न रहते हैं और इस मलमूत्र से भरे हुए शरीर को त्यागने से भयभीत रहते हैं। यदि कृष्णभक्ति में संलग्न व्यक्ति भी अपने शरीर-त्याग से भयभीत हों तो फिर शास्त्रों के अध्ययन में किये श्रम का क्या लाभ? यह केवल समय की है बर्बादी(५.१९.१४)

तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्माययाहंममतामधोक्षज ।
भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति ॥ १५ ॥

अत: हे प्रभो, हे अधोक्षज, कृपा करके हमें भक्तियोग साधने की शक्ति प्रदान करें जिससे हम अपने अस्थिर मन को वश में करके आप में लगा सकें। हम सभी आपकी माया से प्रभावित हैं, अत: हम मलमूत्र से पूरित शरीर तथा इससे संबंधित प्रत्येक वस्तु के प्रति अत्यधिक समर्पित हैं। इस आसक्ति को त्यागने का एकमात्र उपाय भक्ति है, अत: आप हमें यह वर दें।(५.१९.१५)

34. भारत-वर्स अधिकृत्य देवानाम गानं

एतदेव हि देवा गायन्ति—
अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २१ ॥

चूँकि आत्मसाक्षात्कार के लिए मनुष्य-जीवन ही परम पद है, अत: स्वर्ग के सभी देवता इस प्रकार कहते हैं—इन मनुष्यों के लिए भारतवर्ष में जन्म लेना कितना आश्चर्यजनक है। इन्होंने भूतकाल में अवश्य ही कोई तप किया होगा अथवा श्रीभगवान् स्वयं इन पर प्रसन्न हुए होंगे। अन्यथा वे इस प्रकार से भक्ति में संलग्न क्योंकर होते? हम देवतागण भक्ति करने के लिए भारतवर्ष में मनुष्य जन्म धारण करने की मात्र लालसा कर सकते हैं, किन्तु ये मनुष्य पहले से भक्ति में लगे हुए हैं।(५.१९.२१)

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै- र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ।
न यत्र नारायणपादपङ्कज- स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥ २२ ॥

देवता आगे कहते हैं—वैदिक यज्ञों के करने, तप करने, व्रत रखने तथा दान देने जैसे दुष्कर कार्यों के करने के पश्चात् ही हमें स्वर्ग में निवास करने का यह पद प्राप्त हुआ है। किन्तु हमारी इस सफलता का क्या महत्त्व है? यहाँ हम निश्चय ही भौतिक इन्द्रियतृप्ति में व्यस्त रहकर भगवान् नारायण के चरणकमलों का स्मरण तक नहीं कर पाते। अत्यधिक इन्द्रिय तृप्ति के कारण हम उनके चरणकमलों को लगभग विस्मृत ही कर चुके हैं।(५.१९.२२)

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः सन्न्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥ २३ ॥

ब्रह्मलोक में करोड़ों-अरबों वर्ष की आयु प्राप्त करने की अपेक्षा भारतवर्ष में अल्पायु प्राप्त करना श्रेयस्कर है, क्योंकि ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेने के बाद भी बारम्बार जन्म तथा मरण के चक्र में पड़ना होता है। यद्यपि मर्त्यलोक के अन्तर्गत भारतवर्ष में जीवन अत्यन्त अल्प है, किन्तु यहाँ का वासी पूर्ण कृष्णभक्ति तक पहुँच सकता है और भगवान् के चरणकमलों में अर्पित होकर इस लघु जीवन में भी परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उसे वैकुण्ठलोक प्राप्त होता है जहाँ न तो चिन्ता है, न भौतिक शरीर युक्त पुनर्जन्म।(५.१९.२३)

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ २४ ॥

जहाँ श्रीभगवान् की कथा रूपी विशुद्ध गंगा प्रवाहित नहीं होती और जहाँ पवित्रता की ऐसी नदी के तट पर सेवा में तल्लीन भक्तजन नहीं रहते, अथवा श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए जहाँ संकीर्तन-यज्ञ के उत्सव नहीं मनाये जाते, ऐसे स्थान में बुद्धिमान पुरुष के लिए रुचि नहीं होती। क्योंकि (इस युग में विशेषकर संकीर्तन-यज्ञ की संस्तुति की गई है)।(५.१९.२४)

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।
न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥ २५ ॥

भक्ति के लिए भारतवर्ष में उपयुक्त क्षेत्र तथा परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं, जिस भक्ति से ज्ञान तथा कर्म के फलों से मुक्त हुआ जा सकता है। यदि कोई भारतवर्ष में मनुष्य देह धारण करके संकीर्तन-यज्ञ नहीं करता तो वह उन जंगली पशुओं तथा पक्षियों की भाँति है जो मुक्त किये जाने पर भी असावधान रहते हैं और शिकारी द्वारा पुनः बन्दी बना लिए जाते हैं।(५.१९.२५)

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हवि- र्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ।
एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २६ ॥

भारतवर्ष में परमेश्वर द्वारा नियुक्त विभिन्न अधिकारी स्वरूप देवताओं यथा इन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य के अनेक उपासक हैं, जिन सभी की पृथक्-पृथक् विधियों से पूजा की जाती हैं। उपासक इन देवताओं को पूर्ण ब्रह्म का अंश मानते हुए अपनी आहुतियाँ अर्पण करते हैं,फलतः श्रीभगवान् इन भेंटों को स्वीकार करते हैं और क्रमशः इन उपासकों की कामनाओं तथा आकांक्षाओं को पूरा करके उन्हें शुद्ध भक्ति पद तक ऊपर उठा देते हैं। चूँकि श्रीभगवान् पूर्ण हैं, अतः वे उनको मनवांछित वर देते हैं, चाहे उपासक उनके दिव्य शरीर के किसी एक अंश की पूजा क्यों न करते हों।(५.१९.२६)

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता- मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २७ ॥

पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् उस भक्त की भौतिक कामनाओं की पूर्ति करते हैं, जो सकाम भाव से उनके पास जाता है, किन्तु वे भक्त को ऐसा वर नहीं देते जिससे वह अधिकाधिक वर माँगता रहे। फिर भी, भगवान् प्रसन्नतापूर्वक ऐसे भक्त को अपने चरणकमलों में शरण देते हैं, भले ही वह इसकी आकांक्षा न करे और शरणागत होने पर उसकी समस्त इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। यह श्रीभगवान् की विशेष अनुकम्पा है।(५.१९.२७)

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद् वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥ २८ ॥

यज्ञ, पुण्य कर्म, अनुष्ठान तथा वेदाध्ययन करते रहने के कारणस्वरूप हम स्वर्ग-लोक में वास कर रहे हैं, किन्तु एक दिन ऐसा आएगा जब हमारा भी अन्त हो जाएगा। हमारी प्रार्थना है कि उस समय तक यदि हमारे एक भी पुण्य शेष रहें तो हम मनुष्य रूप में भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करने के लिए भारतवर्ष में जन्म लें। श्रीभगवान् इतने दयालु हैं कि वे स्वयं भारतवर्ष में आते हैं और यहाँ के वासियों को सौभाग्य प्रदान करते हैं।(५.१९.२८)

35. प्रजापति दक्षकृतो हंसा गुह्य नाम सत्व-राजः

श्रीप्रजापतिरुवाच

नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभि- र्निवृत्तमानाय दधे स्वयम्भुवे ॥ २३ ॥

प्रजापित दक्ष ने कहा : भगवान् माया तथा उससे उत्पन्न शारीरिक कोटियों से परे हैं। उनमें अचूक ज्ञान तथा परम इच्छा–शक्ति रहती है और वे जीवों तथा माया के नियन्ता हैं। जिन बद्धात्माओं ने इस भौतिक जगत को सर्वस्व समझ रखा है वे उन्हें नहीं देख सकते, क्योंकि वे व्यावहारिक ज्ञान के प्रमाण से परे हैं। वे स्वत: प्रकट तथा आत्म–तुष्ट हैं। वे किसी कारण द्वारा उत्पन्न नहीं किये जाते। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।(६.४.२३)

न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन् ।
गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टे- स्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥ २४ ॥

जिस तरह इन्द्रियविषय (रूप, स्वाद, स्पर्श, गन्ध तथा ध्वनि) यह नहीं समझ सकते कि इन्द्रियाँ उनकी अनुभूति किस तरह करती हैं, उसी तरह बद्ध–आत्मा यद्यपि अपने शरीर में परमात्मा के साथ–साथ निवास करता है, यह नहीं समझ सकता कि भौतिक सृष्टि के स्वामी परम आध्यात्मिक पुरुष किस तरह उसकी इन्द्रियों को निर्देश देते हैं। मैं उन परम पुरुष को सादर नमस्कार करता हूँ जो परम नियन्ता हैं।(६.४.२४)

देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा- मात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ।
सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥ २५ ॥

केवल पदार्थ होने के कारण शरीर, प्राण वायु, बाह्य तथा आन्तरिक इन्द्रियाँ, पाँच स्थूल तत्त्व तथा सूक्ष्म इन्द्रियविषय (रूप, स्वाद, गन्ध, ध्वनि तथा स्पर्श) अपने स्वभाव को, अन्य इन्द्रियों के स्वभाव को या उनके नियन्ताओं के स्वभाव को नहीं जान पाते हैं। किन्तु जीव अपने आध्यात्मिक स्वभाव के कारण अपने शरीर, प्राणवायु, इन्द्रियों, तत्त्वों तथा इन्द्रियविषयों को जान सकता है और वह तीन गुणों को भी, जो उनके मूल में होते हैं, जान सकता है। इतने पर भी, यद्यपि जीव उनसे पूर्णतया भिन्न होता है, किन्तु वह परम पुरुष को, जो सर्वज्ञ तथा असीम है, देख पाने में अक्षम रहता है। इसलिए मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।(६.४.२५)

यदोपरामो मनसो नामरूप- रूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात् ।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥ २६ ॥

जब मनुष्य की चेतना स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक जगत के कल्मष से पूरी तरह शुद्ध हो जाती है और कार्य करने तथा स्वप्न देखने की अवस्थाओं से विचलित नहीं होती तथा जब मन सुषुप्ति अर्थात् गहरी नीद में लीन नहीं होता तो वह समाधि के पद को प्राप्त होता है। तब उसकी भौतिक दृष्टि तथा मन की स्मृतियाँ, जो नामों तथा रूपों को प्रकट करती हैं, विनष्ट हो जाती हैं। केवल ऐसी ही समाधि में भगवान् प्रकट होते हैं। अत: हम उन भगवान् को नमस्कार करते हैं, जो उस अकलुषित दिव्य अवस्था में देखे जाते हैं।(६.४.२६)

मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ।
वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥ २७ ॥
स वै ममाशेषविशेषमाया- निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
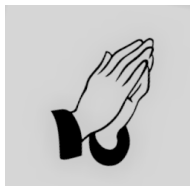
स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥

जिस तरह कर्मकाण्ड तथा यज्ञ करने में निपुण प्रकांड विद्वान ब्राह्मण पन्द्रह सामिधेनी मंत्रों का उच्चारण करके काष्ठ के भीतर सुप्त अग्नि को बाहर निकाल सकते हैं और इस तरह वैदिक मंत्रों की दक्षता को सिद्ध करते हैं, उसी तरह जो लोग कृष्णभावनामृत में वस्तुतः बढ़े-चढ़े होते हैं—दूसरे शब्दों में, जो कृष्णभावनाभावित होते हैं—वे परमात्मा को ढूँढ सकते हैं, जो अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा हृदय के भीतर स्थित रहते हैं। हृदय प्रकृति के तीनों गुणों से तथा नौ भौतिक तत्त्वों (प्रकृति, कुल भौतिक शक्ति, अहंकार, मन तथा इन्द्रिय तृप्ति के पाँचों विषय) एवं पाँच भौतिक तत्त्वों तथा दस इन्द्रियों द्वारा आच्छादित रहता है। ये सत्ताईस तत्त्व मिलकर भगवान् की बहिरंगा शक्ति का निर्माण करते हैं। बड़े बड़े योगी भगवान् का ध्यान करते हैं, जो परमात्मा रूप में हृदय के भीतर स्थित हैं। वह परमात्मा मुझ पर प्रसन्न हों। जब कोई भौतिक जीवन की असंख्य विविधताओं से मुक्ति के लिए उत्सुक होता है, तो परमात्मा का साक्षात्कार होता है। वस्तुतः उसे ऐसी मुक्ति तब मिलती है जब वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लग जाता है और अपनी सेवा प्रवृत्ति के कारण भगवान् का साक्षात्कार करता है। भगवान् को उन अनेक आध्यात्मिक नामों से सम्बोधित किया जा सकता है, जो भौतिक इन्द्रियों के लिए अकल्पनीय हैं। वे भगवान् मुझ पर कब प्रसन्न होंगे?(६.४.२७-२८)

यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाक्षभिर्वा मनसोत यस्य ।
मा भूत् स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत् स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥ २९ ॥

भौतिक ध्वनियों द्वारा व्यक्त, भौतिक बुद्धि द्वारा सुनिश्चित तथा भौतिक इन्द्रियों द्वारा अनुभव की गई अथवा भौतिक मन के भीतर गढ़ी गई कोई भी वस्तु भौतिक प्रकृति के गुणों के प्रभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं होती, इसलिए भगवान् के असली स्वभाव से उसका किसी तरह का संबंध नहीं होता। परमेश्वर इस भौतिक जगत की सृष्टि के परे हैं, क्योंकि वे भौतिक गुणों तथा सृष्टि के स्रोत हैं। सभी कारणों के कारण होते हुए, वे सृष्टि के पूर्व तथा सृष्टि के पश्चात् विद्यमान रहते हैं। मैं उन्हें सादर प्रणाम करना चाहता हूँ।(६.४.२९)

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै यद् यो यथा कुरुते कार्यते च ।
परावरेषां परमं प्राक्प्रसिद्धं तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥ ३० ॥

परब्रह्म कृष्ण प्रत्येक वस्तु के परम आश्रय तथा उद्गम हैं। हर कार्य उन्हीं के द्वारा किया जाता है, हर वस्तु उन्हीं की है और हर वस्तु उन्हीं को अर्पित की जाती है। वे ही परम लक्ष्य हैं और चाहे वे स्वयं कार्य करते हों या अन्यों से कराते हों, वे परम कर्ता हैं। वैसे उच्च तथा निम्न अनेक कारण हैं, किन्तु समस्त कारणों के कारण होने से वे परब्रह्म कहलाते हैं, जो समस्त कार्यकलापों के पहले से विद्यमान थे। वे अद्वितीय हैं और उनका कोई अन्य कारण नहीं है। मैं उनको सादर प्रणाम करता हूँ।(६.४.३०)

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥ ३१ ॥

मैं उन सर्वव्यापक भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो अनन्त दिव्य गुणों से युक्त हैं। वे विभिन्न मतों का प्रसार करने वाले समस्त दार्शनिकों के हृदय के भीतर से कार्य करते हुए उनसे उनकी ही आत्मा को भुलवाते हैं, कभी उनमें परस्पर मतैक्य कराते हैं, तो कभी मत भिन्नता कराते हैं। इस तरह वे इस भौतिक जगत में ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं जिसमें वे किसी भी दार्शनिक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।(६.४.३१)
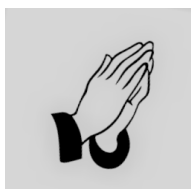
अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयो- रेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मणोः ।
अवेक्षितं किञ्चन योगसांख्ययोः समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥ ३२ ॥

संसार मे दो वर्ग हैं—आस्तिक तथा नास्तिक। परमात्मा को मानने वाला आस्तिक सम्पूर्ण योग में आध्यात्मिक कारण को पाता है। किन्तु भौतिक तत्त्वों का मात्र विश्लेषण करने वाला सांख्यधर्मी निर्विशेषवाद के निष्कर्ष को प्राप्त होता है और परम कारण को, चाहे वह भगवान् हो, परमात्मा हो या ब्रह्म ही क्यों न हो, स्वीकार नहीं करता। उल्टे, वह भौतिक प्रकृति के व्यर्थ बाह्य कार्यों में व्यस्त रहता है। किन्तु अन्ततोगत्वा दोनों वर्ग एक परम सत्य की स्थापना करते हैं, क्योंकि विरोधी कथन करते हुए भी उनका लक्ष्य एक ही परम कारण होता है। वे दोनों ही जिस एक परब्रह्म के पास पहुँचते हैं उन्हें मैं सादर नमस्कार करता हूँ।(६.४.३२)

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूल- मनामरूपो भगवाननन्तः ।
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभि- र्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥ ३३ ॥

पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् जो कि अचिन्त्य रूप से ऐश्वर्यवान् हैं, जो सारे भौतिक नामों, रूपों तथा लीलाओं से रहित हैं तथा जो सर्वव्यापक हैं, उन भक्तों पर विशेषरूप से कृपालु रहते हैं, जो उनके चरणकमलों की पूजा करते हैं। इस तरह वे विभिन्न लीलाओं सहित दिव्य रूपों तथा नामों को प्रकट करते हैं। ऐसे भगवान्, जो सच्चिदानन्द विग्रह हैं, मुझ पर कृपालु हों।(६.४.३३)

यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ।
यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतां मनोरथम् ॥ ३४ ॥

जिस तरह वायु भौतिक तत्त्वों के विविध गुण यथा फूल की गंध या वायु में धूल के मिश्रण से उत्पन्न विभिन्न रंग अपने साथ ले जाती है, उसी तरह भगवान् मनुष्य की इच्छाओं के अनुसार पूजा की निम्नतर प्रणालियों के माध्यम से प्रकट होते हैं, यद्यपि वे देवताओं के रूप में प्रकट होते हैं, अपने आदि रूप में नहीं। तो इन अन्य रूपों का क्या लाभ है ? ऐसे आदि भगवान् मेरी इच्छाएँ परिपूर्ण करें।(६.४.३४)

36. वृत्र भयाद देवानाम भगवत स्तुतिः

श्रीदेवा ऊचुः
वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ।
हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥ २१ ॥

देवताओं ने कहा—तीनों लोकों की सृष्टि पंचतत्त्वों—क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर—से हुई हैं, जिनको ब्रह्मा आदि विभिन्न देवता अपने वश में रखते हैं। हम काल से अत्यन्त भयभीत है कि वह हमारे अस्तित्व का अन्त कर देगा, इसलिए वह जैसा चाहता है हम वैसा कार्य करके उसको अपनी भेंट चढ़ाते हैं। किन्तु काल श्रीभगवान् से स्वयं डरता है। अत: हम उसी एकमात्र परमेश्वर की आराधना करें जो हमारी पूरी तरह से रक्षा कर सकता है।(६.९.२१)

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥ २२ ॥

भगवान् समस्त सांसारिक कल्पना से रहित और सदैव विस्मयविहीन हैं, वे सदैव प्रसन्नचित्त एवं अपनी स्वरूप-सिद्धि से परम संतुष्ट रहने वाले हैं। उनकी कोई सांसारिक उपाधि नहीं होती, अत: वे स्थिर एवं विरक्त रहते हैं। वही पूर्ण

पुरूषोत्तम भगवान् सबों के एकमात्र आश्रय हैं। अतः जो मनुष्य किसी अन्य से अपनी रक्षा की कामना करता है, वह अवश्य ही बड़ा मूर्ख है और कुत्तों की पूँछ पकड़ कर समुद्र को पार करना चाहता है।(६.९.२२)

यस्योरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाबध्य ततार दुर्गम् ।
स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद् दुरन्तात् त्राताश्रितान् वारिचरोऽपि नूनम् ॥ २३ ॥

पहले राजा सत्यव्रत नामक मनु ने मत्स्य अवतार के सींग में समग्र ब्रह्माण्ड रूपी छोटी नौका को बाँधकर आत्मरक्षा की थी। उनकी कृपा से मनु ने बाढ़ के महान् संकट से अपने को बचाया था। वे ही मत्स्यावतार त्वष्टा के पुत्र से उत्पन्न इस गम्भीर संकट से हमारी रक्षा करें।(६.९.२३)

पुरा स्वयम्भूरपि संयमाम्भ- स्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ।
एकोऽरविन्दात् पतितस्ततार तस्माद् भयाद् येन स नोऽस्तु पारः ॥ २४ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रचण्ड वायु से बाढ़ के जल में भयानक लहरें उठने लगीं। इनसे ऐसा भयावना शोर हुआ कि ब्रह्माजी अपने कमल–आसन से प्रलय जल में प्रायः गिर ही पड़े, किन्तु भगवान् की सहायता से वे बच गये। उसी प्रकार हम भी भगवान् से इस भयावह स्थिति से अपनी रक्षा की आशा करते हैं।(६.९.२४)

य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ।
वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिङ्गं पृथगीशमानिनः ॥ २५ ॥

पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् जिन्होंने अपनी बहिरंगा शक्ति से हमारी सृष्टि की और जिनकी कृपा से हम इस विश्व की सृष्टि का विस्तार करते हैं, वे निरन्तर हमारे समक्ष परमात्मा रूप में विद्यमान हैं, किन्तु हम उनके रूप को नहीं देख पाते। हम इसीलिए देखने में असमर्थ हैं, क्योंकि हम सभी अपने आपको पृथक् तथा स्वतंत्र ईश्वर के रूप में मानते हैं।(६.९.२५)

यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान् देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ।
कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वात्मसात् पाति युगे युगे च ॥ २६ ॥
तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा ॥ २७ ॥

पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् अपनी अचिन्त्य अन्तरंगा शक्ति से अनेक दिव्य शरीरों में विस्तार करते हैं, यथा देवताओं की शक्ति के अवतार वामनदेव, ऋषियों के अवतार परशुराम, पशुओं के अवतार नरसिंह देव एवं वराह और जलचरों के अवतार मत्स्य तथा कूर्म। वे सभी प्रकार की जीवात्माओं के बीच विभिन्न दिव्य देह धारण करते हैं और मनुष्यों के बीच विशेष रूप से भगवान् कृष्ण तथा राम के रुप में प्रकट होते हैं। अपनी अहैतुकी कृपा से वे असुरों द्वारा सदा सताये गये देवताओं की रक्षा करते हैं। वे समस्त जीवात्माओं के पूज्य श्रीविग्रह हैं। वे परम कारण हैं और स्त्री तथा पुरुष की सृजन शक्तियों के रूप में प्रकट होते हैं। यद्यपि वे इस ब्रह्माण्ड से पृथक् हैं, वे विराट रूप में विद्यमान रहते हैं। अतः अपनीइस भयभीत अवस्था में हमें चाहिए कि उनकी शरण ग्रहण करें क्योंकि हमें विश्वास है कि परमात्मा हमें अपना संरक्षण प्रदान करेंगे।(६.९.२६–२७)

37. भगवद आविर्भावे तत-दर्सनेन देवानाम पुनः स्तुतिः

श्रीदेवा ऊचुः

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ।
नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥ ३१ ॥

देवताओं ने कहा—हे भगवन्! आप यज्ञ फल को देने में समर्थ हैं। आप ही वह काल हैं, जो इन फलों को कालान्तर में नष्ट कर देता है। आप असुरों को मारने के लिए चक्र को चलाते हैं। हे अनेक नामधारण करनेवाले भगवान्! हम लोग आपको सादर नमस्कार करते हैं।(६.९.३१)

यत् ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ।
नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥ ३२ ॥

हे परम नियामक! आप तीनों गन्तव्यों [स्वर्ग लोक में पहुँचना, मनुष्य के रूप में जन्म तथा नरक में यातना] को वश में रखने वाले हैं, फिर भी आपका परम धाम वैकुण्ठलोक है। चूँकि आपके द्वारा इस दृश्य जगत की उत्पत्ति के बाद हम प्रकट हुए हैं, अतः हम आपके कार्यकलापों को समझने में असमर्थ हैं। अतः हमारे पास आपको अर्पित करने के लिए नमस्कार करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।(६.९.३२)

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन् नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्घाटिततमःकपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥ ३३ ॥

हे भगवन्, हे नारायण, हे वासुदेव, हे आदि पुरुष, परम अनुभव, साक्षात् मंगल! हे परम वरदान स्वरूप अत्यन्त कृपालु तथा अपरिवर्तनीय! हे दृश्य जगत के आधार, हे समस्त लोकों तथा प्रत्येक पदार्थ के स्वामी तथा लक्ष्मी देवी के पति! आपका साक्षात्कार श्रेष्ठ संन्यासी ही कर पाते हैं, जो भक्तियोग में पूर्णतया समाधिमग्न होकर सारे विश्व में कृष्णभावनामृत का उपदेश देते हैं। वे अपने ध्यान को आप में ही केन्द्रीभूत रखते हैं, अतः अपने शुद्ध अन्तःकरण में आपके स्वरूप को ग्रहण करते हैं। जब उनके हृदयों का अंधकार पूर्णतया हट जाता है और आपका साक्षात्कार होता है तब उन्हें आपके दिव्य स्वरूप का दिव्य आनन्द प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्तियों के सिवाय और कोई आप का अनुभव नहीं कर पाता, अतः हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।(६.९.३३)

दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥ ३४ ॥

हे भगवन्! आपको किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं है। भौतिक शरीर से रहित होने पर भी आपको हमारे सहयोग की अपेक्षा नहीं रहती। चूँकि आप इस दृश्य जगत के कारण हैं और अपरिवर्तित रूप में ही इसके भौतिक अवयवों की पूर्ति करते हैं, अतः आप स्वतः इसकी सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। तो भी भौतिक कार्यों में व्यस्त प्रतीत होते हुए भी आप समस्त भौतिक गुणों से परे हैं। अतः आपके दिव्य कार्य कलापों को समझ पाना कठिन है।(६.९.३४)

अथ तत्र भवान् किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥ ३५ ॥
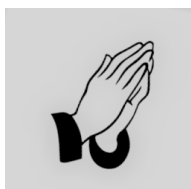
ये ही हमारी जिज्ञासाएँ हैं। सामान्य बद्धजीव भौतिक नियमों के अधीन है और उसे अपने कर्मों का फल मिलता है। क्या आप भौतिक गुणों से उत्पन्न शरीर में सामान्य मनुष्यों की भाँति इस संसार में उपस्थित रहते हैं? क्या आप काल, पूर्व कर्म आदि के वशीभूत होकर अच्छे या बुरे कर्मों को भोगते हैं? अथवा, इसके विपरीत क्या आप ऐसे उदासीन साक्षी के रूप में यहाँ उपस्थित हैं, जो आत्मनिर्भर, समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित तथा आध्यात्मिक शक्ति से सदैव परिपूर्ण रहता है? हम निश्चित रूप से आपकी वास्तविक स्थिति को नहीं समझ सकते।(६.९.३५)

न हि विरोध उभयं भगवत्यपरिमितगुणगण ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्ये ऽर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरणाश्रयदुरवग्र-हवादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को न्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥ ३६ ॥

हे भगवन्! सभी विरोधों का आप में तिरोधान होता है। हे ईश्वर! चूँकि आप परम पुरुष, अनन्त दिव्य गुणों के आगार, परम नियन्ता हैं, अतः आपकी असीम महिमा बद्धजीवों की कल्पना के परे है। अनेक सिद्धान्तवादी बिना जाने कि वास्तव में सच क्या है, सत्य तथा मिथ्या के विषय में तर्क करते हैं। उनके तर्क झूठे होते हैं और फैसले अनिर्णीत, क्योंकि उनके पास आपको जानने का कोई वैध प्रमाण नहीं है। चूँकि उनके मन धर्म ग्रंथों के झूठे निष्कर्षों से विक्षुब्ध रहते हैं, अतः वे यह नहीं समझ पाते कि सत्य क्या है। यही नहीं, सहीसही निष्कर्ष प्राप्त करते समय उनकी उत्कण्ठा दूषित रहती है, जिससे उनके सिद्धान्त आपका वर्णन करने में असमर्थ रहते हैं, क्योंकि आप उनकी भौतिक बुद्धि से परे हैं। आप अद्वितीय हैं, अतः आप में करणीय तथा अकरणीय, सुख तथा दुख जैसे विरोध नहीं हैं। आपकी उस शक्ति के द्वारा आपके लिए क्या असम्भव है? आपकी स्वाभाविक स्थिति द्वैत से रहित है, अतः आप अपनी शक्ति के प्रभाव से सब कुछ कर सकते हैं।(६.९.३६)

समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम् ॥ ३७ ॥

मोहग्रस्त पुरुष रस्सी को सर्प मान बैठता है, अतः उसे रस्सी भय उत्पन्न करती है, किन्तु समुचित बुद्धि वाले मनुष्य में रस्सी ऐसा नहीं कर पाती क्योंकि वह इसे केवल रस्सी ही जानता है। इसी प्रकार सबों के हृदयों में उनकी बुद्धि के ही अनुसार परमात्मा–स्वरूप आप भय या निर्भीकता का भाव उत्पन्न करने वाले हैं, किन्तु आप स्वयं अद्वैत हैं।(६.९.३७)

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात् सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥ ३८ ॥

विचार–विमर्श से यह देखा जा सकता है कि परमात्मा यद्यपि विभिन्न प्रकार से प्रकट होते हैं, किन्तु प्रत्येक वस्तु के मूल तत्त्व वे ही हैं। सम्पूर्ण भौतिक शक्ति इस संसार का कारण है, किन्तु यह शक्ति उन्हीं से उद्भूत है, अतः वे ही समस्त कारणों के कारण हैं और बुद्धि तथा इन्द्रियों के प्रकाशक हैं। वे प्रत्येक वस्तु में परमात्मा रूप में देखे जाते हैं। उनके बिना प्रत्येक वस्तु मृत हो जायेगी। परमात्मा रूप में आप परम नियन्ता ही एकमात्र शेष बचे हैं।(६.९.३८)

अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृत-मनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥३९॥

अतः हे मधुसूदन! जिन्होंने आपकी महिमा के समुद्र की एक भी अमृतमयी बूँद को चख लिया है, उनके मन में निरन्तर आनन्द की धारा प्रवाहित होती रहती है। ऐसे महात्मा भक्त दृश्य तथा श्रवणेन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले तथाकथित भौतिक सुख की झलक को भूल जाते हैं। ऐसे भक्त समस्त इच्छाओं से मुक्त होकर सभी जीवात्माओं के वास्तविक
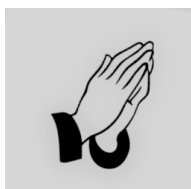
मित्र होते हैं। वे अपने मन को आप में समर्पित करके दिव्य आनन्द उठाते हुए जीवन के असली उद्देश्य को प्राप्त करने में कुशल होते हैं। हे भगवन्! आप ऐसे भक्तों के, जिन्हें इस भौतिक जगत में कभी वापस नहीं आना पड़ता, प्रिय मित्र एवं आत्मा हैं। भला वे आपकी भक्ति को किस प्रकार त्याग सकते हैं ?(६.९.३९)

त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमि-श्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥ ४० ॥

हे भगवन्, हे साक्षात् त्रिलोकी, तीनों लोकों के जनक! हे वामन अवतार के रूप में तीनों लोकों के पराक्रम! हे नृसिंहदेव के त्रि-नेत्र रूप, हे तीनों लोकों में परम सुन्दर पुरुष! प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक प्राणी जिसमें मनुष्य तथा दैत्य और दानव भी सम्मिलित हैं, आपके ही शक्ति के अंश हैं। हे परम शक्तिमान! जब-जब असुर शक्तिशाली हुए हैं तब-तब आप उन्हें दण्ड देने के लिए विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट हुए हैं। आप भगवान् वामनदेव, राम और कृष्ण के रूप में प्रकट हुए हैं। कभी आप पशु के रूप में प्रकट होते हैं यथा भगवान् वराह, तो कभी मिश्रित अवतार के रूप में यथा भगवान् नृसिंहदेव तथा भगवान् हयग्रीव और कभी जलचर रूप में यथा भगवान् मत्स्य तथा भगवान् कूर्म। आपने ऐसे अनेक रूप धारण करके सदैव असुरों तथा दानवों को दण्ड दिया है। अत: हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप यदि आवश्यक समझें तो महा असुर वृत्रासुर को मारने के लिए आज किसी अन्य अवतार के रूप में प्रकट हों।(६.९.४०)

अस्माकं तावकानां तततत नतानां हरे तव चरणनलिनयुगलध्यानानु-बद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्गविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जितविशदरुचिर-शिशिरस्मितावलोकेन विगलितम धुरमुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसिशमयितुम् ॥ ४१ ॥

हे परम रक्षक, हे पितामह, हे परम पवित्र, हे परमेश्वर! हम सभी आपके चरणकमलों पर समर्पित हैं। दरअसल, हमारे मन ध्यान में प्रेम-पाश द्वारा आपके चरणाविन्द से बँधे हुए हैं। अब आप अपना अवतार-रूप प्रकट कीजिये। हमें आप अपना शाश्वत दास तथा भक्त मानकर हम पर प्रसन्न हों और हमारे ऊपर दया करें। आप अपनी प्रेमपूर्ण चितवन, शीतल तथा दयापूर्ण मनमोहक हँसी तथा सुन्दर मुख से झरने वाले अमृत शब्दों से हम सबों की उस चिन्ता को दूर करें जो वृत्रासुर के कारण उत्पन्न हुई है और सदैव हमारे हृदयों को कष्ट देती है।(६.९.४१)

अथ भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायावि-नोदस्यसकलजीवनिकाया नामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयानुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कि यानिह वार्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद् विस्फुलिङ्गादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥ ४२ ॥

हे भगवान्! जिस प्रकार अग्नि की छोटी-छोटी चिनगारियाँ पूर्ण (आदि) अग्नि का कार्य करने में असमर्थ हैं, वैसे ही आपकी चिनगारी रूप हम सभी अपने जीवन की आवश्यकता बता पाने में अक्षम हैं। आप पूर्ण ब्रह्म हैं, अत: हमें आपको बताने की क्या आवश्यकता? आप सब कुछ जानने वाले हैं क्योंकि आप दृश्य जगत के आदि कारण, इसके पालक तथा सम्पूर्ण सृष्टि के संहर्ता हैं। आप अपनी दिव्य तथा भौतिक शक्तियों से लीलाएँ करते रहते हैं क्योंकि आप ही इन समस्त शक्तियों के नियामक हैं। आप इन विभिन्न शक्तियों के नियामक हैं। आप सभी जीवों के भीतर दृश्य सृष्टि में और उस से परे भी रहते हैं। आप अन्त:करणों में परब्रह्म के रुप में और बाह्यत: भौतिक सृष्टि के अवयवों के रूप में स्थित हैं। अत: यद्यपि आप विभिन्न अवस्थाओं, विभिन्न कालों तथा स्थानों और विभिन्न देहों में प्रकट होते रहते हैं, तो भी हे भगवन्! आप ही समस्त कारणों के आदि कारण हैं। वास्तव में आप ही मूल तत्त्व हैं। आप समस्त
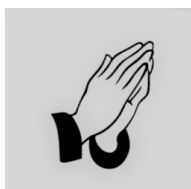
गतिविधियों के साक्षी हैं, किन्तु आकाश के समान महान् होने के कारण किसी के द्वारा स्पृश्य नहीं हैं। आप परब्रह्म तथा परमात्मा के रूप में प्रत्येक वस्तु के साक्षी हैं। हे भगवान्! आपसे कुछ भी छिपा नहीं है।(६.९.४२)

अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशत-पलाशच्छायां विविधवृजिनसंसार परिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनो-पसादिताः ॥ ४३ ॥

हे भगवान्! आप सर्वज्ञाता हैं, अत: आप अच्छी तरह जानते हैं कि हम आपके चरणकमलों की शरण में क्यों आये हैं, जिनकी छाया समस्त भौतिक अशान्तियों से छुटकारा दिलाने वाली है। चूँकि आप परम गुरु हैं और सब कुछ जानते हैं, अत: हमने आदेश प्राप्त करने के लिए आपके चरणकमलों का आश्रय लिया है। कृपया हमारे वर्तमान दुखों को दूर करके हमें शरण दीजिये। आपके चरणकमल ही पूर्ण समर्पित भक्त के एकमात्र आश्रय हैं और इस भौतिक जगत के संतापों को शमित करने के एकमात्र साधन हैं।(६.९.४३)

अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ।
ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥ ४४ ॥

अत: हे परम नियन्ता, हे भगवान् श्रीकृष्ण! त्वष्टा के पुत्र इस घातक असुर वृत्रासुर का संहार कीजिये। जिसने हमारे समस्त शास्त्रास्त्र, युद्ध की सारी सामग्री तथा हमारे बल और तेज को निगल रखा है।(६.९.४४)

हंसाय दहनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ।
सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्त- वन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥ ४५ ॥

हे भगवान्! हे परम शुद्ध! आप सबों के अन्त:स्थल में रहते हैं और बद्धजीवों की समस्त आकांक्षाओं तथा गतिविधियों का निरीक्षण करते हैं। श्रीकृष्ण के रूप में विख्यात हे भगवान्! आपका यश अत्यन्त प्रकाशमान है। आपका आदि नहीं है क्योंकि आप प्रत्येक वस्तु के उद्‌गम हैं। शुद्ध भक्त इससे परिचित हैं क्योंकि आप शुद्ध तथा सत्यनिष्ठ के लिए सुगम हैं। जब करोड़ों वर्षों तक भौतिक जगत में भटकने के बाद बद्धात्माएँ आपके चरणकमलों पर मुक्त होकर शरण पाती हैं, तो उन्हें जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। अत: हे भगवान्! हम आपके चरणारविन्द को सादर नमस्कार करते हैं।(६.९.४५)

38. श्री चित्रकेतुकृत श्री संकर्षण स्तवः

चित्रकेतुरुवाच
अजित जितः सममतिभिः साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ।
विजितास्तेऽपि च भजता- मकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ॥ ३४ ॥

चित्रकेतु ने कहा—हे अजेय भगवान्! यद्यपि आप को कोई जीत नहीं सकता, किन्तु उन भक्तों के द्वारा अवश्य जीत लिये जाते हैं जिनका अपने मन तथा इन्द्रियों पर संयम है। वे आपको इसलिए वश में रख पाते हैं क्योंकि आप उन भक्तों पर अकारण दयालु हैं, जो आपसे किसी प्रकार के लाभ की कामना नहीं करते। निस्सन्देह, आप उन्हें अपने आपको प्रदान कर देते हैं; इसलिए अपने भक्तों पर आपका भी पूरा नियंत्रण रहता है।(६.१६.३४)

तव विभवः खलु भगवन् जगदुदयस्थितिलयादीनि ।
विश्वसृजस्तेंऽशांशा- स्तत्र मृषा स्पर्धन्ति पृथगभिमत्या ॥ ३५ ॥

हे ईश्वर! यह दृश्य जगत तथा इसकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार—ये सभी आपके ऐश्वर्य हैं। चूँकि ब्रह्मा तथा अन्य कर्ता (निर्माता) आपके अंश के भी क्षुद्र अंश हैं, अत: सृष्टि करने की उनकी आंशिक शक्ति उन्हें ईश्वर नहीं बना सकती। तो भी अपने को पृथक् ईश्वर मान बैठने की चेतना उनके अहंकार मात्र की द्योतक है। यह वैध नहीं है।(६.१६.३५)

परमाणुपरममहतो- स्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः ।
आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यद् ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥ ३६ ॥

आप इस दृश्य जगत के नन्हें से नन्हें कण-परमाणु से लेकर विराट ब्रह्माण्डों तथा समस्त भौतिक शक्ति तक की प्रत्येक वस्तु के आदि, मध्य तथा अन्त में विद्यमान हैं। फिर भी आप नित्य हैं, जिसका न कोई आदि है, न अन्त या मध्य। आप इन तीनों स्थितियों में विद्यमान देखे जाते हैं; इस तरह आप अटल हैं। जब इस दृश्य जगत का अस्तित्व नहीं रहता तो आप आदि शक्ति के रूप में विद्यमान रहते हैं।(६.१६.३६)

क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैरण्डकोशः ।
यत्र पतत्यणुकल्पः सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥ ३७ ॥

प्रत्येक ब्रह्माण्ड सात आवरणों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सकल भौतिक शक्ति तथा अहंकार—से घिरा है जिनमें से प्रत्येक अपने से पहले वाले से दस गुना बड़ा है। इस ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त भी असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, जो असीम और विशाल हैं और आपमें स्थित परमाणुओं की भाँति चक्कर लगाते रहते हैं। इसलिए आप अनन्त कहलाते हैं।(६.१६.३७)

विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ।
तेषामाशिष ईश तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥ ३८ ॥

हे भगवन्, हे परमेश्वर! इन्द्रियतृप्ति के भूखे तथा विभिन्न देवताओं की उपासना करने वाले अज्ञानी पुरुष नर-वेश में पशुओं के समान हैं। वे पाशविक वृत्ति के कारण आपकी उपासना न करके नगण्य देवताओं को, जो आपके यश की लघु चिनगारी के समान हैं, पूजते हैं। समस्त ब्रह्माण्ड के संहार के साथ ये देवता तथा इनसे प्राप्त आशीर्वाद उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार राजा की सत्ता छिन जाने पर राजकीय अधिकारी।(६.१६.३८)

कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ।
ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि ॥ ३९ ॥

हे परमेश्वर! यदि ऐश्वर्य द्वारा इन्द्रियतृप्ति पाने के इच्छुक व्यक्ति भी समस्त ज्ञान के स्रोत तथा भौतिक गुणों से परे आपकी उपासना करते हैं, तो उनका पुनर्जन्म नहीं होता जिस प्रकार भुने बीज से पौधे नहीं उत्पन्न होते। जीवात्माओं को जन्म तथा मृत्यु का चक्र भोगना पड़ता है क्योंकि वे भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध हैं परन्तु आप दिव्य हैं, अत: जो आपसे संगति करता है, वह भौतिक प्रकृति के बन्धन से छूट जाता है।(६.१६.३९)

जितमजित तदा भवता यदाह भागवतं धर्ममनवद्यम् ।
निष्किञ्चना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥ ४० ॥

हे अजित! जब आपने भागवत-धर्म कह सुनाया जो आप के चरणकमलों में शरण लेने के लिए अकलुषित धार्मिक प्रणाली थी, तो वह आपकी विजय थी। आत्मतुष्ट (आत्माराम) चतु:सन के समान निष्काम व्यक्ति, भौतिक कल्मष से मुक्त होने के लिए आपकी उपासना करते हैं। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि वे आपके चरणारविन्द की शरण प्राप्त करने के लिए भागवतधर्म को ग्रहण करते हैं।(६.१६.४०)
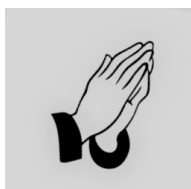
विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।
विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥ ४१ ॥

भागवतधर्म को छोड़कर शेष सभी धर्म पारम्परिक विरोधाभासों से पूर्ण हैं और कर्मफल की सकाम विचारधारा और 'तू और मैं' तथा 'तेरा और मेरा' जैसे भेदभावों से पूर्ण हैं। श्रीमद्‌भागवत के अनुयायियों में ऐसी चेतना नहीं रहती। वे कृष्णभावनामृत से पूरित रहते हैं और अपने को श्रीकृष्ण का और श्रीकृष्ण को अपना मानते हैं। कुछ निम्नकोटि की भी धार्मिक पद्धतियाँ हैं, जो शत्रुओं को मारने या योगशक्ति प्राप्त करने के लिए निर्मित हैं, किन्तु ये काम तथा द्वेष से पूर्ण होने के कारण अशुद्ध एवं नाशवान् हैं। द्वेषपूर्ण होने से वे अधर्म से पूर्ण हैं।(६.१६.४१)

कः क्षेमो निजपरयोः कियान् वार्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ।
स्वद्रोहात्तव कोपः परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥ ४२ ॥

ऐसा धर्म जिससे अपने तथा परायों में द्वेष उत्पन्न होता है किस प्रकार लाभप्रद हो सकता है? ऐसे धर्म का पालन करने से कौन सा कल्याण हो सकता है? इससे आखिर क्या मिलेगा? आत्म द्वेष के द्वारा अपने आपको तथा अन्यों को कष्ट पहुँचा कर मनुष्य आपके (भगवान् के) क्रोध का भाजन होता है और अधर्म करता है।(६.१६.४२)

न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ।
स्थिरचरसत्त्वकदम्बे- ष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥ ४३ ॥

हे भगवन्! जीवन के महदुद्देश्य से विचलित न होने वाले आपके दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य का वृत्तिपरक धर्म श्रीमद्‌भागवत तथा भगवद्‌गीता में उपदिष्ट होना है। जो मनुष्य आपके आदेशानुसार इस धर्म का पालन करते हैं, जड़ तथा चेतन समस्त जीवात्माओं को समान मानते हैं और किसी को उच्च तथा निम्न नहीं मानते हैं, वे आर्य कहलाते हैं। ऐसे आर्य आप की अर्थात् पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की उपासना करते हैं।(६.१६.४३)

न हि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ।
यन्नामसकृच्छ्रवणात् पुक्कशोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥ ४४ ॥

हे भगवन्! आपके दर्शनमात्र से किसी के लिए भी समस्त भौतिक कल्मषों से तुरन्त मुक्त हो जाना असंभव नहीं है। आपको प्रत्यक्ष देखने की बात तो एक ओर रही; आपके पवित्र नाम को एक बार सुन लेने से ही चण्डाल तक समस्त भौतिक कल्मष से विमुक्त हो जाते हैं। ऐसी दशा में आपके दर्शनमात्र से ऐसा कौन है, जो भौतिक कल्मष से मुक्त नहीं हो पायेगा?(६.१६.४४)

अथ भगवन् वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ।
सुरऋषिणा यत् कथितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥ ४५ ॥

अतः हे भगवन्! आपके दर्शन मात्र मेरे समस्त पापकर्मों के कल्मष एवं भौतिक आसक्ति तथा कामासक्त विषयों के फल, जिनसे मेरा मन तथा अन्तःस्थल पूरित था, सदासर्वदा के लिए धो दिये हैं। जो कुछ नारद मुनि ने भविष्यवाणी की है, वह अन्यथा नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में, नारद मुनि के द्वारा शिक्षित किये जाने के कारण ही मुझे आपका सान्निध्य प्राप्त हो सका है।

विदितमनन्त समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ।
विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥ ४६ ॥
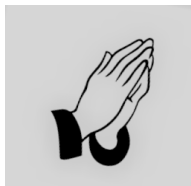
हे अनन्त भगवान्! इस भौतिक जगत में जीवात्मा जो भी करता है, वह आपको भलीभाँति विदित रहता है क्योंकि आप परमात्मा हैं। सूर्य की उपस्थिति में जुगनुओं के प्रकाश से कुछ भी उद्दिप्त नहीं होता? इसी प्रकार, चूँकि आप सब कुछ जानने वाले हैं, अत: आपकी उपस्थिति में मेरे बताने के लिए कुछ भी नहीं है।(६.१६.४६)

नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ।
दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥ ४७ ॥

हे भगवान्! आप ही इस दृश्य जगत के स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं, किन्तु घोर संसारी तथा भेदवादी जनों के पास वे नेत्र ही नहीं होते जिनसे वे आपको देख सकें। वे आपकी वास्तविक स्थिति को न समझ पाने के कारण इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि यह दृश्य-जगत आपके ऐश्वर्य से स्वतंत्र है। हे भगवान्! आप परम विशुद्ध हैं और सभी छहों ऐश्वर्यों से ओतप्रोत हैं। अत: मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(६.१६.४७)

यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति ।
भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥ ४८ ॥

हे भगवान्! आपकी चेष्टा से ही भगवान् ब्रह्मा, इन्द्र तथा दृश्य जगत के अन्य अधीक्षक अपने अपने कार्यों में निरत हो जाते हैं। हे ईश्वर! आपके द्वारा भौतिक शक्ति को देखे जाने पर ही इन्द्रियाँ देख पाती हैं। अनन्त भगवान् समस्त ब्रह्माण्डों को अपने सर पर सरसों के बीजों के समान धारण किये रहते हैं। हे सहस्र-फण वाले परम पुरुष! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(६.१६.४८)
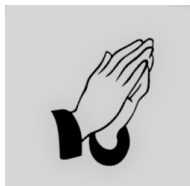
३९. वैतालिक किन्नरा विष्णु-पर्सदानाम स्तवः

श्रीब्रह्मोवाच

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान् गुणैः स्वलीलया सन्दधतेऽव्ययात्मने ॥ ४०॥

ब्रह्माजी ने प्रार्थना की: हे प्रभु, आप अनन्त हैं और आपकी शक्ति का कोई अन्त नहीं है। कोई भी आपके पराक्रम तथा अद्भुत प्रभाव का अनुमान नहीं लगा सकता, क्योंकि आपके कर्म माया द्वारा दूषित नहीं होते। आप भौतिक गुणों से सहज ही ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं लेकिन तो भी आप अव्यय बने रहते हैं। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(७.८.४०)

श्रीरुद्र उवाच

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४१ ॥

शिव जी ने कहा : कल्प का अन्त ही आपके क्रोध का समय होता है। अब जबकि यह नगण्य असुर हिरण्यकशिपु मारा जा चुका है, हे भक्तवत्सल प्रभु, कृपा करके उसके पुत्र प्रह्लाद महाराज की रक्षा करें जो आपके निकट पूर्ण शरणागत भक्त के रूप में खड़ा हुआ है।(७.८.४१)

श्रीइन्द्र उवाच

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं तद्गृहं प्रत्यबोधि ।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ।४२।

राजा इन्द्र ने कहा : हे परमेश्वर, आप हमारे उद्धारक तथा रक्षक हैं। आपने दैत्य से हमारे वास्तविक यज्ञ भाग जो वास्तव में आपके हैं लौटाये हैं। चूँकि असुरराज हिरण्यकशिपु अत्यन्त भयानक था, अत: आपके स्थायी निवास हमारे हृदय उसके द्वारा विजित हो चुके थे। अब आपकी उपस्थिति से हमारे हृदयों से निराशा तथा अंधकार दूर हो गये हैं। हे प्रभु, जो लोग आपकी सेवा में सदैव लगे रहते हैं उनके लिए सारा भौतिक ऐश्वर्य तुच्छ है, क्योंकि आपकी सेवा मोक्ष से भी बढ़कर है। वे जब मोक्ष की भी परवाह नहीं करते तो काम, अर्थ तथा धर्म के विषय में क्या कहा जाये ?(७.८.४२)

श्रीऋषय ऊचुः

त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्क्थ ।
तद् विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४३ ॥

सारे उपस्थित ऋषियों ने उनकी इस प्रकार स्तुति की: हे प्रभु, हे शरणागत पालक, हे आदि पुरुष, आपने हमें पहले जिस तपस्या की विधि का उपदेश दिया है, वह आपकी ही आध्यात्मिक शक्ति है। आप तपस्या से ही भौतिक जगत का सृजन करते हैं। यह तपस्या आपमें सुप्त रहती है। इस दैत्य ने अपने कार्यकलापों से इसी तपस्या को रोक सा रखा था, किन्तु अब हम लोगों की रक्षा करने के लिए आप जिस नृसिंह देव के रूप में प्रकट हुए हैं उससे तथा इस असुर को मारने से तपस्या की विधि का फिर से अनुमोदन हुआ है।(७.८.४३)

श्रीपितर ऊचुः

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजै- र्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत् तिलाम्बु ।
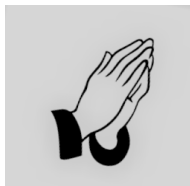
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद् य आर्च्छत् तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥४४॥

पितृलोक के वासियों ने प्रार्थना की: हम ब्रह्माण्ड के धार्मिक नियमों के पालनकर्ता भगवान् नृसिंह देव को सादर नमस्कार करते हैं। आपने उस असुर को मार डाला है, जो हमारे श्राद्ध के अवसर पर हमारे पुत्रों-पौत्रों द्वारा अर्पित बलि को छीनकर खा जाता था और तीर्थस्थलों पर अर्पित की जाने वाली तिलांजलि को पी जाता था। हे प्रभु, आपने इस असुर को मारकर अपने नाखूनों से इसके पेट को विदीर्ण करके उसमें से समस्त चुराई हुई सामग्री निकाल ली है। अतएव हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।(७.८.४४)

श्रीसिद्धा ऊचुः

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधु- रहार्षीद् योगतपोबलेन ।
नानादर्पं तं नखैर्विददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ ४५ ॥

सिद्धलोक के वासियों ने प्रार्थना की: हे भगवान् नृसिंह देव, हम लोग सिद्धलोक के निवासी होने के कारण अष्टांग योग में स्वत:सिद्ध होते हैं। तो भी हिरण्यकशिपु इतना धूर्त था कि उसने अपने बल तथा तपस्या से हमारी सारी शक्तियाँ छीन ली थीं। इस तरह वह अपने योग- बल के प्रति घमंडी हो गया था। अब आपके नखों से इस दुष्ट का वध हो जाने के कारण हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।(७.८.४५)

श्रीविद्याधरा ऊचुः

विद्यां पृथग्धारणयानुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।
स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ४६ ॥

विद्याधर के निवासियों ने प्रार्थना की: उस मूर्ख हिरण्यकशिपु ने विविध प्रकार के ध्यान के अनुसार प्रकट तथा अप्रकट होने की हमारी शक्ति पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, क्योंकि उसे अपनी श्रेष्ठ शारीरिक शक्ति तथा अन्यों को जीत लेने की सामर्थ्य का घमण्ड था। अब भगवान् ने उसका उसी तरह वध कर दिया है जैसे वह असुर कोई पशु हो। हम भगवान् नृसिंह देव के उस लीला रूप को सादर प्रणाम करते हैं।(७.८.४६)

श्रीनागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ।
तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥ ४७ ॥

नागलोक के वासियों ने कहा : अत्यन्त पापी हिरण्यकशिपु ने हम सबके फणों की मणियाँ तथा हम सबकी सुन्दर पत्नियाँ छीन ली थीं। अब चूँकि उसके वक्षस्थल को आपने अपने नाखूनों से विदीर्ण कर दिया है, अतएव आप हमारी पत्नियों की परम प्रसन्नता के कारण हैं। इस तरह हम सभी मिलकर आपको सादर नमस्कार करते हैं।(७.८.४७)

श्रीमनव ऊचुः

मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ।
भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥ ४८ ॥

समस्त मनुओं ने इस प्रकार प्रार्थना की: हे प्रभो, हम सारे मनु आपके आज्ञापालक के रूप में मानव समाज के लिए विधि प्रदान करते हैं किन्तु इस महान् असुर हिरण्यकशिपु की क्षणभंगुर श्रेष्ठता के कारण वर्णाश्रम धर्म पालन विषयक हमारे नियम नष्ट हो गये थे। हे स्वामी, अब आपके द्वारा इस महान् असुर का वध हो जाने से हम अपनी सहज स्थिति में हैं। कृपया अपने इन शाश्वत दासों को आज्ञा दें कि अब वे क्या करें।(७.८.४८)
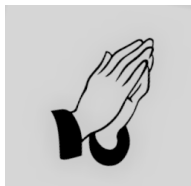
श्रीप्रजापतय ऊचुः
प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥ ४९ ॥

प्रजापतियों ने इस प्रकार स्तुति की: हे परमेश्वर, हे ब्रह्मा तथा शिव जी के भी पूज्य प्रभु, हम सारे प्रजापति आपके द्वारा दी गई आज्ञा के पालन के लिए उत्पन्न किये गये थे, किन्तु हिरण्यकशिपु ने हमें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करने से रोक दिया। अब यह असुर हमारे समक्ष मृत पड़ा है, जिसके वक्षस्थल को आपने विदीर्ण कर दिया है। अतएव हम आपको सादर नमस्कार करते हैं, क्योंकि इस शुद्ध सात्विक रूप में आपका यह अवतार समग्र ब्रह्माण्ड के कल्याण के निमित्त है।(७.८.४९)

श्रीगन्धर्वा ऊचुः
वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद् वीर्यबलौजसा कृताः ।
स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥ ५० ॥

गन्धर्वलोक के निवासियों ने प्रार्थना की: हे भगवान्, हम नाच तथा अभिनय में गायन द्वारा आपकी सेवा में लगे रहते थे, किन्तु इस हिरण्यकशिपु ने अपनी शारीरिक शक्ति तथा पराक्रम से हमें अपने अधीन बना लिया था। अब आपके द्वारा यह इस अधम दशा को प्राप्त हुआ है। भला हिरण्यकशिपु जैसे कुमार्गगामी के कार्यकलापों से हमें क्या लाभ हो सकता है ?(७.८.५०)

श्रीचारणा ऊचुः
हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ।
यदेष साधुहृच्छयस्त्वयासुरः समापितः ॥ ५१ ॥

चारणलोक के निवासियों ने कहा : हे प्रभु, आपने उस असुर हिरण्यकशिपु को विनष्ट कर दिया जो सारे निष्कपट पुरुषों के हृदयों में आतंक बना हुआ था। अब हमें शान्ति मिली है। हम सभी आपके उन चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, जो बद्धजीव को भौतिक कल्मष से मुक्ति दिलानेवाले हैं।(७.८.५१)

श्रीयक्षा ऊचुः
वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै- स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥ ५२ ॥

यक्षलोक के निवासियों ने प्रार्थना की: हे चौबीस तत्त्वों के नियामक, हम आपको भाने वाली सेवाएँ करने के कारण आपके सर्वश्रेष्ठ सेवक माने जाते हैं फिर भी दितिपुत्र हिरण्यकशिपु के आदेश पर हमसे पालकी ढोने का कार्य लिया जाता था। हे नृसिंह देव, आप यह जानते हैं कि इस असुर ने किस तरह सबों को कष्ट पहुँचाया है, किन्तु अब आपने इसका वध कर दिया है और इसका शरीर पंच तत्त्वों में मिल गया है।(७.८.५२)

श्रीकिम्पुरुषा ऊचुः
वयं किम्पुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ।
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५३ ॥

किम्पुरुषलोक के वासियों ने कहा : हम क्षुद्र जीव हैं और आप परम नियामक महापुरुष हैं। अतएव हम आपकी समुचित स्तुति कैसे कर सकते हैं ? जब भक्तों ने तंग आकर इस असुर का तिरस्कार कर दिया तो आपने इसका वध कर दिया।(७.८.५३)

श्रीवैतालिका ऊचुः
सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ।
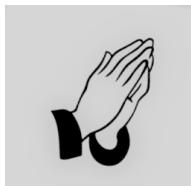
यस्तामनैषीद् वशमेष दुर्जनो द्विष्ट्या हतस्ते भगवन्यथामयः ॥ ५४ ॥

वैतालिकलोक के निवासियों ने कहा : हे प्रभु, सभाओं तथा यज्ञस्थलों में आपके निर्मल यश का गायन करने के कारण प्रत्येक व्यक्ति हमें आदर प्रदान करता था। किन्तु इस असुर ने हमारे उस पद को छीन लिया था। अब हमारा बड़ा भाग्य है कि आपने इस महान् असुर का उसी तरह वध कर दिया जिस प्रकार कोई भीषण रोग को अच्छा कर देता है।(७.८.५४)

श्रीकिन्नरा ऊचुः

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनानुकारिताः ।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥ ५५ ॥

किन्नरों ने कहा : हे परम नियन्ता, हम आपके सतत सेवक हैं, लेकिन आपकी सेवा में युक्त न होकर हम सभी इस असुर की बेगार में लगाये गये थे। अब आपने इस पापी का वध कर दिया है, अतएव हे नृसिंहदेव, हे स्वामी, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं। कृपा करके हमारे संरक्षक बने रहें।(७.८.५५)

श्रीविष्णुपार्षदा ऊचुः

अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्त- स्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥ ५६ ॥

विष्णु के वैकुण्ठलोक के पार्षदों ने यह प्रार्थना की: हे स्वामी, हे शरणदाता, आज हमने नृसिंहदेव के रूप में आपके अद्भुत रूप का दर्शन किया है, जो समस्त जगत में सौभाग्य लाने वाला है। हे भगवान्, हम यह समझते हैं कि हिरण्यकशिपु आपकी सेवा में रत रहने वाला जय ही था, किन्तु उसे ब्राह्मणों ने शाप दे दिया था जिससे उसे असुर का शरीर प्राप्त हुआ था। हम समझते हैं कि उसका मारा जाना उस पर आपकी विशेष कृपा है।(७.८.५६)

40. श्री प्रहलाद कृत श्री नृसिम्हा स्तवः

श्रीप्रहाद उवाच

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानगतयो वचसां प्रवाहैः ।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ ८ ॥

प्रह्लाद महाराज ने प्रार्थना की: असुर परिवार में जन्म लेने के कारण यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मैं भगवान् को प्रसन्न करने के लिए उपयुक्त प्रार्थना कर सकूँ ? आज तक ब्रह्मा इत्यादि सारे देवता तथा समस्त मुनिगण उत्तमोत्तम वाणी से भगवान् को प्रसन्न नहीं कर पाये, यद्यपि ये सारे व्यक्ति सतोगुणी एवं परम योग्य हैं, तो फिर मेरे विषय में क्या कहा जाये ? मैं तो बिल्कुल ही अयोग्य हूँ।(७.९.८)

मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौज- स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥ ९ ॥

प्रह्लाद महाराज ने आगे कहा : भले ही मनुष्य के पास सम्पत्ति, राजसी परिवार, सौन्दर्य, तपस्या, शिक्षा, दक्षता, कान्ति, प्रभाव, शारीरिक शक्ति, उद्यम, बुद्धि तथा योगशक्ति क्यों न हो, किन्तु मेरी समझ से इन सारी योग्यताओं से भी कोई व्यक्ति भगवान् को प्रसन्न नहीं कर सकता। किन्तु भक्ति से वह ऐसा कर सकता है। गजेन्द्र ने ऐसा किया और इस तरह भगवान् उससे प्रसन्न हो गये।(७.९.९)

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ- पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् ।

मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ- प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥ १० ॥

यदि किसी ब्राह्मण में बारहों योग्यताएँ (सनत्सुजात ग्रन्थ में उल्लिखित) हों किन्तु यदि वह भक्त नहीं है और भगवान् के चरणकमलों से विमुख है, तो वह उस चाण्डाल भक्त से भी अधम होता है, जिसने अपना सर्वस्व मन, वचन, कर्म, सम्पत्ति तथा जीवन भगवान् को अर्पित कर दिया है। ऐसा भक्त उस ब्राह्मण से श्रेष्ठ है, क्योंकि भक्त अपने सारे परिवार को पवित्र कर सकता है जब कि झूठी प्रतिष्ठा वाला तथाकथित ब्राह्मण अपने आप को आप भी शुद्ध नहीं कर पाता।(७.९.१०)

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥ ११॥

भगवान् सदैव आत्मतुष्ट रहने वाले हैं, अतएव जब उन्हें कोई भेंट अर्पित की जाती है, तो भगवत्कृपा से यह भेंट भक्त के लाभ के लिए ही होती है, क्योंकि भगवान् को किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि किसी का मुख सज्जित हो तो दर्पण में उसके मुख का प्रतिबिम्ब भी सज्जित दिखता है।(७.९.११)

तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ १२ ॥

अतएव यद्यपि मैंने असुरकुल में जन्म लिया है, तो भी निस्सन्देह, जहाँ तक मेरी बुद्धि जाती है मैं पूरे प्रयास से भगवान् की प्रार्थना करूँगा। जो भी व्यक्ति अज्ञान के कारण इस भौतिक जगत में प्रविष्ट होने को बाध्य हुआ है, वह भौतिक जीवन को पवित्र बना सकता है यदि वह भगवान् की प्रार्थना करे और उनके यश का श्रवण करे।(७.९.१२)

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥ १३ ॥

हे भगवान, ब्रह्मा आदि सारे देवता आपके निष्ठावान् दास हैं, क्योंकि वे दिव्य पद पर स्थित हैं। अत: वे हमारी (प्रह्लाद तथा उनके असुर पिता हिरण्यकशिपु की) तरह नहीं हैं। इस भयानक रूप में आपका प्राकट्य स्वान्त:सुख के लिए आपकी लीला है। ऐसा अवतार सदा ही ब्रह्माण्ड की रक्षा तथा सुधार (अभ्युदय) के लिए होता है।(७.९.१३)

तद् यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥१४॥

अतएव हे नृसिंहदेव भगवान्, आप अपना क्रोध अब त्याग दें, क्योंकि मेरा पिता महा असुर हिरण्यकशिपु मारा जा चुका है। चूँकि साधु पुरुष भी साँप या बिच्छू के मारे जाने पर प्रसन्न होते हैं, अतएव इस असुर की मृत्यु से सारे लोकों को परम सन्तोष हुआ है। अब वे अपने सुख के प्रति आश्वस्त हैं और भय से मुक्त होने के लिए आपके इस कल्याणप्रद अवतार का सदैव स्मरण करेंगे।(७.९.१४)

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य- जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेशरशङ्कुकर्णा- न्निर्हादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥१५ ॥

हे अजित भगवान्, मैं न तो आपके भयानक मुख तथा जीभ से, न ही सूर्य के समान चमकीली आँखों से या टेढ़ी भौहों से भयभीत हूँ। मैं आपके तेज नुकीले दाँतों से, आँतों की माला से, रक्त रंजित गर्दन के बालों से या बर्छे जैसे पैने कानों से भी नहीं डर रहा हूँ। न ही मैं आपके सिंहनाद से भयभीत हूँ जिससे हाथी भाग कर दूर चले जाते हैं। न मैं आपके नाखूनों से भयभीत हूँ जो आपके शत्रु को मारने के निमित्त हैं।(७.९.१५)
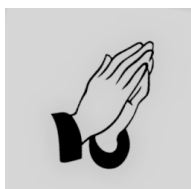
त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र- संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥ १६ ॥

हे पतितों पर सदय, परम शक्तिशाली दुर्जेय प्रभु, मैं अपने कर्मों के कारण असुरों की संगति में आ पड़ा हूँ, अतएव मैं इस संसार में अपनी जीवन दशा से अत्यधिक भयभीत हूँ। वह क्षण कब होगा जब आप मुझे उन चरणकमलों की शरण में बुला लेंगे जो बद्ध जीवन से मोक्ष के चरम लक्ष्य हैं ?(७.९.१६)

यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसंयोगजन्म- शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।
दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं भूमन्भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥१७ ॥

हे महान, हे परमेश्वर, प्रिय तथा अप्रिय परिस्थितियों के संयोग से तथा उनसे बिछुड़ने के कारण मनुष्य स्वर्ग या नरक लोकों में अत्यन्त शोचनीय स्थिति को प्राप्त होता है मानो संताप की अग्नि में जल रहा हो। यद्यपि इस दुखमय जीवन से निकलने की अनेक औषधियाँ हैं किन्तु भौतिक जगत में ये औषधियाँ दुखों से भी अधिक कष्टकारक हैं। अतएव मैं सोच रहा हूँ कि इसकी एकमात्र औषधि आपकी सेवा में संलग्न होना है। कृपया मुझे ऐसी सेवा का उपदेश दें।(७.९.१७)

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥ १८ ॥

हे भगवान् नृसिंहदेव, मुक्तात्माओं (हंसों) की संगति में आपकी दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहकर मैं प्रकृति के तीन गुणों के स्पर्श से पूर्णतः कल्मषहीन हो सकूँगा और अपने अत्यन्त प्रिय स्वामी आपकी महिमाओं का कीर्तन कर सकूँगा। मैं ब्रह्मा तथा उनकी शिष्य परम्परा के पदचिन्हों पर ठीक तरह से चलकर आपकी महिमाओं का कीर्तन करूँगा। इस प्रकार मैं अज्ञान के सागर को निश्चय ही पार कर सकूँगा।(७.९.१८)

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट- स्तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥१९ ॥

हे नृसिंहदेव, हे परमेश्वर, देहात्मबुद्धि के कारण आपके द्वारा उपेक्षित देहधारी जीव अपने कल्याण के लिए कुछ भी नहीं कर पाते। वे जो भी उपचार स्वीकार करते हैं, उन से यद्यपि कदाचित क्षणिक लाभ पहुँचता है, किन्तु वे स्थायी नहीं रह पाते। उदाहरणार्थ, माता तथा पिता अपने बालक की रक्षा नहीं कर पाते, वैद्य तथा दवा रोगी का कष्ट दूर नहीं कर पाते तथा समुद्र में कोई नाव डूबते हुए मनुष्य को नहीं बचा पाती।(७.९.१९)

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद् यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ।
भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥२०॥

हे प्रभु, इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति के गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों के अधीन है। सर्वोच्च व्यक्ति ब्रह्माजी से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक सारे प्राणी इन्हीं गुणों के वशीभूत हो कर कार्य करते हैं। अतएव इस जगत में सारे व्यक्ति आपकी शक्ति के वशीभूत हैं। वे जिस कारण से कर्म करते हैं, जिस स्थान में कर्म करते हैं, जिस काल में कर्म करते हैं, जिस पदार्थ के कारण कर्म करते हैं, जिस जीवन-लक्ष्य को उन्होंने अन्तिम मान रखा है तथा इस लक्ष्य को प्राप्त करने की जो विधि है—ये सभी आपकी शक्ति की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। निस्सन्देह, शक्ति तथा शक्तिमान के अभिन्न होते हैं, वे सब आपकी ही अभिव्यक्तियाँ हैं।(७.९.२०)

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ।
छन्दोमयं यदजयार्पितषोडशारं संसारचक्रमज कोऽतितरेत् त्वदन्यः ॥ २१ ॥

हे भगवान्, हे परम शाश्वत, आपने अपने स्वांश का विस्तार करके काल द्वारा क्षुब्ध होने वाली अपनी बहिरंगा शक्ति के द्वारा जीवों के सूक्ष्म शरीरों की सृष्टि की है। इस प्रकार मन जीव को अनन्त प्रकार की इच्छाओं में फाँस लेता है जिन्हें कर्मकाण्ड के वैदिक आदेशों तथा सोलह तत्त्वों के द्वारा पूरा किया जाना होता है। भला ऐसा कौन है, जो आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण किये बिना इस बन्धन से छूट सके ?(७.९.२१)

स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे निष्पीडचमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥ २२ ॥

हे प्रभु, हे महानतम, आपने सोलह अवयवों से इस भौतिक जगत की रचना की है, किन्तु आप उनके भौतिक गुणों से परे हैं। दूसरे शब्दों में, ये भौतिक गुण पूर्णतया आपके वश में हैं और आप कभी भी उनके द्वारा जीते नहीं जाते। अतएव काल तत्त्व आपका प्रतिनिधित्व करता है। हे प्रभु, हे महान्, आपको कोई नहीं जीत सकता किन्तु जहाँ तक मेरी बात है, मैं तो कालचक्र द्वारा पिसा जा रहा हूँ; अतएव मैं आपको पूर्ण आत्म-समर्पण करता हूँ। अब आप मुझे अपने पाद-पद्मों में संरक्षण प्रदान करें।(७.९.२२)

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना- मायुः श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रू- विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥२३ ॥

हे भगवान्, सामान्यतः लोग दीर्घ आयु, ऐश्वर्य तथा भोग के लिए उच्च लोकों में जाना चाहते हैं, किन्तु मैंने अपने पिता के कार्यकलापों से इन सबों को देख लिया है। जब मेरे पिता क्रुद्ध होते थे और देवताओं पर व्यंग्य हँसी हँसते थे तो वे उनकी भौहों की गतियों को देखने से ही तुरन्त विनष्ट हो जाते थे। तो भी मेरे इतने शक्तिशाली पिता अब एक क्षण में आपके द्वारा ध्वस्त कर दिये गये।(७.९.२३)

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोऽज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्च्यात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥२४ ॥

हे भगवन्, अब मुझे सांसारिक ऐश्वर्य, योगशक्ति, दीर्घायु तथा ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक के सारे जीवों द्वारा भोग्य अन्य भौतिक आनन्दों का पूरा-पूरा अनुभव है। आप शक्तिशाली काल के रूप में इन सबों को नष्ट कर देते हैं। अतः मैं अपने अनुभव के आधार पर इन सबों को नहीं लेना चाहता। हे भगवान्, मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे अपने शुद्ध भक्त के सम्पर्क में रखें और निष्ठावान् दास के रूप में उसकी सेवा करने दें।(७.९.२४)

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान् कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥२५ ॥

इस भौतिक जगत में प्रत्येक जीव कुछ न कुछ भावी सुख की कामना करता है, जो मरुस्थल में मृग-मरीचिका के समान है। भला मरुस्थल में जल कहाँ ? दूसरे शब्दों में, इस भौतिक जगत में सुख कहाँ ? जहाँ तक इस शरीर की बात है, इसका मूल्य ही क्या है ? यह विभिन्न रोगों का स्रोत मात्र है। तथाकथित दार्शनिक, विज्ञानी तथा राजनीतिज्ञ इसे भली-भाँति जानते हैं फिर भी वे क्षणिक सुख की आकांक्षा रखते हैं। सुख प्राप्त कर पाना अत्यन्त कठिन है लेकिन वे अपनी इन्द्रियों को वश में न रख पाने के कारण भौतिक जगत के तथाकथित सुख के पीछे दौते हैं और सही निष्कर्ष तक कभी नहीं पहुँच पाते।(७.९.२५)

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥२६॥
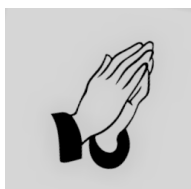
हे प्रभु, हे परमात्मा, कहाँ घोर नारकीय रजो तथा तमोगुणी परिवार में उत्पन्न हुआ मैं और कहाँ आपकी अहैतुकी कृपा जो ब्रह्माजी, शिव जी या लक्ष्मी जी को कभी प्राप्त नहीं हो पाई? आप कभी भी इनके सिरों पर अपना कमल जैसा हाथ नहीं रखते, किन्तु आपने मेरे सिर पर इसे रखा है।(७.९.२६)

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्या- ज्जन्तोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथापि।
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम्॥ २७॥

हे भगवान्, आप सामान्य जीवों की तरह मित्र तथा शत्रु एवं अनुकूल तथा प्रतिकूल के मध्य भेदभाव नहीं बरतते, क्योंकि आप में ऊँच-नीच की कोई भावना नहीं है। फिर भी आप सेवा के स्तर के अनुसार ही अपना आशीष प्रदान करते हैं ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कल्पवृक्ष इच्छाओं के अनुसार ही फल देता है और ऊँच-नीच में भेदभाव नहीं बरतता।(७.९.२७)

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात्।
कृत्वात्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम्॥२८॥

हे भगवान्, मैं एक-एक करके भौतिक इच्छाओं की संगति में आने से सामान्य लोगों का अनुगमन करते हुए सर्पों के अन्धे कुएँ में गिरता जा रहा था। किन्तु आपके दास नारद मुनि ने कृपा करके मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया और मुझे यह शिक्षा दी कि इस दिव्य पद को किस तरह प्राप्त किया जाये। अतएव मेरा पहला कर्तव्य है कि मैं उनकी सेवा करूँ। भला मैं उनकी यह सेवा कैसे छोड़ सकता हूँ?(७.९.२८)

मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम्।
खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सु- स्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि॥ २९॥

हे भगवान्, हे दिव्य गुणों के असीम आगार, आपने मेरे पिता हिरण्यकशिपु का वध किया है और मुझे उनकी तलवार से बचा लिया है। उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा था "यदि मेरे अतिरिक्त कोई परम नियन्ता है, तो वह तुम्हें बचाए। अब मैं तुम्हारे सिर को तुम्हारे शरीर से काटकर अलग कर दूँगा।" अतएव मैं सोच रहा हूँ कि मुझे बचाने तथा उन्हें मारने—दोनों ही कार्यों में आपने अपने भक्त के वचनों को सत्य करने के लिए ही कर्म किया है। इसका कोई अन्य कारण नहीं है।(७.९.२९)

एकस्त्वमेव जगदेतममुष्य यत् त्व- माद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः॥ ३०॥

हे भगवान्, अकेले आप ही अपने आपको विराट् जगत के रूप में प्रकट करते हैं, क्योंकि आप सृष्टि के पूर्व विद्यमान थे, संहार के बाद भी विद्यमान रहते हैं और आदि तथा अन्त के बीच में पालक होते हैं। यह सब प्रकृति के तीनों गुणों की क्रिया-प्रतिक्रिया के माध्यम से आपकी बहिरंगा शक्ति द्वारा किया जाता है। अतएव भीतर तथा बाहर जो कुछ भी विद्यमान है, वह केवल आप हैं।(७.९.३०)

त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था।
यद् यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद् वैतदेव वसुकालवदष्टितर्वोः॥ ३१॥

हे भगवान्, हे परमेश्वर, यह समग्र सृष्टि आपके द्वारा उत्पन्न है और विराट जगत आपकी शक्ति का परिणाम है। यद्यपि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है फिर भी आप अपने को उससे पृथक् रखते हैं। 'मेरा' तथा 'तुम्हारा' की धारणा निश्चय ही एक प्रकार का मोह (माया) है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु आपसे उद्भूत होने के कारण आपसे भिन्न नहीं है। निस्सन्देह, विराट जगत आपसे अभिन्न है और संहार भी आपके द्वारा ही किया जाता है। आप तथा ब्रह्माण्ड के बीच का यह संबंध बीज तथा वृक्ष अथवा सूक्ष्म कारण तथा स्थूल अभिव्यक्ति के उदाहरण के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।(७.९.३१)
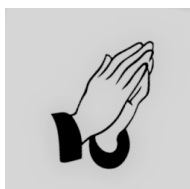
न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये शेषेत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्र- स्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे ॥३२ ॥

हे परमेश्वर, संहार के बाद सृजनात्मक शक्ति आप में स्थित रखी जाती है और आप अपनी अधखुली आँखों से सोते प्रतीत होते हैं। किन्तु तथ्य तो यह है कि आप एक सामान्य व्यक्ति की भाँति सोते नहीं, क्योंकि आप भौतिक जगत की सृष्टि के परे सदैव दिव्य अवस्था में रहते हैं और सदैव दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं। इस तरह क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में आप भौतिक वस्तुओं को छुए बिना अपनी दिव्य स्थिति में बने रहते हैं। यद्यपि आप सोते प्रतीत होते हैं, किन्तु यह सोना अविद्या की निद्रा से पृथक् होता है।(७.९.३२)

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।
अम्भस्यनन्तशयनाद् विरमत्समाधे- र्नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥३३॥

यह विराट भौतिक जगत भी आपका ही शरीर है। यह पदार्थ का पिंड आपकी काल शक्ति द्वारा क्षुब्ध होता है और इस तरह प्रकृति के तीनों गुण प्रकट होते हैं। तब आप शेष या अनन्त की शय्या से जागते हैं और आपकी नाभि से एक क्षुद्र दिव्य बीज उत्पन्न होता है। इसी बीज से विराट जगत का कमल पुष्प प्रकट होता है ठीक उसी तरह जिस प्रकार एक छोटे बीज से विशाल वट वृक्ष उगता है।(७.९.३३)

तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपश्यमान- स्त्वां बीजमात्मनि ततं स बहिर्विचिन्त्य ।
नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥ ३४ ॥

उस विशाल कमल पुष्प से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए किन्तु उन्हें उस कमल के सिवाय कुछ भी नहीं दिखा। अतएव आप को बाहर स्थित जानकर उन्होंने जल में गोता लगाया और वे एक सौ वर्षों तक उस कमल के उद्‌गम को खोजने का प्रयत्न करते रहे। किन्तु उन्हें आपका कोई पता नहीं चल पाया क्योंकि जब बीज फलीभूत होता है, तो असली बीज नहीं दिख पाता।(७.९.३४)

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आश्रितोऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।
त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ॥ ३५ ॥

आत्मयोनि के नाम से विख्यात अर्थात् बिना माता के उत्पन्न ब्रह्माजी को आश्चर्य हुआ। अतएव उन्होंने कमल पुष्प की शरण ग्रहण की और जब वे सैकड़ों वर्षों तक कठोर तपस्या करने के बाद शुद्ध हुए तो वे देख पाये कि समस्त कारणों के कारण भगवान् उनके अपने पूरे शरीर तथा इन्द्रियों में उसी तरह व्याप्त थे जिस प्रकार गन्ध अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी पृथ्वी में अनुभव की जाती है।(७.९.३५)

एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरु- नासाद्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ।
मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥ ३६ ॥

तब ब्रह्माजी ने आपको हजारों मुखों, पाँवों, सिरों, हाथों, जांघो, नाकों, कानों तथा आँखों से युक्त देखा। आप भलीभाँति वस्त्र धारण किये थे और नाना प्रकार के आभूषणों तथा आयुधों से सुशोभित थे। आपको विष्णु रूप में देखकर तथा आपके दिव्य लक्षणों एवं अधोलोकों से फैले हुए आपके चरणों को देखकर ब्रह्माजी को दिव्य आनन्द प्राप्त हुआ।(७.९.३६)

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं हि बिभ्रद् वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।
हत्वानयच्छ्रुतिगणांश्च रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥ ३७ ॥

हे भगवान्, जब आप घोड़े का शिर धारण करके हयग्रीव रूप में प्रकट हुए तो आपने रजो तथा तमो गुणों से पूर्ण मधु तथा कैटभ नामक दो असुरों का संहार किया। फिर आपने ब्रह्मा को वैदिक ज्ञान प्रदान किया। इसी कारण से सारे महान् ऋषिगण आपके रूपों को दिव्य अर्थात् भौतिक गुणों से अछूता मानते हैं।(७.९.३७)

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै- र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥३८ ॥

हे प्रभु, इस प्रकार आप विभिन्न अवतारों में जैसे मनुष्य, पशु, ऋषि, देवता, मत्स्य या कच्छप के रूप में प्रकट होते हैं और इस प्रकार से विभिन्न लोकों में सम्पूर्ण सृष्टि का पालन करते हैं तथा आसुरीं सिद्धन्तों का वध करते हैं। हे भगवान्, आप युग के अनुसार धार्मिक सिद्धान्तों की रक्षा करते हैं। किन्तु कलियुग में आप स्वयं को भगवान् के रूप में घोषित नहीं करते। इसलिए आप 'त्रियुग' कहलाते हैं, अर्थात् तीन युगों में प्रकट होने वाले भगवान्।(७.९.३८)

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम्।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥ ३९ ॥

चिन्तारहित वैकुण्ठलोकों के स्वामी, मेरा मन अत्यन्त पापी तथा कामी है, कभी यह सुखी कहलाता है, तो कभी दुखी है। मेरा मन शोक तथा भय से पूर्ण है और सदैव अधिकाधिक धन की खोज में रहता है। इस तरह यह अत्यधिक दूषित गया है और आपकी कथाओं से कभी तुष्ट नहीं होता। अतएव मैं अत्यन्त पतित तथा दलित हूँ। ऐसी जीवन-स्थिति में भला मैं आपके कार्यकलापों की व्याख्या करने में किस तरह समर्थ हो सकता हूँ?(७.९.३९)

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति- र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥४०॥

हे अच्युत भगवान्, मेरी दशा उस पुरुष की भाँति है, जिसकी कई पत्नियाँ हों और वे सभी उसे अपने अपने ढंग से आकर्षित करने का प्रयास कर रही हों। उदाहरणार्थ, जीभ स्वादिष्ट व्यंजनों की ओर आकृष्ट होती है, जननेन्द्रियाँ किसी आकर्षक स्त्री के साथ संभोग करने के लिए और स्पर्श इन्द्रियाँ मुलायम वस्तुओं का स्पर्श करने के लिए आकृष्ट होती हैं। पेट भरा रहने पर भी अधिक खाना चाहता है और कान आपके विषय में न सुन कर सामान्यत: सिनेमा गीतों की ओर आकृष्ट होते हैं। घ्राण की इन्द्रिय किसी अन्य ओर ही आकृष्ट होती है, चंचल आँखें इन्द्रियतृप्ति के दृश्यों की ओर आकृष्ट होती हैं तथा सक्रिय इन्द्रियाँ अन्यत्र आकृष्ट होती हैं। इस तरह मैं सचमुच ही दुविधा में रहता हूँ।(७.९.४०)

एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्या- मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम्।
पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥ ४१ ॥

हे भगवान्, आप सदैव मृत्यु की नदी के दूसरी ओर (उस पार) दिव्य रूप में स्थित रहते हैं, किन्तु हम सभी अपने पापकर्मों के फलों के कारण इस ओर कष्ट भोग रहे हैं। निस्सन्देह, हम इस नदी में गिर गये हैं और जन्म-मृत्यु की वेदनाओं से बारम्बार कष्ट उठा रहे हैं तथा भयानक वस्तुएँ खा रहे हैं। अब कृपा करके हम पर दृष्टि डालिये—न केवल मुझ पर अपितु उन सबों पर जो कष्ट उठा रहे हैं—और अपनी अहैतुकी कृपा तथा दया से हमारा उद्धार कीजिए तथा हमारा पालन कीजिये।(७.९.४१)

को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥ ४२ ॥

हे परमेश्वर, हे समग्र जगत के आदि आध्यात्मिक गुरु, आप ब्रह्माण्ड के कार्यों के प्रबन्धक हैं, अतएव आपकी सेवा में लगे हुए पतितात्माओं का उद्धार करने में आपको कौन सी कठिनाई है? आप सभी दुखी मानवता के मित्र हैं और
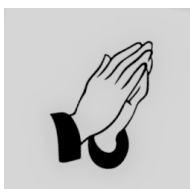
महापुरुषों के लिए मूर्खों पर दया दिखलाना आवश्यक है। अतएव मैं सोचता हूँ कि आप हम जैसे मनुष्यों पर अहैतुकी कृपा प्रदर्शित करेंगे जो आपकी सेवा में लगे हुए हैं।(७.९.४२)

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्या- स्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ- मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥ ४३ ॥

हे श्रेष्ठ महापुरुष, मैं भौतिक जगत से तनिक भी भयभीत नहीं हूँ, क्योंकि मैं जहाँ कहीं भी ठहरता हूँ आपके यश तथा कार्यकलाप के विचारों में लीन रहता हूँ। मैं एकमात्र उन मूर्खों तथा धूर्तों के लिए चिन्तित हूँ जो भौतिक सुख के लिए तथा अपने परिवार, समाज तथा देश के पालन हेतु बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते हैं। मैं मात्र उन के प्रति प्रेम के बारे में चिन्तित हूँ।(७.९.४३)

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥४४ ॥

हे भगवान् नृसिंहदेव, मैं देख रहा हूँ कि सन्त पुरुष तो अनेक हैं, किन्तु वे अपने ही मोक्ष में रुचि रखते हैं। वे बड़े-बड़े नगरों की परवाह न करते हुए मौन व्रत धारण करके ध्यान करने के लिए हिमालय या बन में चले जाते हैं; वे दूसरों की मुक्ति में रुचि नहीं रखते, किन्तु जहाँ तक मेरी बात है मैं इन बेचारे मूर्खों तथा धूर्तों को छोड़कर अकेले अपनी मुक्ति नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि कृष्णभावनामृत के बिना और आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण किये बिना कोई सुखी नहीं हो सकता। अतएव मैं उन सबों को आपके चरणकमलों की शरण में वापस लाना चाहता हूँ।(७.९.४४)

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥ ४५ ॥

विषयी जीवन की तुलना खुजली दूर करने हेतु दो हाथों को रगड़ने से की गई है। गृहमेधी अर्थात् तथाकथित गृहस्थ जिन्हें कोई आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है, सोचते हैं कि यह खुजलाना सर्वोत्कृष्ट सुख है, यद्यपि वास्तव में यह दुख का मूल है। कृपण जो ब्राह्मणों से सर्वथा विपरीत होते हैं, बारम्बार ऐन्द्रिय भोग करने पर भी तुष्ट नहीं होते। किन्तु जो धीर हैं और इस खुजलाहट को सह लेते हैं उन्हें मूर्खों तथा धूर्तों जैसे कष्ट नहीं सहने पड़ते।(७.९.४५)

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म- व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥४६ ॥

हे भगवन्, मोक्ष मार्ग के लिए दस विधियाँ संस्तुत हैं—मौन रहना, किसी से बातें न करना, व्रत रखना, सभी प्रकार का वैदिक ज्ञान संचित करना, तपस्या करना, वेदाध्ययन करना,वर्णाश्रम धर्म के कर्तव्यों को पूरा करना, शास्त्रों की व्याख्या करना, एकान्त स्थान में रहना, मौन मंत्रोच्चार करना, समाधि में लीन रहना। मोक्ष की ये विभिन्न विधियाँ सामान्यतया उन लोगों के लिए व्यापारिक अभ्यास और जीविकोपार्जन के साधन हैं जिन्होंने इन्द्रियों को जीता नहीं। चूँकि ऐसे लोग मिथ्या अहंकारी होते हैं अतएव हो सकता है कि ये विधियाँ सफल न भी हों।(७.९.४६)

रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचक्षन्ते त्वां योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥४७॥

प्रामाणिक वैदिक ज्ञान द्वारा मनुष्य यह देख सकता है कि विराट जगत में कार्य तथा कारण के रूप भगवान् के ही हैं, क्योंकि यह विराट जगत उन की शक्ति है। कार्य तथा कारण दोनों ही भगवान् की शक्तियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। अतएव हे प्रभु, जिस तरह कोई चतुर मनुष्य कार्य-कारण पर विचार करते हुए यह देख सकता है कि अग्नि किस तरह काठ में व्याप्त है उसी तरह भक्ति में लगे हुए व्यक्ति समझ सकते हैं कि आप किस प्रकार से कार्य तथा कारण दोनों ही हैं।(७.९.४७)
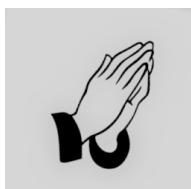
त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ।
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन् नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥ ४८ ॥

हे परमेश्वर, आप वास्तव में वायु, भूमि, अग्नि, आकाश तथा जल हैं। आप तन्मात्राएँ,प्राणवायु, पाँचों इन्द्रियाँ, मन, चेतना तथा मिथ्या अहंकार हैं। निस्सन्देह, आप स्थूल तथा सूक्ष्म हर वस्तु हैं। भौतिक तत्त्व तथा शब्दों या मन से व्यक्त प्रत्येक वस्तु आपके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।(७.९.४८)

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ।
आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वा-मेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥४९॥

न तो प्रकृति के तीन गुण (सतो, रजो तथा तमो), न इन तीनों गुणों के नियामक अधिष्ठाता देव, न पाँच स्थूल तत्त्व, न मन, न देवता, न मनुष्य ही आपको समझ सकते हैं, क्योंकि ये सभी जन्म तथा संहार के वशीभूत रहते हैं। ऐसा विचार करके आध्यात्मिक दृष्टि से प्रगत व्यक्ति भक्ति करने लगे हैं। ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति वैदिक अध्ययन की परवाह नहीं करते, निस्सन्देह वे व्यावहारिक भक्ति में अपने आपको लगाते हैं।(७.९.४९)

तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्मपूजाः कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
संसेवया त्वयि विनेति षड्ङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ ५० ॥

अतएव हे श्रेष्ठतम पूज्य भगवान्, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि षड अंग भक्ति किये बिना परमहंस को प्राप्त होने वाला लाभ भला कौन प्राप्त कर सकता है? षडंग भक्ति के अंग हैं—प्रार्थना करना, समस्त कर्म फलों को भगवान् को समर्पित करना, पूजा करना, आपके निमित्त कर्म करना, आपके चरणकमलों को सदैव स्मरण करना तथा आपके यश का श्रवण करना।(७.९.५०)

41. पुनः श्री प्रह्लादकृत श्री नृसिम्हा स्तवः

श्रीप्रह्लाद उवाच
मा मां प्रलोभयोत्पत्त्या सक्तं कामेषु तैर्वरैः ।
तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥ २ ॥

प्रह्लाद महाराज ने आगे कहा : हे प्रभु, हे भगवान्, नास्तिक परिवार में जन्म लेने के कारण मैं स्वभावतः भौतिक भोग के प्रति अनुरक्त हूँ; अतएव आप मुझे इन मोहों से मत ललचाइये। मैं भौतिक दशाओं से अत्यधिक भयभीत हूँ और भौतिकतावादी जीवन से मुक्त होने का इच्छुक हूँ। यही कारण है कि मैंने आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण की है।(७.१०.२)

भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ।
भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥ ३ ॥

हे मेरे अराध्य देव, चूँकि हर एक के हृदय में भौतिक संसार के मूल कारण कामेच्छाओं का बीज रहता है, अतएव आपने मुझे इस भौतिक जगत में शुद्ध भक्त के लक्षण प्रकट करने के लिए भेजा है।(७.१०.३)

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ।
यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥ ४ ॥

अन्यथा हे भगवान्, हे समस्त जगत के परम शिक्षक, आप अपने इस भक्त के प्रति इतने दयालु हैं कि आपने उससे कुछ भी ऐसा करने को प्रेरित नहीं किया जो उसके लिए अलाभकारी हो। दूसरी ओर, जो व्यक्ति आपकी भक्ति के बदले में कुछ भौतिक लाभ चाहता है, वह आपका शुद्ध भक्त नहीं हो सकता। वह उस व्यापारी की तरह ही है, जो सेवा के बदले में लाभ चाहता है।(७.१०.४)

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥ ५ ॥

जो सेवक अपने स्वामी से भौतिक लाभ की इच्छा रखता है, वह निश्चय ही योग्य सेवक या शुद्ध भक्त नहीं है। इसी प्रकार जो स्वामी अपने सेवक को इसलिए आशीष देता है कि स्वामी के रूप में उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे, वह भी शुद्ध स्वामी नहीं है।(७.१०.५)

अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ।
नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥

हे प्रभु, मैं आपका निःस्वार्थ सेवक हूँ और आप मेरे नित्य स्वामी हैं। सेवक तथा स्वामी होने के अतिरिक्त हमें कुछ भी नहीं चाहिए। आप प्राकृतिक रूप से मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ। हम दोनों में कोई अन्य संबंध नहीं है।(७.१०.६)

यदि दास्यसि मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥ ७ ॥

हे सर्वश्रेष्ठ वरदाता स्वामी, यदि आप मुझे कोई वांछित वर देना ही चाहते हैं, तो मेरी आपसे प्रार्थना है कि मेरे हृदय में किसी प्रकार की भौतिक इच्छाएँ न रहें।(७.१०.७)

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥ ८ ॥

हे भगवान्, जन्म काल से ही कामेच्छाओं के कारण मनुष्य की इन्द्रियों के कार्य, मन,जीवन, शरीर, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, ऐश्वर्य, बल, स्मृति तथा सत्यनिष्ठा समाप्त हो जाते हैं।(७.१०.८)

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥ ९ ॥

हे प्रभु, जब मनुष्य अपने मन से सारी भौतिक इच्छाएँ निकालने में सक्षम हो जाता है, तो वह आपके ही समान सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य का पात्र बन जाता है।(७.१०.९)

ॐ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ।
हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १० ॥

हे षड्ऐश्वर्यवान् प्रभु, हे परम पुरुष, हे परमात्मा, हे समस्त दुखों के विनाशक, हे अद्भुत नृसिंह रूप में परम पुरुष, मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(७.१०.१०)
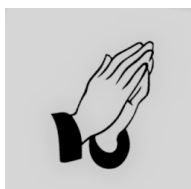
42. स्वयंभुवा मनु तपस्चर्यम भगवत स्तुति

.श्रीमनुरुवाच
येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥

श्री-मनु ने कहा : परम पुरुष ने इस चेतन भौतिक जगत की सृष्टि की है; ऐसा नहीं है कि इस भौतिक जगत से उसकी उत्पत्ति हुई हो। जब सब कुछ मौन रहता है, तो परम पुरुष साक्षी रूप में जगा रहता है। जीव उसे नहीं जानता, किन्तु वह सब कुछ जानता है।(८.१.९)

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १० ॥

इस ब्रह्माण्ड में भगवान् परमात्मा रूप में सर्वत्र, जहाँ कहीं भी चर तथा अचर प्राणी हैं, विद्यमान हैं। अतएव मनुष्य उतना ही स्वीकार करे जितना उसके लिए नियत है; उसे पराये धन में हस्तक्षेप करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।(८.१.१०)

यं पश्यति न पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥ ११ ॥

यद्यपि भगवान् विश्व के कार्यकलापों को निरन्तर देखते रहते हैं, किन्तु उन्हें कोई नहीं देख पाता। फिर भी किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि उन्हें कोई नहीं देखता अतएव वे भी उसे नहीं देखते। स्मरण रहे कि उनकी देखने की शक्ति में कभी ह्रास नहीं आता अतएव प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि उन परमात्मा की पूजा करे जो प्रत्येक जीव के साथ मित्र रूप में सदैव रहते हैं।(८.१.११)

न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः ।
विश्वस्यामूनि यद् यस्माद् विश्वं च तदृतं महत् ॥ १२ ॥

भगवान् का न तो आदि है, न अन्त और न मध्य। न ही वे किसी व्यक्ति विशेष या राष्ट्र के हैं। उनका न भीतर है न बाहर। इस जगत में दिखने वाले सारे द्वन्द्व—यथा आदि तथा अन्त, मेरा और उनका—उस परम पुरुष के व्यक्तित्व में अनुपस्थित हैं। यह ब्रह्माण्ड जो उनसे उद्‌भूत होता है उनका एक दूसरा स्वरूप है। अतएव भगवान् परम सत्य हैं और उनकी महानता पूर्ण है।(८.१.१२)

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ।
धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥ १३ ॥

यह समग्र विश्व परम सत्य भगवान् का शरीर है जिनके लाखों नाम हैं और अनन्त शक्तियाँ हैं। वे आत्मतेजस्वी, अजन्मा तथा परिवर्तनहीन हैं। वे प्रत्येक वस्तु के आदि हैं, किन्तु स्वयं उनका कोई आदि नहीं है। चूँकि उन्होंने अपनी बहिरंगा शक्ति से इस विराट रूप की सृष्टि की है अतएव यह उनके द्वारा उत्पन्न, पालित तथा ध्वंसित प्रतीत होता है। फिर भी वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति में निष्क्रिय रहते हैं और भौतिक शक्ति के कार्यकलाप उनका स्पर्श तक नहीं कर पाते।(८.१.१३)

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे ।
ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥ १४ ॥

अतएव लोगों को कर्मों की ऐसी अवस्था तक पहुँचने में समर्थ बनाने के लिए जो सकाम फलों से दूषित नहीं होते, बड़े-बड़े साधु पुरुष सर्वप्रथम लोगों को सकाम कर्म में लगाते हैं क्योंकि जब तक कोई शास्त्रोनुमोदित कर्मों को संपन्न करना आरम्भ नहीं करता तब तक वह मुक्ति की अवस्था को या कर्मफल न उत्पन्न करने वाले कार्यों की अवस्था को प्राप्त नहीं होता।(८.१.१४)

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विसज्जते।
आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम्॥ १५॥

भगवान् अपने ही लाभ से ऐश्वर्यपूर्ण हैं, फिर भी वे संसार के सृष्टा, पालक तथा संहर्ता के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार से कर्म करने पर भी वे कभी बन्धन में नहीं पड़ते। अतएव जो भक्तगण उनके चरण-चिह्नों का अनुगमन करते हैं, वे भी कभी बन्धन में नहीं पड़ते।(८.१.१५)

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम्।
नृञ् शिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम्॥ १६॥

भगवान् कृष्ण एक सामान्य व्यक्ति की भाँति कर्म करते हैं, फिर भी वे कर्मफल भोगने की इच्छा नहीं रखते। वे ज्ञान से पूर्ण, भौतिक इच्छाओं तथा विक्षेपों से मुक्त एवं पूर्णतः स्वतंत्र हैं। वे मानव समाज के परम शिक्षक के रूप में अपनी ही कर्मशैली का उपदेश देते हैं और इस प्रकार धर्म के असली मार्ग का उद्घाटन करते हैं। मैं हर व्यक्ति से प्रार्थना करता हूँ कि वह उनका अनुसरण करे।(८.१.१६)

43. ग्राहग्रस्त गजेन्द्रस्य श्री भगवत स्तुति

श्रीगजेन्द्र उवाच
ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि॥ २॥

गजेन्द्र ने कहा : मैं परम पुरुष वासुदेव को सादर नमस्कार करता हूँ (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)। उन्हीं के कारण यह शरीर आत्मा की उपस्थिति के कारण कर्म करता है; अतएव वे प्रत्येक जीव के मूल कारण हैं। वे ब्रह्मा तथा शिव जैसे महापुरुषों के लिए पूजनीय हैं और वे प्रत्येक जीव के हृदय में प्रविष्ट हैं। मैं उनका ध्यान करता हूँ।(८.३.२)

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥ ३॥

भगवान् ही वह परम पद है, जिस पर प्रत्येक वस्तु टिकी हुई है; वे वह अवयव हैं जिससे प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हुई है तथा वे वह पुरुष हैं जिसने सृष्टि की रचना की और जो इस विराट विश्व के एकमात्र कारण हैं। फिर भी वे कारण-कार्य से पृथक् हैं। मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ जो सभी प्रकार से आत्म-निर्भर हैं।(८.३.३)

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं क्वचिद् विभातं क्व च तत् तिरोहितम्।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः॥ ४॥

भगवान् अपनी शक्ति के विस्तार द्वारा कभी इस दृश्य जगत को व्यक्त बनाते हैं और कभी इसे अव्यक्त बना देते हैं। वे सभी परिस्थितियों में परम कारण तथा परम कार्य (फल), प्रेक्षक तथा साक्षी दोनों हैं। इस प्रकार वे सभी वस्तुओं से परे हैं। ऐसे भगवान् मेरी रक्षा करें।(८.३.४)
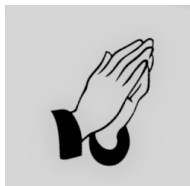
कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदासीद् गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥

कालक्रम से जब लोकों तथा उनके निदेशकों एवं पालकों समेत ब्रह्माण्ड के सारे कार्य-कारणों का संहार हो जाता है, तो गहन अंधकार की स्थिति आती है। किन्तु इस अंधकार के ऊपर भगवान् रहता है। मैं उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ।(८.३.५)

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु- र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

आकर्षक वेशभूषा से ढके रहने तथा विभिन्न प्रकार की गतियों से नाचने के कारण रंगमंच के कलाकार को श्रोता समझ नहीं पाते। इसी प्रकार परम कलाकार के कार्यों तथा स्वरूपों को बड़े-बड़े मुनि या देवतागण भी नहीं समझ पाते और बुद्धिहीन तो तनिक भी नहीं (जो पशुओं के तुल्य हैं)। न तो देवता तथा मुनि, न ही बुद्धिहीन मनुष्य भगवान् के स्वरूप को समझ सकते हैं और न ही वे उनकी वास्तविक स्थिति को अभिव्यक्त कर सकते हैं। ऐसे भगवान् मेरी रक्षा करें।(८.३.६)

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥

जो सभी जीवों को समभाव से देखते हैं, जो सबों के मित्रवत् हैं तथा जो जंगल में ब्रह्मचर्य,वानप्रस्थ तथा संन्यास व्रत का बिना त्रुटि के अभ्यास करते हैं, ऐसे विमुक्त तथा मुनिगण भगवान् के कल्याणप्रद चरणकमलों का दर्शन पाने के इच्छुक रहते हैं। वही भगवान् मेरे गन्तव्य हों।(८.३.७)

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥
तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

भगवान् भौतिक जन्म, कार्य, नाम, रूप, गुण या दोष से रहित हैं। यह भौतिक जगत जिस अभिप्राय से सृजित और विनष्ट होता रहता है उसकी पूर्ति के लिए वे अपनी मूल अन्तरंगा शक्ति द्वारा रामचन्द्र या भगवान् कृष्ण जैसे मानववत् रूप में आते हैं। उनकी शक्ति महान् है और वे विभिन्न रूपों में भौतिक कल्मष से सर्वथा मुक्त होकर अद्भुत कर्म करते हैं। अतएव वे परब्रह्म हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।(८.३.८-९)

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥

मैं उन आत्मप्रकाशित परमात्मा को नमस्कार करता हूँ जो प्रत्येक हृदय में साक्षी स्वरूप स्थित हैं, व्यष्टि जीवात्मा को प्रकाशित करते हैं और जिन तक मन, वाणी या चेतना के प्रयासों द्वारा नहीं पहुँचा जा सकता।(८.३.१०)

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥

भगवान् की अनुभूति उन शुद्ध भक्तों को होती है, जो भक्तियोग की दिव्य स्थिति में रहकर कर्म करते हैं। वे अकलुषित सुख के दाता हैं और दिव्यलोक के स्वामी हैं। अतएव मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।(८.३.११)
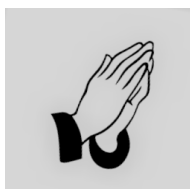
नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥

मैं सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव को, भगवान् के भयानक रूप नृसिंह देव को, भगवान् के पशुरूप (वराह देव) को, निर्विशेषवाद का उपदेश देने वाले भगवान् दत्तात्रेय को, भगवान् बुद्ध को तथा अन्य सारे अवतारों को नमस्कार करता हूँ। मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो निर्गुण हैं, किन्तु भौतिक जगत में सतो, रजो तथा तमो गुणों को स्वीकार करते हैं। मैं निर्विशेष ब्रह्मतेज को भी सादर नमस्कार करता हूँ।(८.३.१२)

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥

मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप परमात्मा, हर एक के अध्यक्ष तथा जो कुछ भी घटित होता है उसके साक्षी हैं। आप परम पुरुष, प्रकृति तथा समग्र भौतिक शक्ति के उद्गम हैं। आप भौतिक शरीर के भी स्वामी हैं। अतएव आप परम पूर्ण हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(८.३.१३)

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥

हे भगवान्! आप समस्त इन्द्रिय-विषयों के द्रष्टा हैं। आपकी कृपा के बिना सन्देहों की समस्या के हल होने की कोई सम्भावना नहीं है। यह भौतिक जगत आपके अनुरूप छाया के समान है। निस्सन्देह, मनुष्य इस भौतिक जगत को सत्य मानता है क्योंकि इससे आपके अस्तित्व की झलक मिलती है।(८.३.१४)

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥

हे भगवान्! आप समस्त कारणों के कारण हैं, किन्तु आपका अपना कोई कारण नहीं है, अतएव आप हर वस्तु के अद्भुत कारण हैं। मैं आपको अपना सादर नमस्कार अर्पित करता हूँ। आप पञ्चरात्र तथा वेदान्तसूत्र जैसे शास्त्रों में निहित वैदिक ज्ञान के आश्रय हैं, जो आपके साक्षात् स्वरूप हैं और परंपरा पद्धति के स्रोत हैं। चूँकि मोक्ष प्रदाता आप ही हैं अतएव आप ही अध्यात्मवादियों के एकमात्र आश्रय हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(८.३.१५)

गुणारणिच्छन्नचिदुष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम- स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥

हे प्रभु! जिस प्रकार अरणि-काष्ठ में अग्नि ढकी रहती है उसी प्रकार आप तथा आपका असीम ज्ञान प्रकृति के भौतिक गुणों से ढका रहता है। किन्तु आपका मन प्रकृति के गुणों के कार्यकलापों पर ध्यान नहीं देता। जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़े-चढ़े हैं, वे वैदिक वाङ्मय में निर्देशित विधि-विधानों के अधीन नहीं होते। चूँकि ऐसे उन्नत लोग दिव्य होते हैं अतएव आपस्वयं उनके शुद्ध मनों में प्रकट होते हैं। इसलिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(८.३.१६)

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत- प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥

चूँकि मुझ जैसे पशु ने परममुक्त आपकी शरण ग्रहण की है, अतएव आप निश्चय ही मुझे इस संकटमय स्थिति से उबार लेंगे। निस्सन्देह, अत्यन्त दयालु होने के कारण आप निरन्तर मेरा उद्धार करने का प्रयास करते हैं। आप अपने परमात्मा-

रूप अंश से समस्त देहधारी जीवों के हृदयों में स्थित हैं। आप प्रत्यक्ष दिव्य ज्ञान के रूप में विख्यात हैं और आप असीम हैं। हे भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(८.३.१७)
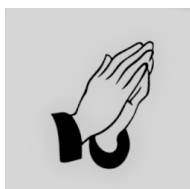
आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै- दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥

हे प्रभु! जो लोग भौतिक कल्मष से पूर्णतः मुक्त हैं, वे अपने अन्तस्थल में सदैव आपका ध्यान करते हैं। आप मुझ जैसों के लिए दुष्प्राप्य हैं, जो मनोरथ, घर, सम्बंधियों, मित्रों, धन,नौकरों तथा सहायकों के प्रति अत्यधिक आसक्त रहते हैं। आप प्रकृति के गुणों से निष्कलुषित भगवान् हैं। आप सारे ज्ञान के आगार, परमनियन्ता हैं। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(८.३.१८)

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं चाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥

भगवान् की पूजा करने पर जो लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों में रुचि रखते हैं, वे उनसे अपनी इच्छानुसार इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। तो फिर अन्य आशीर्वादों के विषय में क्या कहा जा सकता है? कभी-कभी भगवान् ऐसे महत्वाकांक्षी पूजकों को आध्यात्मिक शरीर प्रदान करते हैं। जो भगवान् असीम कृपालु हैं, वे मुझे वर्तमान संकट से तथा भौतिकतावादी जीवन शैली से मुक्ति का आशीर्वाद दें।(८.३.१९)

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥
तमक्षरं ब्रह्म परं परेश- मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर- मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥

ऐसे अनन्य भक्त जिन्हें भगवान् की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई चाह नहीं रहती, वे पूर्णतः शरणागत होकर उनकी पूजा करते हैं और उनके आश्चर्यजनक तथा शुभ कार्यकलापों के विषय में सदैव सुनते तथा कीर्तन करते हैं। इस प्रकार वे सदैव दिव्य आनन्द के सागर में मग्न रहते हैं। ऐसे भक्त भगवान् से कोई वरदान नहीं माँगते, किन्तु मैं तो संकट में हूँ। अतएव मैं उन भगवान् की स्तुति करता हूँ जो शाश्वत रूप में विद्यमान हैं, जो अदृश्य हैं, जो ब्रह्मा जैसे महापुरुषों के भी स्वामी हैं और जो केवल दिव्य भक्तियोग द्वारा ही प्राप्त हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण वे मेरी इन्द्रियों की पहुँच से तथा समस्त बाह्य अनुभूति से परे हैं। वे असीम हैं, वे आदि कारण हैं और सभी तरह से पूर्ण हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ।(८.३.२०-२१)

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥
यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥ २३ ॥
स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन् निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥

भगवान् अपने सूक्ष्म अंश जीव तत्त्व की सृष्टि करते हैं जिसमें ब्रह्मा, देवता तथा वैदिक ज्ञान के अंग (साम, ऋग्, यजुर् तथा अथर्व) से लेकर अपने-अपने नामों तथा गुणों सहित समस्त चर तथा अचर प्राणी सम्मिलित हैं। जिस
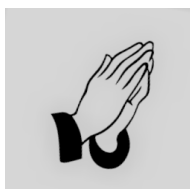
प्रकार अग्नि के स्फुलिंग या सूर्य की चमकीली किरणें अपने स्रोत से निकल कर पुन: उसी में समा जाती हैं उसी प्रकार मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, स्थूल भौतिक तथा सूक्ष्म भौतिक शरीर तथा प्रकृति के गुणों के सतत रूपान्तर (विकार)— ये सभी भगवान् से उद्भूत होकर पुन: उन्हीं में समा जाते हैं। वे न तो देव हैं न दानव, न मनुष्य न पक्षी या पशु हैं। वे न तो स्त्री या पुरुष या क्लीव हैं और न ही पशु हैं। न ही वे भौतिक गुण, सकाम कर्म, प्राकट्य या अप्राकट्य हैं। वे ''नेति-नेति'' का भेदभाव करने में अन्तिम शब्द हैं और वे अनन्त हैं। उन भगवान् की जय हो।(८.३.२२-२४)

जिजीविषे नाहमिहामुया कि- मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव- स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥

घड़ियाल के आक्रमण से मुक्त किये जाने के बाद मैं और आगे जीवित रहना नहीं चाहता। हाथी के शरीर से क्या लाभ जो भीतर तथा बाहर से अज्ञान से आच्छादित हो? मैं तो अज्ञान के आवरण से केवल नित्य मोक्ष की कामना करता हूँ। यह आवरण काल के प्रभाव से विनष्ट नहीं होता।(८.३.२५)

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥

भौतिक जीवन से मोक्ष की कामना करता हुआ अब मैं उस परम पुरुष को सादर नमस्कार करता हूँ जो इस ब्रह्माण्ड का स्रष्टा है, जो साक्षात् विश्व का स्वरूप होते हुए भी इस विश्व से परे है। वह इस जगत में हर वस्तु का परम ज्ञाता है, ब्रह्माण्ड का परमात्मा है। वह अजन्मा है और परम पद पर स्थित भगवान् है। उसे मैं सादर नमस्कार करता हूँ।(८.३.२६)

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥

मैं उन ब्रह्म, परमात्मा, समस्त योग के स्वामी को सादर नमस्कार करता हूँ जो सिद्ध योगियों द्वारा अपने हृदयों में तब देखे जाते हैं जब उनके हृदय भक्तियोग के अभ्यास द्वारा सकाम कर्मों के फलों से पूर्णतया शुद्ध तथा मुक्त हो जाते हैं।(८.३.२७)

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग- शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥

हे प्रभु! आप तीन प्रकार की शक्तियों के दुस्तर वेग के नियामक हैं। आप समस्त इन्द्रियसुख के आगार हैं और शरणागत जीवों के रक्षक हैं। आप असीम शक्ति के स्वामी हैं, किन्तु जो लोग अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में अक्षम हैं, वे आप तक नहीं पहुँच पाते। मैं आपको बारम्बार सादर नमस्कार करता हूँ।(८.३.२८)

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥

मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जिनकी माया से ईश्वर का अंश जीव देहात्मबुद्धि के कारण अपनी असली पहचान को भूल जाता है। मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ जिनके यश को समझ पाना कठिन है।(८.३.२९)

44. ब्रह्मा कृत श्री क्षिरोदाक्सयी विष्णु

श्रीब्रह्मोवाच
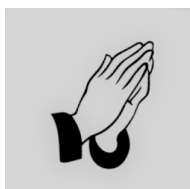
अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।
मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥

ब्रह्माजी ने कहा : हे परमेश्वर, हे अविकारी, असीम परम सत्य! आप हर वस्तु के उद्‌गम हैं। सर्वव्यापी होने के कारण आप प्रत्येक के हृदय में और परमाणु में भी रहते हैं। आपमें कोई भौतिक गुण नहीं पाये जाते। निस्सन्देह, आप अचिन्त्य हैं। मन आपको कल्पना से नहीं ग्रहण कर सकता और शब्द आपका वर्णन करने में असमर्थ हैं। आप सब के परम स्वामी हैं; अतएव आप हर एक के आराध्य हैं। हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।(८.५.२६)

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मना- मर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ।
छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥ २७ ॥

भगवान् प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जानते रहते हैं कि किस प्रकार प्राण, मन तथा बुद्धि समेत प्रत्येक वस्तु उनके नियंत्रण में कार्य करती है। वे हर वस्तु के प्रकाशक हैं और अज्ञान उन्हें छू तक नहीं गया। उनका भौतिक शरीर नहीं होता जो पूर्वकर्मों के फलों से प्रभावित हो। वे पक्षपात तथा भौतिकतावादी विद्या के अज्ञान से मुक्त हैं। अतएव मैं उन भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ जो नित्य, सर्वव्यापक तथा आकाश के समान विशाल हैं और तीनों युगों (सत्य, त्रेता तथा द्वापर) में अपने षड्ऐश्वर्यों समेत प्रकट होते हैं।(८.५.२७)

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पञ्चदशारमाशु ।
त्रिनाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥ २८ ॥

भौतिक कार्यों के चक्र में, भौतिक शरीर मानसिक रथ के पहिये जैसा होता है। दस इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) तथा शरीर के भीतर के पाँच प्राण मिलकर रथ के पहिये के पन्द्रह अरे (तीलियाँ) बनाते हैं। प्रकृति के तीन गुण (सत्त्व, रजस् तथा तमस्) कार्यकलापों के केन्द्रबिन्दु हैं और प्रकृति के आठ अवयव (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश,मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार) इस पहिए की बाहरी परिधि बनाते हैं। बहिरंगा भौतिक शक्ति इस पहिए को विद्युत् शक्ति की भाँति घुमाती है। इस प्रकार यह पहिया बड़ी तेजी से अपनी धुरी या केन्द्रीय आधार अर्थात् भगवान् के चारों ओर घूमता है, जो परमात्मा तथा चरम सत्य हैं। हम उन्हें सादर नमस्कार करते हैं।(८.५.२८)

य एकवर्णं तमसः परं त- दलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ।
आसां चकारोपसुपर्णमेन- मुपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥

भगवान् शुद्ध सत्त्व में स्थित हैं; अतएव वे एकवर्ण—ओङ्कार (प्रणव) हैं। चूँकि भगवान् अंधकार माने जाने वाले दृश्य जगत से परे हैं, अतएव वे भौतिक नेत्रों से नहीं दिखते। फिर भी वे दिक् या काल द्वारा हमसे पृथक् नहीं होते, अपितु वे सर्वत्र उपस्थित रहते हैं। अपने वाहन गरुड़ पर आसीन उनकी पूजा क्षोभ से मुक्ति पा चुके व्यक्तियों के द्वारा योग शक्ति से की जाती है। हम सभी उनको सादर नमस्कार करते हैं।(८.५.२९)

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् ।
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥ ३० ॥

कोई भी व्यक्ति भगवान् की माया का पार नहीं पा सकता जो इतनी प्रबल होती है कि हर व्यक्ति इससे भ्रमित होकर जीवन के लक्ष्य को समझने की बुद्धि खो देता है। किन्तु वही माया उन भगवान् के वश में रहती है, जो सब पर शासन करते हैं और सभी जीवों पर समान दृष्टि रखते हैं। हम उन्हें नमस्कार करते हैं।(८.५.३०)
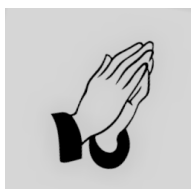
**इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ।
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥ ३१ ॥**

चूँकि हमारे शरीर सत्त्वगुण से निर्मित हैं इसलिए हम देवगण भीतर तथा बाहर से सतोगुण में स्थित हैं। सारे सन्त पुरुष भी इसी प्रकार स्थित हैं। अतएव यदि हम भगवान् को न भी समझ सकते हों तो उन नगण्य प्राणियों के विषय में क्या कहा जाये जो रजो तथा तमो गुणों में स्थित हैं? भला वे भगवान् को कैसे समझ सकते हैं? हम उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं।(८.५.३१)

**पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ।
स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३२ ॥**

इस पृथ्वी पर चार प्रकार के जीव हैं और ये सारे के सारे उन्हीं के द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। यह भौतिक सृष्टि उनके चरणकमलों पर टिकी है। वे एश्वर्य तथा शक्ति से पूर्ण परम पुरुष हैं। वे हम पर प्रसन्न हों।(८.५.३२)

**अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ।
लोका यतोऽथाखिललोकपालाः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३३ ॥**

सारा विराट जगत जल से निकला है और जल ही के कारण सारे जीव स्थित हैं, जीवित रहते तथा विकसित होते हैं। यह जल भगवान् के वीर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतएव इतनी महान् शक्ति वाले भगवान् हम पर प्रसन्न हों।(८.५.३३)

**सोमं मनो यस्य समामनन्ति दिवौकसां यो बलमन्ध आयुः ।
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३४ ॥**

सोम (चन्द्रमा) समस्त देवताओं के लिए अन्न, बल तथा दीर्घायु का स्रोत है। वह सारी वनस्पतियों का स्वामी तथा सारे जीवों की उत्पZि का स्रोत भी है। जैसा कि विद्वानों ने कहा है, चन्द्रमा भगवान् का मन है। ऐसे समस्त ऐश्वर्यों के स्रोत भगवान् हम पर प्रसन्न हों।(८.५.३४)

**अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ।
अन्तःसमुद्रेऽनुपचन्स्वधातून् प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३५ ॥**

अनुष्ठानों की आहुति ग्रहण करने के लिए उत्पन्न अग्नि भगवान् का मुख है। सागर की गहराइयों के भीतर भी सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिए अग्नि रहती है और उदर में भोजन पचाने के लिए तथा शरीर पालन हेतु विभिन्न स्रावों को उत्पन्न करने के लिए भी अग्नि उपस्थित रहती है। ऐसे परम शक्तिमान भगवान् हम पर प्रसन्न हों।(८.५.३५)

**यच्चक्षुरासीत् तरणिर्देवयानं त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ।
द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३६ ॥**

सूर्यदेव मुक्ति के मार्ग को चिन्हित करते हैं, जो अर्चिरादि वर्त्म कहलाता है। वे वेदों के ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं; वे परम सत्य के पूजे जाने वाले धाम हैं। वे मोक्ष के द्वार हैं; वे नित्य जीवन के स्रोत हैं; वे मृत्यु के भी कारण हैं। वे भगवान् की आँख हैं। ऐसे परम ऐश्वर्यवान् भगवान् हम पर प्रसन्न हों।(८.५.३६)

**प्राणादभूद् यस्य चराचराणां प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ।
अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३७ ॥**
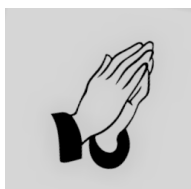
सारे चर तथा अचर प्राणी अपनी जीवनी शक्ति (प्राण), अपनी शारीरिक शक्ति तथा अपना जीवन तक वायु से प्राप्त करते हैं। हम सभी अपने प्राण के लिए वायु का उसी तरह अनुसरण करते हैं जिस प्रकार नौकर राजा का अनुसरण करता है। वायु की जीवनी शक्ति भगवान् की मूल जीवनी शक्ति से उत्पन्न होती है। ऐसे भगवान् हम पर प्रसन्न हों।(८.५.३७)

श्रोत्राद् दिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ।
प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३८ ॥

परम शक्तिशाली भगवान् हम पर प्रसन्न हों। विभिन्न दिशाएँ उनके कानों से उत्पन्न होती है,शरीर के छिद्र उनके हृदय से निकलते हैं एवं प्राण, इन्द्रियाँ, मन, शरीर के भीतर की वायु तथा शरीर आश्रय रूपी शून्य (आकाश) उनकी नाभि से निकलते हैं।(८.५.३८)

बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादा- न्मन्योर्गिरीशो धिषणाद् विरिञ्चः ।
खेभ्यस्तु छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३९ ॥

स्वर्ग का राजा महेन्द्र भगवान् के बल से उत्पन्न हुआ था, देवतागण भगवान् की कृपा से उत्पन्न हुए थे, शिवजी भगवान् के क्रोध से उत्पन्न हुए थे और ब्रह्माजी उनकी गम्भीर बुद्धि से उत्पन्न हुए थे। सारे वैदिक मंत्र भगवान् के शरीर के छिद्रों से उत्पन्न हुए थे तथा ऋषि और प्रजापतिगण उनकी जननेन्द्रियों से उत्पन्न हुए थे। ऐसे परम शक्तिशाली भगवान् हम पर प्रसन्न हों!(८.५.३९)

श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययासन् धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ।
द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात् प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥

लक्ष्मी उनके वक्षस्थल से उत्पन्न हुई, पितृलोक के वासी उनकी छाया से, धर्म उनके स्तन से तथा अधर्म उनकी पीठ से उत्पन्न हुआ। स्वर्ग लोक उनके सिर की चोटी से तथा अपसराएँ उनके इन्द्रिय भोग से उत्पन्न हुईं। ऐसे परम शक्तिमान भगवान् हम पर प्रसन्न हों!(८.५.४०)

विप्रो मुखाद् ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद् भुजयोर्बलं च ।
ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण तथा वैदिक ज्ञान भगवान् के मुख से निकले, क्षत्रिय तथा शारीरिक शक्ति उनकी भुजाओं से, वैश्य तथा उत्पादकता एवं सम्पत्ति संबंधी उनका दक्ष ज्ञान उनकी जाँघों से तथा वैदिक ज्ञान से विलग रहने वाले शूद्र उनके चरणों से निकले। ऐसे भगवान्, जो पराक्रम से पूर्ण हैं, हम पर प्रसन्न हों।(८.५.४१)

लोभोऽधरात् प्रीतिरुपर्यभूद् द्युति- र्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ।
भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥

लोभ उनके निचले होठ से, प्यार उनके ऊपरी होठ से, शारीरिक कान्ति उनकी नाक से,पाशविक वासनाएँ उनकी स्पर्शेन्द्रियों से, यमराज उनकी भौहों से तथा नित्यकाल उनकी पलकों से उत्पन्न होते हैं। वे भगवान् हम सबों पर प्रसन्न हों।(८.५.४२)

द्रव्यं वयः कर्म गुणान्विशेषं यद्योगमायाविहितान्वदन्ति ।
यद् दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४३ ॥

सभी विद्वान लोग कहते हैं कि पाँचों तत्त्व, नित्यकाल, सकाम कर्म, प्रकृति के तीनों गुण तथा इन गुणों से उत्पन्न विभिन्न किस्में—ये सब योगमाया की सृष्टियाँ हैं। अतएव इस भौतिक जगत को समझ पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु जो लोग अत्यन्त विद्वान हैं उन्होंने इसका तिरस्कार कर दिया है। जो सभी वस्तुओं के नियन्ता हैं ऐसे भगवान् हम सब पर प्रसन्न हों।(८.५.४३)

नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभि- र्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥ ४४ ॥

हम उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं, जो पूर्णतया शान्त, प्रयास से मुक्त तथा अपनी उपलब्धियों से पूर्णतया सन्तुष्ट हैं। वे अपनी इन्द्रियों द्वारा भौतिक जगत के कार्यों में लिप्त नहीं होते। निस्सन्देह, इस भौतिक जगत में अपनी लीलाएँ संपन्न करते समय वे अनासक्त वायु की तरह रहते हैं।(८.५.४४)

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥ ४५ ॥

हे भगवान्! हम आपके शरणागत हैं फिर भी हम आपका दर्शन करना चाहते हैं। कृपया अपने आदि रूप को तथा अपने मुस्काते मुख को हमारे नेत्रों को दिखलाइये और अन्य इन्द्रियों द्वारा अनुभव करने दीजिये।(८.५.४५)

तैस्तैः स्वेच्छाभूतै रूपैः काले काले स्वयं विभो।
कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत् करोति हि ॥ ४६ ॥

हे भगवान्! आप विभिन्न युगों में अपनी इच्छा से विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं और ऐसे असामान्य कार्य आश्चर्यजनक ढंग से करते हैं, जिन्हें हम सब के लिए कर पाना दुष्कर है।(८.५.४६)

्चो शभूर्यत्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा।
देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७ ॥

कर्मीजन अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए सदैव धनसंग्रह करने के लिए लालायित रहते हैं, किन्तु इसके लिए उन्हें अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। इतने कठोर श्रम के बावजूद भी उन्हें सन्तोषप्रद फल नहीं मिल पाता। निस्सन्देह ही कभी-कभी तो उनके कर्मफल से निराशा ही उत्पन्न होती है। किन्तु जिन भक्तों ने भगवान् की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर रखा है वे कठोर श्रम किये बिना ही पर्याप्त फल प्राप्त कर सकते हैं। ये फल भक्तों की आशा से बढ़कर होते हैं।(८.५.४७)

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः।
कल्पते पुरुषस्यैव स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४८ ॥

भगवान् को समर्पित कार्य, भले ही छोटे पैमाने पर क्यों न किये जाँए, कभी भी व्यर्थ नहीं जाते। अतएव स्वाभाविक है कि परम पिता होने के कारण भगवान् अत्यन्त प्रिय हैं और वे जीवों के कल्याण के लिए सदैव कर्म करने के लिए तैयार रहते हैं।(८.५.४८)

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम्।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥

जब वृक्ष की जड़ में पानी डाला जाता है, तो वृक्ष का तना तथा शाखाएँ स्वतः तुष्ट हो जाती हैं। इसी प्रकार जब कोई भगवान् विष्णु का भक्त बन जाता है, तो इससे हर एक की सेवा हो जाती है क्योंकि भगवान् हर एक के परमात्मा हैं।(८.५.४९)

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे।
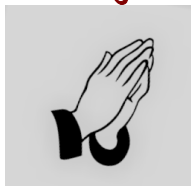
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥ ५० ॥

हे भगवान्! आपको नमस्कार है क्योंकि आप नित्य हैं, भूत, वर्तमान तथा भविष्य की काल सीमा से परे हैं। आप अपने कार्यकलापों में अचिन्त्य हैं, आप भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के स्वामी हैं और समस्त भौतिक गुणों से परे रहने के कारण आप भौतिक कल्मष से मुक्त हैं। आप प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता हैं, किन्तु इस समय आप सतोगुण में स्थित हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(८.५.५०)

45. श्री हरेः आविर्भावाद अनन्तरम ब्रह्मणः पुनः स्तवः

श्रीब्रह्मोवाच

अजातजन्मस्थितिसंयमाया- गुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ।
अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥

ब्रह्माजी ने कहा : यद्यपि आप अजन्मा हैं, किन्तु अवतार के रूप में आपका प्राकट्य तथा अन्तर्धान सदैव चलता रहता है। आप सदैव भौतिक गुणों से मुक्त रहते हैं और सागर के समान दिव्य आनन्द के आश्रय हैं। अपने दिव्य स्वरूप में नित्य रहते हुए आप अत्यन्त सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। अतएव हम आपको जिनका अस्तित्व अचिन्त्य है। सादर नमस्कार करते हैं।(८.६.८)

रूपं तवैतत् पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोऽर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।
योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान् पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ, हे परम नियन्ता! जो लोग सचमुच परम सौभाग्य की कामना करते हैं, वे वैदिक तंत्रों के अनुसार आपके इसी रूप की पूजा करते हैं। हे प्रभु! हम आपमें तीनों लोकों को देख सकते हैं।(८.६.९)

त्वय्यग्र आसीत् त्वयि मध्य आसीत् त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ।
त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥

सदैव पूर्ण स्वतंत्र रहने वाले मेरे प्रभु! यह सारा दृश्य जगत आपसे उत्पन्न होता है, आप पर टिका रहता है और आपमें तल्लीन हो जाता है। आप ही प्रत्येक वस्तु के आदि, मध्य तथा अन्त हैं जिस तरह पृथ्वी मिट्टी के पात्र का कारण है; वह उस पात्र को आधार प्रदान करती है और जब पात्र टूट जाता है, तो अन्ततः उसे अपने में मिला लेती है।(८.६.१०)

त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ।
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥ ११ ॥

हे परब्रह्म! आप अपने में स्वतंत्र हैं और दूसरों से सहायता नहीं लेते। आप अपनी शक्ति से इस दृश्य जगत का सृजन करके इसमें प्रवेश कर जाते हैं। जो लोग कृष्णभावनामृत में बढ़े-चढ़े हैं, जो प्रामाणिक शास्त्रों से भलीभाँति परिचित हैं और जो भक्तियोग के अभ्यास से सारे भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाते हैं, वे यह शुद्ध मन से देख सकते हैं कि आप भौतिक गुणों के रूपान्तरों के भीतर रहते हुए भी इन गुणों से अछूते रहते हैं।(८.६.११)

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम् ।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति ॥ १२ ॥
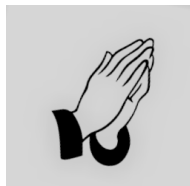
जिस प्रकार काठ से अग्नि, गाय के थन से दूध, भूमि से अन्न तथा जल और औद्योगिक उद्यम से जीविका के लिए समृद्धि प्राप्त की जा सकती है उसी तरह इस भौतिक जगत में मनुष्य भक्तियोग के अभ्यास द्वारा आपकी कृपा प्राप्त कर सकता है या बुद्धि से आपके पास पहुँच सकता है। जो पुण्यात्मा हैं, वे इसकी पुष्टि करते हैं।(८.६.१२)

तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ।
दृष्ट्वा गता निर्वृतमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥ १३ ॥

जंगल की अग्नि से पीड़ित हाथी गंगाजल प्राप्त होने पर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार,हे प्रभु! कमलनाभ प्रभु! चूँकि आप हमारे समक्ष अब प्रकट हुए हैं अतएव हम दिव्य सुख का अनुभव कर रहे हैं। हमें आपके दर्शन की दीर्घकाल से आकांक्षा थी अतएव आपका दर्शनपाकर हमने अपने जीवन के चरम लक्ष्य को पा लिया है।(८.६.१३)

स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ।
समागतास्ते बहिरन्तरात्मन् किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥ १४ ॥

हे भगवान्! हम विविध देवता, इस ब्रह्माण्ड के निर्देशक आपके चरणकमलों के निकट आये हैं। जिस प्रयोजन से हम आये हैं कृपया उसे पूरा करें। आप भीतर तथा बाहर से हर वस्तु के साक्षी हैं। आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है, अतएव आपको किसी बात के लिए पुनः सूचित करना व्यर्थ है।(८.६.१४)

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ।
किं वा विदामेश पृथग्विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥ १५ ॥

मैं (ब्रह्मा), शिवजी तथा सारे देवताओं के साथ-साथ, दक्ष जैसे प्रजापति भी चिनगारियाँ मात्र हैं, जो मूल अग्नि स्वरूप आपके द्वारा प्रकाशित हैं। चूँकि हम आपके कण हैं अतएव हम अपनी कुशलता के विषय में समझ ही क्या सकते हैं? हे परमेश्वर! हमें मोक्ष का वह साधन प्रदान करें जो ब्राह्मणों तथा देवताओं के लिए उपयुक्त हो।(८.६.१५)

46. श्री महादेवस्य श्री विष्णु स्तुति

श्रीमहादेव उवाच
देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥

महादेवजी ने कहा : हे देवताओं में प्रमुख देव! हे सर्वव्यापी, ब्रह्माण्ड के स्वामी! आपने अपनी शक्ति से अपने को सृष्टि में रूपान्तरित कर दिया है। आप हर वस्तु के मूल एवं सक्षम कारण हैं। आप भौतिक नहीं हैं। निस्सन्देह, आप हर एक की परम सञ्जीवनी शक्ति या परमात्मा हैं। अतएव आप परमेश्वर हैं अर्थात् सभी नियंत्रकों के परम नियंत्रक हैं।(८.१२.४)

आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ।
यतोऽव्ययस्य नैतानि तत् सत्यं ब्रह्म चिद् भवान् ॥ ५ ॥

हे भगवान्! व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्या अहंकार तथा इस दृश्य जगत का आदि (उत्पत्ति),पालन तथा संहार सभी कुछ आपसे है। किन्तु आप परम सत्य, परमात्मा, परम ब्रह्म हैं अतएव जन्म, मृत्यु तथा पालन जैसे परिवर्तन आप में नहीं पाये जाते।(८.१२.५)

तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ।
विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥ ६ ॥
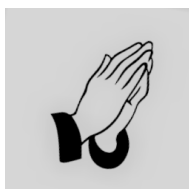
जो शुद्ध भक्त या महान् सन्त पुरुष (मुनिगण) जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त करने के इच्छुक हैं तथा इन्द्रियतृप्ति की समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित हैं, वे आपके चरणकमलों की निरन्तर भक्ति में लगे रहते हैं।(८.१२.६)

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोक- मानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।
विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमाना- मात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयानपेक्षः ॥ ७ ॥

हे प्रभु! आप परब्रह्म तथा सभी प्रकार से पूर्ण हैं। पूर्णतः आध्यात्मिक होने के कारण आप नित्य, प्रकृति के भौतिक गुणों से मुक्त तथा दिव्य आनन्द से पूरित हैं। निस्सन्देह, आपके लिए शोक करने का प्रश्न ही नहीं उठता। चूँकि आप समस्त कारणों के परम कारण हैं अतएव आपके बिना कोई भी अस्तित्व में नहीं रह सकता। फिर भी जहाँ तक कारण तथा कार्य का संबंध है हम आपसे भिन्न हैं क्योंकि एक दृष्टि से कार्य तथा कारण पृथक्-पृथक् हैं। आप सृष्टि, पालन तथा संहार के मूल कारण हैं और आप समस्त जीवों को वर देते हैं। हर व्यक्ति अपने कार्यों के फलों के लिए आप पर निर्भर है, किन्तु आप सदा स्वतंत्र हैं।(८.१२.७)

एकस्त्वमेव सदसद् द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ।
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद् गुणव्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥८॥

हे प्रभु! आप अकेले ही कार्य तथा कारण हैं, अतएव आप दो प्रतीत होते हुए भी परम एक हैं। जिस तरह आभूषण के सोने तथा खान के सोने में कोई अन्तर नहीं होता, उसी तरह कारण तथा कार्य में अन्तर नहीं होता, दोनों ही एक हैं। अज्ञानवश ही लोग अन्तर तथा द्वैत गढ़ते हैं। आप भौतिक कल्मष से मुक्त हैं और चूँकि समस्त ब्रह्माण्ड आपके द्वारा उत्पन्न है और आपके बिना नहीं रह सकता अतएव यह आपके दिव्य गुणों का प्रभाव है। इस प्रकार इस धारणा को कोई बल नहीं मिलता कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है।(८.१२.८)

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेके एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९ ॥

जो निर्विशेष मायावादी कहलाते हैं, वे आपको निर्विशेष ब्रह्म के रूप में मानते हैं। मीमांसक विचारक आपको धर्म के रूप में मानते हैं। सांख्य दार्शनिक आपको ऐसा परम पुरुष मानते हैं, जो प्रकृति तथा पुरुष के परे है और देवताओं का भी नियंत्रक है। जो लोग पञ्चरात्र नामक भक्ति के नियमों के अनुयायी हैं, वे आपको नौ शक्तियों से युक्त मानते हैं। तथा पतञ्जलि मुनि के अनुयायी, जो पतञ्जल दार्शनिक कहलाते हैं, आपको उस परम स्वतंत्र भगवान् के रूप में मानते हैं जिसके न तो कोई तुल्य है और जिस से कोई श्रेष्ठ है।(८.१२.९)

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ।
यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्य- मर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥ १० ॥

हे प्रभु! सभी देवताओं में श्रेष्ठ माना जाने वाला मैं, ब्रह्माजी तथा मरीचि इत्यादि महर्षि सतोगुण से उत्पन्न हैं। तब भी हम सभी आपकी माया से मोहग्रस्त हैं और यह नहीं समझ पाते कि यह सृष्टि क्या है। आप हमारी बात छोड़ भी दें तो उन असुरों तथा मनुष्यों के बारे में क्या कहा जाये जो प्रकृति के निम्न गुणों (रजो तथा तमो गुणों) से युक्त हैं? वे आपको कैसे जान सकते हैं?(८.१२.१०)

स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ।
वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयावगमोऽवरुन्त्से ॥ ११ ॥
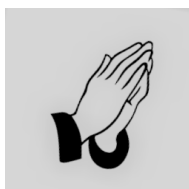
हे प्रभु! आप साक्षात् परम ज्ञान हैं। आप इस सृष्टि तथा इसके सृजन, पालन तथा संहार के विषय में सब कुछ जानते हैं। आप जीवों द्वारा किये जाने वाले उन सारे प्रयासों से अवगत हैं जिनके द्वारा वे इस भौतिक जगत से बँधते या मुक्त होते हैं। जिस प्रकार वायु विस्तीर्ण आकाश के साथ-साथ समस्त चराचर प्राणियों में प्रविष्ट करती है उसी प्रकार आप सर्वत्र विद्यमान हैं, अतएव सर्वज्ञ हैं।(८.१२.११)

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोऽहं तद् द्रष्टुमिच्छामि यत् ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥ १२ ॥

हे प्रभु! मैंने आपके उन सभी अवतारों का दर्शन किया है जिन्हें आप अपने दिव्य गुणों के द्वारा प्रकट कर चुके हैं। अब जबकि आप एक सुन्दर तरुणी के रूप में प्रकट हुए हैं, मैं आपके उसी स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ।(८.१२.१२)

येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ।
तद् दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥ १३ ॥

हे भगवान्! हम लोग यहाँ पर आपके उस रूप का दर्शन करने आये हैं जिसे आपने असुरों को पूर्णतया मोहित करने के लिए दिखलाया था और इस प्रकार देवताओं को अमृत पान करने दिया था। मैं उस रूप को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।(८.१२.१३)

47. श्री हरेर्दिती कृत स्तवः

श्रीअदितिरुवाच
यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ८ ॥

देवी अदिति ने कहा : हे समस्त यज्ञों के भोक्ता तथा स्वामी, हे अच्युत तथा परम प्रसिद्ध पुरुष, जिनका नाम लेते ही मंगल का प्रसार होता है, हे आदि भगवान्, परमनियन्ता, समस्त पवित्र तीर्थस्थानों के आश्रय! आप समस्त दीन-दुखियों के आश्रय हैं और उनका कष्ट कम करने के लिए प्रकट हुए हैं। आप हम पर कृपालु हों और हमारे कल्याण का विस्तार करें।(८.१७.८)

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध- व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥

हे प्रभु! आप सर्वव्यापी विश्वरूप इस विश्व के परम स्वतंत्र स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं। यद्यपि आप अपनी शक्ति को पदार्थ में लगाते हैं, तो भी आप सदैव अपने आदि रूप में स्थित रहते हैं और कभी उस पद से च्युत नहीं होते क्योंकि आपका ज्ञान अच्युत है और किसी भी स्थिति के लिए सदैव उपयुक्त है। आप कभी मोहग्रस्त नहीं होते। हे स्वामी! मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ।(८.१७.९)

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मी- द्योभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात् त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥१०॥

हे अनन्त! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मनुष्य को ब्रह्मा जैसी दीर्घायु, उच्च, मध्य या निम्नलोक में शरीर, असीम भौतिक ऐश्वर्य, धर्म, अर्थ तथा इन्द्रियतोष, पूर्ण दिव्यज्ञान तथा आठों योगसिद्धियाँ बड़ी आसानी से प्राप्त हो सकती हैं। अपने प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करने की बात करना तो अत्यन्त नगण्य उपलब्धि है।(८.१७.१०)
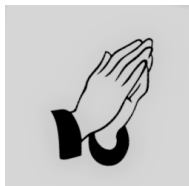
48. अदिति गर्भ-गतस्य भगवतो ब्रह्मा स्तवः

श्रीब्रह्मोवाच

जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी ने कहा : हे भगवान्! आपकी जय हो। आप सब के द्वारा महिमान्वित हैं और आपके कार्यकलाप असामान्य होते हैं। हे योगियों के प्रभु, हे प्रकृति के तीनों गुणों के नियन्ता! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। मैं आपको पुन:-पुन: नमस्कार करता हूँ।(८.१७.२५)

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ।
त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ २६ ॥

हे सर्वव्यापी भगवान् विष्णु! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ क्योंकि आप समस्त जीवोंके हृदयों के भीतर स्थित हैं। तीनों लोक आपकी नाभि के भीतर निवास करते हैं, फिर भी आप इन तीनों लोकों से परे हैं। पहले आप पृश्नि के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। मैं उन परम स्रष्टा को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्हें केवल वैदिक ज्ञान के द्वारा ही जाना जा सकता है।(८.१७.२६)

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्य- मनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ।
कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथान्तः पतितं गभीरम् ॥ २७ ॥

हे प्रभु! आप तीनों लोकों के आदि, मध्य तथा अन्त हैं और वेदों में आप असीम शक्तियों के आगार परम पुरुष के रूप में विख्यात हैं। हे स्वामी! जिस प्रकार लहरें गहरे जल में गिरी हुई टहनियों तथा पत्तियों को खींच लेती हैं उसी प्रकार परम शाश्वत काल रूप आप इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु को खींचते हैं।(८.१७.२७)

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि सम्भविष्णुः ।
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥

हे प्रभु! आप समस्त चर या अचर जीवों के आदि जनक हैं और आप प्रजापतियों के भी जनक हैं। हे स्वामी! जिस प्रकार जल में डूबते हुए व्यक्ति के लिए नाव ही एकमात्र सहारा होती है उसी तरह आप इस समय अपने स्वर्ग-पद से च्युत देवताओं के एकमात्र आश्रय हैं।(८.१७.२८)

49. सत्यव्रत कृतं श्री मत्स्यदेवा स्तोत्रं

श्रीराजोवाच

अनाद्यविद्योपहतात्मसंविद- स्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयोपसृता यमाप्नुयु- र्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥

राजा ने कहा : भगवान् की कृपा से उन लोगों को जो अनन्त काल से आत्मज्ञान खो बैठे हैं और इस अविद्या के कारण भौतिक कष्टमय बद्ध जीवन में रह रहें हैं भगवद्भक्तों से भेंट करने का अवसर मिलता है। मैं उन भगवान् को परम आध्यात्मिक गुरु स्वीकार करता हूँ।(८.२४.४६)

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ।
यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रन्थिं स भिन्द्याद् धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७ ॥
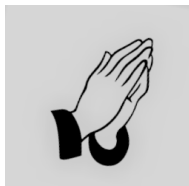
इस संसार में सुखी बनने की आकांक्षा से मूर्ख बद्धजीव सकाम कर्म करता है जिनसे केवल कष्ट ही मिलते हैं। किन्तु भगवान् की सेवा करने से मनुष्य सुख की ऐसी झूठी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। हे मेरे गुरु! मेरे हृदय से झूठी इच्छाओं की ग्रंथि को काट दें।(८.२४.४७)

यत्सेवयाग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान् विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ।
भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात् स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥

भवबन्धन से जो छूटना चाहता है उसे भगवान् की सेवा करनी चाहिए और पवित्र तथा अपवित्र कर्मों से युक्त तमोगुण का संसर्ग छोड़ देना चाहिए। इस तरह मनुष्य को अपनी मूल पहचान फिर से प्राप्त होती है, जिस प्रकार अग्नि में तपाने पर चाँदी या सोने का टुकड़ा अपना सारा मल छुड़ा कर शुद्ध हो जाता है। ऐसे अव्यय भगवान्! आप हमारे गुरु बनें क्योंकि आप अन्य सभी गुरुओं के आदि गुरु हैं।(८.२४.४८)

न यत्प्रसादायुतभागलेश- मन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंस- स्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥

न तो सारे देवता, न तथाकथित गुरू, न ही अन्य सारे लोग, स्वतंत्र रूप से या साथ मिलकर, आपकी कृपा के दस हजारवें भाग के बराबर भी कृपा प्रदान कर सकते हैं। अतएव मैं आपके चरणकमलों की शरण लेना चाहता हूँ।(८.२४.४९)

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृत- स्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥

जिस प्रकार एक अन्धा पुरुष न देख सकने के कारण दूसरे अन्धे को अपना नायक मान लेता है, उसी तरह जो लोग जीवन-लक्ष्य को नहीं जानते वे किसी न किसी धूर्त तथा मूर्ख को अपना गुरु बना लेते हैं, किन्तु हमारा लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है अतएव हम आपको अपना गुरु स्वीकार करते हैं क्योंकि आप सभी दिशाओं में देखने में समर्थ हैं और सूर्य की तरह सर्वज्ञ हैं।(८.२४.५०)

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं गतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥

तथाकथित भौतिकतावादी गुरु अपने भौतिकतावादी शिष्यों को आर्थिक विकास एवं इन्द्रियतृप्ति के विषय में उपदेश देता है और ऐसे उपदेशों से मूर्ख शिष्य अज्ञान के भौतिक संसार में पड़े रहते है। किन्तु आप शाश्वत ज्ञान प्रदान करते हैं और बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसा ज्ञान प्राप्त करके तुरन्त ही अपनी मूल वैधानिक स्थिति को प्राप्त कर लेता है।(८.२४.५१)
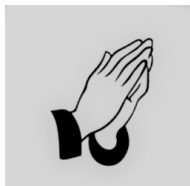
त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधी- र्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥

हे प्रभु! आप सबों के परम हितैषी तथा प्रियतम मित्र, नियन्ता, परमात्मा, परम उपदेशक,परम ज्ञान के दाता तथा समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाले हैं। यद्यपि आप हृदय में रहते हैं,किन्तु हृदय में बसी कामेच्छाओं के कारण मूर्ख व्यक्ति आपको समझ नहीं पाता।(८.२४.५२)

त्वं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ।
छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन् वचोभि- र्ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥

हे परमेश्वर! आत्म–साक्षात्कार के लिए मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। आप सभी वस्तुओं के परम नियन्ता के रूप में देवताओं द्वारा पूजित होते हैं। आप अपने उपदेशों से जीवन के प्रयोजन को प्रकट करते हुए कृपया मेरे हृदय की ग्रंथि को काट दीजिये और मुझे जीवन का लक्ष्य बतलाइये।(८.२४.५३)
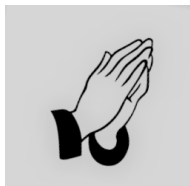
50. श्रीमद अम्बरीसस्य श्री सुदर्शन स्तवः

अम्बरीष उवाच

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ ३ ॥

महाराज अम्बरीष ने कहा : हे सुदर्शन चक्र, तुम अग्नि हो, तुम परम शक्तिमान सूर्य हो तथा तुम सारे नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा हो। तुम जल, पृथ्वी तथा आकाश हो, तुम पाँचों इन्द्रियविषय (ध्वनि,स्पर्श, रूप, स्वाद तथा गंध) हो और तुम्हीं इन्द्रियाँ भी हो।(९.५.३)

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४ ॥

हे भगवान् अच्युत के परम प्रिय, तुम एक हजार अरों वाले हो। हे संसार के स्वामी, समस्त अस्त्रों के विनाशकर्ता, भगवान् की आदि दृष्टि, मैं तुमको सादर नमस्कार करता हूँ। कृपा करके इस ब्राह्मण को शरण दो तथा इसका कल्याण करो।(९.५.४)

त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५ ॥

हे सुदर्शन चक्र, तुम धर्म हो, तुम सत्य हो, तुम प्रेरणाप्रद कथन हो, तुम यज्ञ हो तथा तुम्हीं यज्ञफल के भोक्ता हो। तुम अखिल ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता हो और तुम्हीं भगवान् के हाथों में परम दिव्य तेज हो। तुम भगवान् की मूल दृष्टि हो; अतएव तुम सुदर्शन कहलाते हो। सभी वस्तुएँ तुम्हार कार्यकलापों से उत्पन्न की हुई हैं, अतएव तुम सर्वव्यापी हो।(९.५.५)

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।
त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥

हे सुदर्शन, तुम्हारी नाभि अत्यन्त शुभ है, अतएव तुम धर्म की रक्षा करने वाले हो। तुम अधार्मिक असुरों के लिए अशुभ पुच्छल तारे के समान हो। निस्सन्देह, तुम्हीं तीनों लोकों के पालक हो। तुम दिव्य तेज से पूर्ण हो, तुम मन के समान तीव्रगामी हो और अद्‌भुत कर्म करने वाले हो। मैं केवल नम: शब्द कहकर तुम्हें सादर नमस्कार करता हूँ।(९.५.६)

त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च दृशो महात्मनाम् ।
दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते त्वद्रूपमेतत् सदसत् परावरम् ॥ ७ ॥

हे वाणी के स्वामी, धार्मिक सिद्धान्तों से पूर्ण तुम्हार तेज से संसार का अंधकार दूर हो जाता है और विद्वान पुरुषों या महात्माओं का ज्ञान प्रकट होता है। निस्सन्देह, कोई तुम्हार तेज का पार नहीं पा सकता क्योंकी सारी वस्तुएँ, चाहे प्रकट अथवा अप्रकट हों, स्थूल अथवा सूक्ष्म हों, उच्च अथवा निम्न हों, आपके तेज के द्वारा प्रकट होने वाले आपके विभिन्न रूप ही हैं।(९.५.७)

यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ।
बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृश्चन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥

हे अजित, जब तुम भगवान् द्वारा दैत्यों तथा दानवों के सैनिकों के बीच घुसने के लिए भेजे जाते हो तो तुम युद्धस्थल पर डटे रहते हो और निरन्तर उनके हाथों, पेटों, जाँघों, पाँवों तथा शिरों को विलग करते रहते हो।(९.५.८)
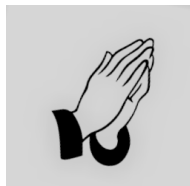
स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९ ॥

हे विश्व के रक्षक, तुमको ईर्ष्यालु शत्रुओं को मारने के लिए भगवान् अपने सर्वशक्तिशाली अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। हमारे सम्पूर्ण वंश के लाभ हेतु कृपया इस गरीब ब्राह्मण पर दया कीजिये। निश्चय ही, यह हम सब पर कृपा होगी।(९.५.९)

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥

यदि हमारे परिवार ने सुपात्रों को दान दिया है, यदि हमने कर्मकांड तथा यज्ञ संपन्न किये हैं, यदि हमने अपने-अपने वृत्तिपरक कर्तव्यों को ठीक से पूरा किया है और यदि हम विद्वान ब्राह्मणों द्वारा मार्गदर्शन पाते रहे हैं तो मैं चाहूँगा कि उनके बदले में यह ब्राह्मण सुदर्शन चक्र के द्वारा उत्पन्न जलन से मुक्त कर दिया जाय।(९.५.१०)

यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११ ॥

यदि समस्त दिव्य गुणों के आगार तथा समस्त जीवों के प्राण तथा आत्मा अद्वितीय परमेश्वर हम पर प्रसन्न हैं तो हम चाहेंगे कि यह ब्राह्मण दुर्वासा मुनि जलन की पीड़ा से मुक्त हो जाय।(९.५.११)

51. अम्सुमाथ श्री कपिला स्तवः

अंशुमानुवाच
न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ।
कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधी- विसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २१ ॥

अंशुमान ने कहा : हे भगवान्, आज तक ब्रह्माजी भी आपके अगम्य पद को ध्यान या चिन्तन द्वारा समझ पाने में असमर्थ हैं तो हम जैसों की कौन कहे जो ब्रह्मा द्वारा देवता, पशु, मनुष्य, पक्षी तथा पशु इत्यादि के विविध रूपों में उत्पन्न किये गये हैं? हम पूरी तरह अज्ञान में हैं। अतएव हम साक्षात् ब्रह्म स्वरूप आपको कैसे जान सकते हैं?(९.८.२१)

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान् विपश्यन्त्युत वा तमश्च ।
यन्मायया मोहितचेतसस्त्वां विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २२ ॥

हे स्वामी, आप सबों के हृदयों मे भलीभाँति स्थित हैं, किन्तु भौतिक शरीर से आवृत सारे जीव आपको नहीं देख पाते क्योंकि वे त्रिगुणमयी माया द्वारा प्रेरित बहिरंगा शक्ति के द्वारा प्रभावित रहते हैं। उनकी बुद्धि सतो, रजो तथा तमो गुणों से ढकी होने से वे प्रकृतिके इन तीनों गुणों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को ही देख पाते हैं। तमोगुण की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के कारण जाग्रत या सुप्त जीव प्रकृति की कार्यविधि को ही देख पाते हैं; वे आप (भगवान्) को नहीं देख सकते।(९.८.२२)

तं त्वां अहं ज्ञानघनं स्वभाव- प्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं विमूढः परिभावयामि ॥ २३ ॥

हे प्रभु, प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभाव से मुक्त हुए साधुपुरुष, यथा चारों कुमार (सनत्,सनक, सनन्दन तथा सनातन) ही ज्ञान के पुंज आपके विषय में सोच सकते हैं। भला मुझ जैसा अज्ञानी व्यक्ति आपके विषय में कैसे सोच सकता है?(९.८.२३)
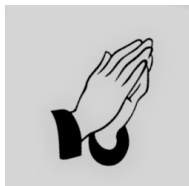
प्रशान्त मायागुणकर्मलिङ्ग- मनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २४ ॥

हे परम शान्तिमय स्वामी, यद्यपि यह प्रकृति, सारे सकाम कर्म तथा उनके फलस्वरूप भौतिक नाम तथा रूप आपकी सृष्टि हैं, तथापि आप उनसे अप्रभावित रहते हैं। अतएव आपका दिव्य नाम भौतिक नामों से भिन्न है और आपका स्वरूप भौतिक स्वरूपों से भिन्न है। आप भगवद्गीता जैसे ज्ञान का हमें उपदेश देने के लिए ही भौतिक शरीर के ही समान रूप धारण करते हैं लेकिन वस्तुतः आप रहते हैं परम आदि पुरुष ही। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।(९.८.२४)

त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ।
भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥ २५ ॥

हे भगवन्, जिनके मन काम, लोभ, ईर्ष्या तथा मोह से मोहित हैं वे आपकी माया द्वारा सृजित इस जगत में झूठे ही घर, गृहस्थी आदि में रुचि रखते हैं। वे घर, पत्नी तथा सन्तान में आसक्त रहकर इसी जगत में निरन्तर घूमते रहते हैं।(९.८.२५)

अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः ।
मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २६ ॥

हे समस्त जीवों के परमात्मा, हे भगवान्, मैं अब आपके दर्शनमात्र से सारी कामवासनाओं से मुक्त हो गया हूँ जो दुर्लंघ्य मोह तथा संसार-बन्धन के मूल कारण हैं।(९.८.२६)
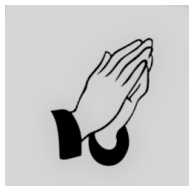
52. ब्रह्मादिदेवानाम श्री देवकिगर्भ-स्तुति

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रम सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः

देवताओं ने प्रार्थना की; हे प्रभो, आप अपने व्रत से कभी भी विचलित नहीं होते जो सदा ही पूर्ण रहता है क्योंकि आप जो भी निर्णय लेते हैं वह पूरी तरह सही होता है और किसी के द्वारा रोका नहीं जा सकता। सृष्टि, पालन तथा संहार—जगत की इन तीन अवस्थाओं में वर्तमान रहने से आप परम सत्य हैं। कोई तब तक आपकी कृपा का भाजन नहीं बन सकता जब तक वह पूरी तरह आज्ञाकारी न हो अत: इसे दिखावटी लोग प्राप्त नहीं कर सकते। आप सृष्टि के सारे अवयवों में असली सत्य हैं इसीलिए आप अन्तर्यामी कहलाते हैं। आप सबों पर समभाव रखते हैं और आपके आदेश प्रत्येक काल में हर एक पर लागू होते हैं। आप आदि सत्य हैं अत: हम नमस्कार करते हैं और आपकी शरण में आए हैं। आप हमारी रक्षा करें।(१०.२.२६)

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश् चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः

शरीर को अलंकारिक रूप में ''आदि वृक्ष'' कहा जा सकता है। यह वृक्ष भौतिक प्रकृति की भूमि पर आश्रित होता है और उसमें दो प्रकार के—सुख भोग के तथा दुख भोग के—फल लगते हैं। इसकी तीन जड़ें तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों के साथ इस वृक्ष के कारणस्वरूप हैं। शारीरिक सुख रूपी फलों के स्वाद चार प्रकार के होते हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जो पाँच ज्ञान इन्द्रियों द्वारा छ: प्रकार की परिस्थितियों—शोक, मोह, जरा, मृत्यु,भूख तथा प्यास के माध्यम से अनुभव किये जाते हैं। इस वृक्ष की छाल में सात परतें होती हैं—त्वचा, रक्त, पेशी, वसा, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य। इस वृक्ष की आठ शाखाएँ हैं जिनमें से पाँच स्थूल तत्त्व तथा तीन सूक्ष्मतत्त्व हैं—क्षिति, जल, पावक, समीर, गगन, मन, बुद्धि तथा अहंकार। शरीर रूपी वृक्ष में नौ छिद्र (कोठर) हैं—आँखें, कान, नथुने, मुँह, गुदा तथा जननेन्द्रिय। इसमें दस पत्तियाँ हैं, जो शरीर से निकलने वाली दस वायु हैं। इस शरीररूपी वृक्ष में दो पक्षी हैं—एक आत्मा तथा दूसरा परमात्मा।(१०.२.२७)

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस् त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये

हे प्रभु, आप ही कई रूपों में अभिव्यक्त इस भौतिक जगत रूपी मूल वृक्ष के प्रभावशाली कारणस्वरूप हैं। आप ही इस जगत के पालक भी हैं और संहार के बाद आप ही ऐसे हैं जिसमें सारी वस्तुएँ संरक्षण पाती हैं। जो लोग माया से आवृत हैं, वे इस जगत के पीछे आपका दर्शन नहीं कर पाते क्योंकि उनकी दृष्टि विद्वान भक्तों जैसी नहीं होती।(१०.२.२८)

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम्

हे ईश्वर, आप सदैव ज्ञान से पूर्ण रहने वाले हैं और सारे जीवों का कल्याण करने के लिए आप विविध रूपों में अवतरित होते हैं, जो भौतिक सृष्टि के परे होते हैं। जब आप इन अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं, तो आप पुण्यात्माओं तथा धार्मिक भक्तों के लिए मोहक लगते हैं किन्तु अभक्तों के लिए आप संहारकर्ता हैं।(१०.२.२९)

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम्

हे कमलनयन प्रभु, सम्पूर्ण सृष्टि के आगार रूप आपके चरणकमलों में अपना ध्यान एकाग्र करके तथा उन्हीं चरणकमलों को संसार-सागर को पार करने वाली नाव मानकर मनुष्य महाजनों (महान् सन्तों, मुनियों तथा भक्तों) के चरणचिन्हों
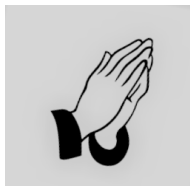
का अनुसरण करता है। इस सरल सी विधि से वह अज्ञान सागर को इतनी आसानी से पार कर लेता है मानो कोई बछड़े के खुर का चिन्ह पार कर रहा हो।(१०.२.३०)

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान्

हे द्युतिपूर्ण प्रभु, आप अपने भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए सदा तैयार रहते हैं इसीलिए आप वांछा-कल्पतरु कहलाते हैं। जब आचार्यगण अज्ञान के भयावह भवसागर को तरने के लिए आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, तो वे अपने पीछे अपनी वह विधि छोड़े जाते हैं जिससे वे पार करते हैं। चूँकि आप अपने अन्य भक्तों पर अत्यन्त कृपालु रहते हैं अतएव उनकी सहायता करने के लिए आप इस विधि को स्वीकार करते हैं।(१०.२.३१)

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस् त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः

(कोई कह सकता है कि भगवान् के चरणकमलों की शरण खोजने वाले भक्तों के अतिरिक्त भी ऐसे लोग हैं, जो भक्त नहीं हैं किन्तु जिन्होंने मुक्ति प्राप्त करने के लिए भिन्न विधियाँ अपना रखी हैं। तो उनका क्या होता है? इसके उत्तर में ब्रह्माजी तथा अन्य देवता कहते हैं) हे कमलनयन भगवान्, भले ही कठिन तपस्याओं से परम पद प्राप्त करने वाले अभक्तगण अपने को मुक्त हुआ मान लें किन्तु उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। वे कल्पित श्रेष्ठता के अपने पद से नीचे गिर जाते हैं, क्योंकि उनके मन में आपके चरणकमलों के प्रति कोई श्रद्धाभाव नहीं होता।(१०.२.३२)

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो

हे माधव, पूर्ण पुरूषोत्तम परमेश्वर, हे लक्ष्मीपति भगवान्, यदि आपके प्रेमी भक्तगण कभी भक्तिमार्ग से च्युत होते हैं, तो वे अभक्तों की तरह नहीं गिरते क्योंकि आप तब भी उनकी रक्षा करते हैं। इस तरह वे निर्भय होकर अपने प्रतिद्वन्द्वियों के मस्तकों को झुका देते हैं और भक्ति में प्रगति करते रहते हैं।(१०.२.३३)

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः
वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिस् तवार्हणं येन जनः समीहते

हे परमेश्वर, पालन करते समय आप त्रिगुणातीत दिव्य शरीर वाले अनेक अवतारों को प्रकट करते हैं। जब आप इस तरह प्रकट होते हैं, तो जीवों को वैदिक कर्म—यथा अनुष्ठान, योग,तपस्या, समाधि आपके चिंतन में भावपूर्ण तल्लीनता—में युक्त होने की शिक्षा देकर उन्हें सौभाग्य प्रदान करते हैं। इस तरह आपकी पूजा वैदिक नियमों के अनुसार की जाती है।(१०.२.३४)

सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद् विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम्
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान् प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः

हे कारणों के कारण ईश्वर, यदि आपका दिव्य शरीर गुणातीत न होता तो मनुष्य पदार्थ तथा अध्यात्म के अन्तर को न समझ पाता। आपकी उपस्थिति से ही आपके दिव्य स्वभाव को जाना जा सकता है क्योंकि आप प्रकृति के नियन्ता हैं। आपके दिव्य स्वरूप की उपस्थिति से प्रभावित हुए बिना आपके दिव्य स्वभाव को समझना कठिन है।(१०.२.३५)

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर् निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः
मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि

हे परमेश्वर, आपके दिव्य नाम तथा स्वरूप का उन व्यक्तियों को पता नहीं लग पाता, मात्र जो केवल कल्पना के मार्ग पर चिन्तन करते हैं। आपके नाम, रूप तथा गुणों का केवल भक्ति द्वारा ही पता लगाया जा सकता है।(१०.२.३६)

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोर् आविष्टचेता न भवाय कल्पते

विविध कार्यों में लगे रहने पर भी जिन भक्तों के मन आपके चरणकमलों में पूरी तरह लीन रहते हैं और जो निरन्तर आपके दिव्य नामों तथा रूपों का श्रवण, कीर्तन, चिन्तन करते हैं तथा अन्यों को स्मरण कराते हैं, वे सदैव दिव्य पद पर स्थित रहते हैं और इस प्रकार से पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् को समझ सकते हैं।(१०.२.३७)

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः
दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकैः सुशोभनैर् द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम्

हे प्रभु, हम भाग्यशाली हैं कि आपके प्राकट्य से इस धरा पर असुरों के कारण जो भारी बोझा है, वह शीघ्र ही दूर हो जाता है। निस्सन्देह हम अत्यन्त भाग्यशाली हैं क्योंकि हम इस धरा में तथा स्वर्गलोक में भी आपके चरणकमलों को अलंकृत करने वाले शंख, चक्र, पद्म तथा गदा के चिन्हों को देख सकेंगे।(१०.२.३८)

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि
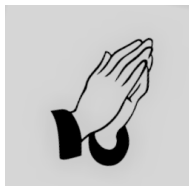
हे परमेश्वर, आप कोई सामान्य जीव नहीं जो सकाम कर्मों के अधीन इस भौतिक जगत में उत्पन्न होता है। अतः इस जगत में आपका प्राकट्य या जन्म एकमात्र ह्लादिनी शक्ति के कारण होता है। इसी तरह आपके अंश रूप सारे जीवों के कष्टों—यथा जन्म, मृत्यु तथा जरा का कोई दूसरा कारण नहीं सिवाय इसके कि ये सभी आपकी बहिरंगा शक्ति द्वारा संचालित होते हैं।(१०.२.३९)

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस- राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते

हे परम नियन्ता, आप इसके पूर्व अपनी कृपा से सारे विश्व की रक्षा करने के लिए मत्स्य,अश्व, कच्छप, नृसिंहदेव, वराह, हंस, भगवान् रामचन्द्र, परशुराम का तथा देवताओं में से वामन के रूप में अवतरित हुए हैं। अब आप इस संसार का उत्पातों कम करके अपनी कृपा से पुनः हमारी रक्षा करें। हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।(१०.२.४०)

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान् अंशेन साक्षाद्भगवान् भवाय नः
माभूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर् गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः

हे माता देवकी, आपके तथा हमारे सौभाग्य से भगवान् अपने सभी स्वांशों यथा बलदेव समेत अब आपके गर्भ में हैं। अतएव आपको उस कंस से भयभीत नहीं होना है, जिसने भगवान् के हाथों से मारे जाने की ठान ली है। आपका शाश्वत पुत्र कृष्ण सारे यदुवंश का रक्षक होगा।(१०.२.४१)

53. श्री वसुदेवाकृत श्री वासुदेव स्तवः

श्रीवसुदेव उवाच

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः
केवलानुभवानन्द- स्वरूपः सर्वबुद्धिदृक्

वसुदेव ने कहा : हे भगवान्, आप इस भौतिक जगत से परे परम पुरुष हैं और आप परमात्मा हैं। आपके स्वरूप का अनुभव उस दिव्य ज्ञान द्वारा हो सकता है, जिससे आप भगवान् के रूप में समझे जा सकते हैं। अब आपकी स्थिति मेरी समझ में भलीभाँति आ गई है।(१०.३.१३)

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम्
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे

हे भगवन्, आप वही पुरुष हैं जिसने प्रारम्भ में अपनी बहिरंगा शक्ति से इस भौतिक जगत की सृष्टि की। तीन गुणों (सत्त्व, रजस् तथा तमस्) वाले इस जगत की सृष्टि के बाद ऐसा लगता है कि आपने उसके भीतर प्रवेश किया है यद्यपि यथार्थ तो यह है कि आपने प्रवेश नहीं किया।(१०.३.१४)

यथेमेऽविकृता भावास् तथा ते विकृतैः सह
नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि
सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव
प्रागेव विद्यमानत्वान् न तेषामिह सम्भवः
एवं भवान् बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर् ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः
अनावृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः

सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व) अविभाज्य है, किन्तु भौतिक गुणों के कारण यह पृथ्वी जल, अग्नि, वायु तथा आकाश में विलग होती सी प्रतीत होती है। ये विलग हुई शक्तियाँ जीवभूत के कारण मिलकर विराट जगत को दृश्य बनाती हैं, किन्तु तथ्य तो यह है कि विराट जगत की सृष्टि के पहले से ही महत् तत्त्व विद्यमान रहता है। अत: महत् तत्त्व का वास्तव में सृष्टि में प्रवेश नहीं होता है। इसी तरह यद्यपि आप अपनी उपस्थिति के कारण हमारी इन्द्रियों द्वारा अनुभवगम्य हैं, किन्तु आप न तो हमारी इन्द्रियों द्वारा अनुभवगम्य हो पाते हैं न ही हमारे मन या वचनों द्वारा अनुभव किए जाते हैं (अवाङ्मनसागोचर)। हम अपनी इन्द्रियों से कुछ ही वस्तुएँ देख पाते हैं, सारी वस्तुएँ नहीं। उदाहरणार्थ, हम अपनी आँखों का प्रयोग देखने के लिए कर सकते हैं, आस्वाद के लिए नहीं। फलस्वरूप आप इन्द्रियों के परे हैं। यद्यपि आप प्रकृति के तीनों गुणों से संबद्ध हैं, आप उनसे अप्रभावित रहते हैं। आप हर वस्तु के मूल कारण हैं,सर्वव्यापी अविभाज्य परमात्मा हैं। अतएव आपके लिए कुछ भी बाहरी या भीतरी नहीं है। आपने कभी भी देवकी के गर्भ में प्रवेश नहीं किया प्रत्युत आप पहले से वहाँ उपस्थित थे(१०.३.१५-१७)

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः
विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान्

जो व्यक्ति प्रकृति के तीन गुणों से बने अपने दृश्य शरीर को आत्मा से स्वतंत्र मानता है, वह अस्तित्व के आधार से ही अनजान होता है और इसलिए वह मूढ़ है। जो विद्वान हैं, वे इस निर्णय को नहीं मानते क्योंकि विवेचना द्वारा यह समझा

जा सकता है कि आत्मा से निराश्रित दृश्य शरीर तथा इन्द्रियाँ सारहीन हैं। यद्यपि इस निर्णय को अस्वीकार कर दिया गया है, किन्तु मूर्ख व्यक्ति इसे सत्य मानता है।(१०.३.१८)

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात्
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः

हे प्रभु, विद्वान वैदिक पंडित कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व का सृजन, पालन एवं संहार आपके द्वारा होता है तथा आप प्रयास से मुक्त, प्रकृति के गुणों से अप्रभावित तथा अपनी दिव्य स्थिति में अपरिवर्तित रहते हैं। आप परब्रह्म हैं और आप में कोई विरोध नहीं है। प्रकृति के तीनों गुण—सतो, रजो तथा तमोगुण आपके नियंत्रण में हैं अत: सारी घटनाएँ स्वत: घटित होती हैं।(१०.३.१९)

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये

हे भगवन्, आपका स्वरूप तीनों भौतिक गुणों से परे है फिर भी तीनों लोकों के पालन हेतु आप सतोगुणी विष्णु का श्वेत रंग धारण करते हैं, सृजन के समय जो रजोगुण से आवृत होता है आप लाल प्रतीत होते हैं और अन्त में अज्ञान से आवृत संहार के समय आप श्याम प्रतीत होते हैं।(१०.३.२०)

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर् गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर् निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः

हे परमेश्वर, हे समस्त सृष्टि के स्वामी, आप इस जगत की रक्षा करने की इच्छा से मेरे घर में प्रकट हुए हैं। मुझे विश्वास है कि आप क्षत्रियों का बाना धारण करने वाले राजनीतिज्ञों के नायकत्व में जो असुरों की सेनाएँ संसार भर में विचरण कर रही हैं उनका वध करेंगे। निर्दोष जनता की सुरक्षा के लिए आपके द्वारा इनका वध होना ही चाहिए।(१०.३.२१)

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः

हे परमेश्वर, हे देवताओं के स्वामी, यह भविष्यवाणी सुनकर कि आप हमारे घर में जन्म लेंगे और उसका वध करेंगे, इस असभ्य कंस ने आपके कई अग्रजों को मार डाला है। वह ज्योंही अपने सेनानायकों से सुनेगा कि आप प्रकट हुए हैं, वह आपको मारने के लिए हथियार समेत तुरन्त ही आ धमकेगा।(१०.३.२२)

54. श्री देवकीकृत भगवत स्तुति

श्रीदेवक्युवाच

रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः

श्रीदेवकी ने कहा : हे भगवन, वेद अनेक हैं। उसमें से कुछ आपको शब्दों तथा मन द्वारा अव्यक्त बतलाते हैं फिर भी आप सम्पूर्ण विश्व के उद्गम हैं। आप ब्रह्म हैं, सभी वस्तुओं से बड़े और सूर्य के समान तेज से युक्त। आपका कोई भौतिक कारण नहीं, आप परिवर्तन तथा विचलन से मुक्त हैं और आपकी कोई भौतिक इच्छाएँ नहीं हैं। इस तरह वेदों का कथन है कि आप ही सार हैं। अत: हे प्रभु, आप समस्त वैदिक कथनों के उद्गम हैं और आपको समझ लेने पर मनुष्य हर वस्तु धीरे धीरे समझ
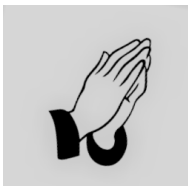
जाता है। आप ब्रह्मज्योति तथा परमात्मा से भिन्न हैं फिर भी आप उनसे भिन्न नहीं हैं। आपसे ही सब वस्तुएँ उद्‌भूत हैं। दरअसल आप ही समस्त कारणों के कारण हैं, आप समस्त दिव्य ज्ञान की ज्योति भगवान् विष्णु हैं।(१०.३.२४)

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः

लाखों वर्षों बाद विश्व-संहार के समय जब सारी व्यक्त तथा अव्यक्त वस्तुएँ काल के वेग से नष्ट हो जाती हैं, तो पाँचों स्थूल तत्त्व सूक्ष्म स्वरूप ग्रहण करते हैं और व्यक्त वस्तुएँ अव्यक्त बन जाती हैं। उस समय आप ही रहते हैं और आप अनन्त शेष-नाग कहलाते हैं।(१०.३.२५)

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम्
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस् तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये

हे भौतिक शक्ति के प्रारम्भकर्ता, यह अद्‌भुत सृष्टि शक्तिशाली काल के नियंत्रण में कार्य करती है, जो सेकंड, मिनट, घंटा तथा वर्षों में विभाजित है। यह काल तत्त्व, जो लाखों वर्षों तक फैला हुआ है, भगवान् विष्णु का ही अन्य रूप है। आप अपनी लीलाओं के लिए काल के नियंत्रक की भूमिका अदा करते हैं, किन्तु आप समस्त सौभाग्य के आगार हैं। मैं पूरी तरह आपकी शरणागत हूँ।(१०.३.२६)

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन् लोकान् सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत्
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य सुस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति

इस भौतिक जगत में कोई भी व्यक्ति जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग—इन चार नियमों से छूट नहीं पाया भले ही वह विविध लोकों में क्यों न भाग जाए। किन्तु हे प्रभु, अब चूँकि आप प्रकट हो चुके हैं अतः मृत्यु आपके भय से दूर भाग रही है और सारे जीव आपकी दया से आपके चरणकमलों की शरण प्राप्त करके पूर्ण मानसिक शान्ति की नींद सो रहे हैं।(१०.३.२७)
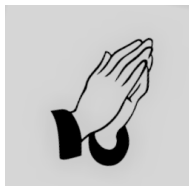
स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस् त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहासि
रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः

हे प्रभु, आप अपने भक्तों के भय को दूर करने वाले हैं अतएव आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप कंस के विकराल भय से हमें बचाइए और हमें संरक्षण प्रदान कीजिए। योगीजन आपके विष्णु रूप का ध्यान में अनुभव करते हैं। कृपया इस रूप को उनके लिए अदृश्य बना दीजिए जो केवल भौतिक आँखों से देख सकते हैं।''(१०.३.२८)

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः

हे मधुसूदन, आपके प्रकट होने से मैं कंस के भय से अधिकाधिक अधीर हो रही हूँ। अतः कुछ ऐसा कीजिए कि वह पापी कंस यह न समझ पाए कि आपने मेरे गर्भ से जन्म लिया है।(१०.३.२९)

उपसंहर विश्वात्मन्न् अदो रूपमलौकिकम्
शङ्खचक्रगदापद्म- श्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्

हे प्रभु, आप सर्वव्यापी भगवान् हैं और आपका यह चतुर्भुज रूप, जिसमें आप शंख, चक्र,गदा तथा पद्म धारण किए हुए हैं, इस जगत के लिए अप्राकृत है। कृपया इस रूप को समेट लीजिए (और सामान्य मानवी बालक बन जाइए जिससे मैं आपको कहीं छिपाने का प्रयास कर सकूँ)।(१०.३.३०)

विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान्
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूद् अहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत्

संहार के समय चर तथा अचर जीवों से युक्त सारी सृष्टियाँ आपके दिव्य शरीर में प्रवेश कर जाती हैं और बिना कठिनाई के वहीं ठहरी रहती हैं। किन्तु अब वही दिव्य रूप मेरे गर्भ से जन्म ले चुका है। लोग इस पर विश्वास नहीं करेंगे और मैं हँसी की पात्र बन जाऊँगी।(१०.३.३१)

55. श्री कृष्ण स्तवः

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस् त्वमाद्यः पुरुषः परः
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः

हे कृष्ण, हे कृष्ण, आपकी योगशक्ति अचिन्त्य है। आप सर्वोच्च आदि-पुरुष हैं, आप समस्त कारणों के कारण हैं, आप पास रह कर भी दूर हैं और इस भौतिक सृष्टि से परे हैं। विद्वान ब्राह्मण जानते हैं (सर्वं खल्विदं ब्रह्म—इस वैदिक कथन के आधार पर) कि आप सर्वेसर्वा हैं और यह विराट विश्व अपने स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों में आपका ही स्वरूप है।(१०.१०.२९)

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः
त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्

आप हर वस्तु के नियन्ता भगवान् हैं। आप ही हर जीव का शरीर, प्राण, अहंकार तथा इन्द्रियाँ हैं। आप परम पुरुष, अक्षय नियन्ता विष्णु हैं। आप काल, तात्कालिक कारण और तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों—वाली भौतिक प्रकृति हैं। आप इस भौतिक जगत के आदि कारण हैं। आप परमात्मा हैं। अतएव आप हर एक जीव के हृदय की बात को जानने वाले हैं।(१०.१०.३०-३१)

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः
को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः

हे प्रभु, आप सृष्टि के पूर्व से विद्यमान हैं। अतः इस जगत में भौतिक गुणों वाले शरीर में बन्दी रहने वाला ऐसा कौन है, जो आपको समझ सके ?(१०.१०.३२)

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे
आत्मद्योतगुणैश्छन्न- महिम्ने ब्रह्मणे नमः

अपनी ही शक्ति से आच्छादित महिमा वाले हे प्रभु, आप भगवान् हैं। आप सृष्टि के उद्गम,संकर्षण, हैं और चतुर्व्यूह के उद्गम, वासुदेव, हैं। आप सर्वस्व होने से परब्रह्म हैं अतएव हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।(१०.१०.३३)
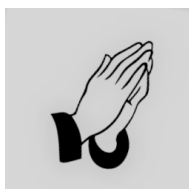
यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः
तैस्तैरतुल्यातिशयैर् वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः
स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च
अवतीर्णोऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम्

आप मत्स्य, कूर्म, वराह जैसे शरीरों में प्रकट होकर ऐसे प्राणियों द्वारा संपन्न न हो सकने वाले कार्यकलाप—असामान्य, अतुलनीय, असीम शक्ति वाले दिव्य कार्य—प्रदर्शित करते हैं। अतएव आपके ये शरीर भौतिक तत्त्वों से नहीं बने होते अपितु आपके अवतार होते हैं। आप वही भगवान् हैं, जो अब अपनी पूर्ण शक्ति के साथ इस जगत के सारे जीवों के लाभ के लिए प्रकट हुए हैं।(१०.१०.३४-३५)

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः

हे परम कल्याण, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं क्योंकि आप परम शुभ हैं। हे यदुवंश के प्रसिद्ध वंशज तथा नियन्ता, हे वसुदेव-पुत्र, हे परम शान्त, हम आपके चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं।(१०.१०.३६)

अनुजानीहि नौ भूमंस् तवानुचरकिङ्करौ
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात्

हे परम रूप, हम सदैव आपके दासों के, विशेष रूप से नारदमुनि के दास हैं। अब आप हमें अपने घर जाने की अनुमति दें। यह तो नारदमुनि की कृपा है कि हम आपका साक्षात् दर्शन कर सके।(१०.१०.३७)

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्

अब से हमारे सभी शब्द आपकी लीलाओं का वर्णन करें, हमारे कान आपकी महिमा का श्रवण करें, हमारे हाथ, पाँव तथा अन्य इन्द्रियाँ आपको प्रसन्न करने के कार्यों में लगें तथा हमारे मन सदैव आपके चरणकमलों का चिन्तन करें। हमारे सिर इस संसार की हर वस्तु को नमस्कार करें क्योंकि सारी वस्तुएँ आपके ही विभिन्न रूप हैं और हमारी आँखें आपसे अभिन्न वैष्णवों के रूपों का दर्शन करें।(१०.१०.३८)

56. ब्रह्मा स्तुति

श्रीब्रह्मोवाच
नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु- लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय

ब्रह्मा ने कहा : हे प्रभु, आप ही एकमात्र पूज्य भगवान् हैं अतएव आपको प्रसन्न करने के लिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ और आपकी स्तुति करता हूँ। हे ग्वालनरेश पुत्र, आपका दिव्य शरीर नवीन बादलों के समान गहरा नीला है; आपके वस्त्र बिजली के समान दीप्यमान हैं और आपके मुखमण्डल का सौन्दर्य गुञ्जा के बने आपके कुण्डलों से तथा सिर पर लगे मोरपंख से बढ़ जाता है। अनेक वन-फूलों तथा पत्तियों की माला पहने तथा चराने की छड़ी (लकुटी), शृंग और वंशी से सज्जित आप अपने हाथ में भोजन का कौर लिए हुए सुन्दर रीति से खड़े हुए हैं।(१०.१४.१)
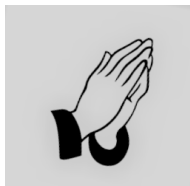
अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः

हे प्रभु, न तो मैं, न ही अन्य कोई आपके इस दिव्य शरीर के सामर्थ्य का अनुमान लगासकता है, जिसने मुझ पर इतनी कृपा दिखाई है। आपका शरीर आपके शुद्ध भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए प्रकट होता है। यद्यपि मेरा मन भौतिक कार्यकलापों से पूरी तरह विरत है, तो भी मैं आपके साकार रूप को नहीं समझ पाता। तो भला मैं आपके ही अन्तर में आपके द्वारा अनुभूत सुख को कैसे समझ सकता हूँ?(१०.१४.२)

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर् ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्

जो लोग अपने प्रतिष्ठित सामाजिक पदों पर रहते हुए ज्ञान-विधि का तिरस्कार करते हैं और मन, वचन और कर्मों से आपके तथा आपके कार्यकलापों के गुणगान के प्रति सम्मान व्यक्त करते हैं और आप तथा आपके द्वारा गुंजित इन कथाओं में अपना जीवन न्योछावर कर देते हैं, वे निश्चित रूप से आपको जीत लेते हैं अन्यथा आप तीनों लोकों में किसी के द्वारा भी अजेय हैं।(१०.१४.३)

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्

हे प्रभु, आत्म-साक्षात्कार का सर्वोत्तम मार्ग तो आपकी ही भक्ति है। यदि कोई इस मार्ग को त्याग करके ज्ञान के अनुशीलन में प्रवृत्त होता है, तो उसे क्लश उठाना होगा और वांछित फल भी नहीं मिल पाएगा। जिस तरह थोथी भूसी को पीटने से अन्न (गेहूँ) नहीं मिलता उसी तरह जो केवल चिन्तन करता है उसे आत्म-साक्षात्कार नहीं हो पाता। उसके हाथ केवल क्लश लगता है।(१०.१४.४)

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिनस् त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम्

हे सर्वशक्तिमान, भूतकाल में इस संसार में अनेक योगीजनों ने अपने कर्तव्य निभाते हुए तथा अपने सारे प्रयासों को आपको अर्पित करते हुए भक्तिपद प्राप्त किया है। हे अच्युत, आपके श्रवण तथा कीर्तन द्वारा संपन्न ऐसी भक्ति से वे आपको जान पाये और आपकी शरण में जाकर आपके परमधाम को प्राप्त कर सके।(१०.१४.५)

तथापि भूमन्महिमागुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः
अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा

किन्तु अभक्तगण आपके पूर्ण साकार रूप में आपका अनुभव नहीं कर सकते। फिर भी हृदय के अन्दर आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा वे निर्विशेष ब्रह्म के रूप में आपका अनुभव कर सकते हैं। किन्तु वे ऐसा तभी कर सकते हैं जब वे अपने मन तथा इन्द्रियों को सारी भौतिक उपाधियों तथा इन्द्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति से शुद्ध कर लें। केवल इस विधि से ही उन्हें आपका निर्विशेष स्वरूप प्रकट हो सकेगा।(१०.१४.६)

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर् भूपांशवः खे मिहिका द्युभासः
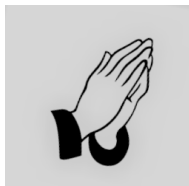
समय के साथ, विद्वान दार्शनिक या विज्ञानी, पृथ्वी के सारे परमाणु, हिम के कण या शायद सूर्य, नक्षत्र तथा ग्रहों से निकलने वाले ज्योति कणों की भी गणना करने में समर्थ हो सकते हैं किन्तु इन विद्वानों में ऐसा कौन है, जो आप में अर्थात् पूर्ण पुरूषोत्तम परमेश्वर में निहित असीम दिव्य गुणों का आकलन कर सके। ऐसे भगवान् समस्त जीवात्माओं के कल्याण के लिए इस धरती पर अवतरित हुए हैं।(१०.१४.७)

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्

हे प्रभु, जो व्यक्ति अपने विगत दुष्कर्मों के फलों को धैर्यपूर्वक सहते हुए तथा अपने मन,वाणी तथा शरीर से आपको नमस्कार करते हुए सत्यनिष्ठा से आपकी अहैतुकी कृपा प्रदत्त किये जाने की प्रतीक्षा करता है, वह अवश्य ही मोक्ष का भागी होता है क्योंकि यह उसका अधिकार बन जाता है।(१०.१४.८)

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ

हे प्रभु, मेरी अशिष्टता को जरा देखें! आपकी शक्ति की परीक्षा करने के लिए मैंने अपनी मायामयी शक्ति से आपको आच्छादित करने का प्रयत्न किया जबकि आप असीम तथा आदि परमात्मा हैं, जो मायापतियों को भी मोहित करनेवाले हैं। आपके सामने भला मैं क्या हूँ? विशाल अग्नि की उपस्थिति में मैं छोटी चिनगारी की तरह हूँ।(१०.१४.९)

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति

अतएव हे अच्युत भगवान्, मेरे अपराधों को क्षमा कर दें। मैं रजोगुण से उत्पन्न हुआ हूँ और स्वयं को आपसे पृथक् (स्वतंत्र) नियन्ता मानने के कारण मैं निरा मूर्ख हूँ। अज्ञान के अंधकार से मेरी आँखें अंधी हो चुकी हैं जिसके कारण मैं अपने को ब्रह्माण्ड का अजन्मा स्रष्टा समझ रहा हूँ। किन्तु मुझे आप अपना सेवक मानें और अपनी दया का पात्र बना लें।(१०.१४.१०)
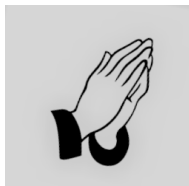
क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्

कहाँ मैं अपने हाथ के सात बालिश्तों के बराबर एक क्षुद्र प्राणी जो भौतिक प्रकृति, समग्र भौतिक शक्ति, मिथ्या अहंकार, आकाश, वायु, जल तथा पृथ्वी से बने घड़े-जैसे ब्रह्माण्ड से घिरा हुआ हूँ! और कहाँ आपकी महिमा! आपके शरीर के रोमकूपों से होकर असंख्य ब्रह्माण्ड उसी प्रकार आ-जा रहे हैं जिस तरह खिड़की की जाली के छेदों से धूल कण आते-जाते रहते हैं।(१०.१४.११)

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः

हे प्रभु अधोक्षज, क्या कोई माता अपने गर्भ के भीतर स्थित शिशु द्वारा लात मारे जाने को अपराध समझती है? क्या आपके उदर के बाहर वास्तव में ऐसी किसी वस्तु का अस्तित्व है, जिसे दार्शनिक जन ''है'' या ''नहीं है'' की उपाधि प्रदान कर सकें ?(१०.१४.१२)

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात्

विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा किन्त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि

हे प्रभु, ऐसा कहा जाता है कि जब प्रलय के समय तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं, तो आपके अंश, नारायण, जल में लेट जाते हैं, उनकी नाभि से धीरे-धीरे एक कमल का फूल निकलता है और उस फूल से ब्रह्मा का जन्म होता है। अवश्य ही ये वचन झूठे नहीं हैं। तो क्या मैं आपसे उत्पन्न नहीं हूँ ?(१०.१४.१३)

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनाम् आत्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात् तच्चापि सत्यं न तवैव माया

हे परम नियन्ता, प्रत्येक देहधारी जीव के आत्मा तथा समस्त लोकों के शाश्वत साक्षी होने के कारण क्या आप आदि नारायण नहीं हैं ? निस्सन्देह, भगवान् नारायण आपके ही अंश हैं और वे नारायण इसलिए कहलाते हैं क्योंकि ब्रह्माण्ड के आदि जल के जनक हैं। वे सत्य हैं, आपकी माया से उत्पन्न नहीं हैं।(१०.१४.१४)

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव
किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि

हे प्रभु, यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को शरण देने वाला आपका यह दिव्य शरीर वास्तव में जल में शयन करता है, तो फिर आप मुझे तब क्यों नहीं दिखे जब मैं आपको खोज रहा था ? और तब क्यों आप सहसा प्रकट नहीं हो गये थे यद्यपि मैं अपने हृदय में आपको ठीक से देख नहीं पाया था।(१०.१४.१५)

अत्रैव मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते

हे प्रभु, आपने इसी अवतार में यह सिद्ध कर दिया है कि आप माया के परम नियंत्रक हैं। यद्यपि आप अब इस ब्रह्माण्ड के भीतर हैं किन्तु सारा ब्रह्माण्ड आपके दिव्य शरीर के भीतर है—आपने इस तथ्य को माता यशोदा के समक्ष अपने उदर के भीतर ब्रह्माण्ड दिखलाकर प्रदर्शित कर दिया है।(१०.१४.१६)

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा
तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना

जिस तरह आप समेत यह सारा ब्रह्माण्ड आपके उदर में प्रदर्शित किया गया था उसी तरह अब यह उसी रूप में यहाँ पर प्रकट हुआ है। आपकी अचिन्त्य शक्ति की व्यवस्था के बिना भला ऐसा कैसे घटित हो सकता है ? (१०.१४.१७)

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितम्
एकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्
तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते

क्या आपने आज मुझे यह नहीं दिखलाया कि आप स्वयं तथा इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु आपकी अचिन्त्य शक्ति के ही प्राकट्य हैं ? सर्वप्रथम आप अकेले प्रकट हुए, तत्पश्चात् अठस वृन्दावन के बछड़ों तथा अपने मित्र ग्वालबालों के रूप में प्रकट हुए। इसके बाद आप उतने ही चतुर्भुजी विष्णु रूपों में प्रकट हुए जो मुझ समेत समस्त जीवों द्वारा पूजे जा

रहे थे। तत्पश्चात् आप उतने ही संपूर्ण ब्रह्माण्डों के रूप में प्रकट हुए। तदनन्तर आप अद्वितीय परम ब्रह्म के अपने अनन्त रूप में वापस आ गये हैं।(१०.१४.१८)

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्य् आत्मात्मना भासि वितत्य मायाम्
सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः

आपकी वास्तविक दिव्य स्थिति से अपरिचित व्यक्तियों के लिए आप इस जगत के अंश रूप में अपने को अपनी अचिन्त्य शक्ति के अंश द्वारा प्रकट करते हुए अवतरित होते हैं। इस तरह ब्रह्माण्ड के सृजन के लिए आप मेरे (ब्रह्मा) रूप में, इसके पालन के लिए अपने ही (विष्णु) रूप में तथा इसके संहार के लिए आप त्रिनेत्र (शिव) के रूप में प्रकट होते हैं।(१०.१४.१९)

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादःस्वपि तेऽजनस्य
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च

हे प्रभु, हे परम स्रष्टा एवं स्वामी, यद्यपि आप अजन्मा हैं किन्तु श्रद्धाविहीन असुरों के मिथ्या गर्व को चूर करने तथा अपने सन्त-सदृश भक्तों पर दया दिखाने के लिए आप देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों, पशुओं तथा जलचरों तक के बीच में जन्म लेते हैं।(१०.१४.२०)

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्
क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्

हे भूमन, हे भगवन्, हे परमात्मा, हे योगेश्वर, आपकी लीलाएँ इन तीनों लोकों में निरन्तर चलती रहती हैं किन्तु इसका अनुमान कौन लगा सकता है कि आप कहाँ, कैसे और कब अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं और इन असंख्य लीलाओं को संपन्न कर रहे हैं? इस रहस्य को कोई नहीं समझ सकता कि आपकी आध्यात्मिक शक्ति किस प्रकार से कार्य करती है।(१०.१४.२१)

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम्
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति

अतः यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जो कि स्वप्न के तुल्य है प्रकृति से असत् है फिर भी असली (सत्) प्रतीत होता है और इस तरह यह मनुष्य की चेतना को प्रच्छन्न कर लेता है और बारम्बार दुख का कारण बनता है। यह ब्रह्माण्ड सत्य इसलिए लगता है क्योंकि यह आप से उद्‌भूत माया की शक्ति द्वारा प्रकट किया जाता है जिनके असंख्य दिव्य रूप शाश्वत सुख तथा ज्ञान से पूर्ण हैं।(१०.१४.२२)

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णाद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः

आप ही परमात्मा, आदि पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्, परम सत्य, स्वयंप्रकट, अनन्त तथा अनादि हैं। आप शाश्वत तथा अच्युत, पूर्ण, अद्वितीय तथा समस्त भौतिक उपाधियों से मुक्त हैं। न तो आपके सुख को रोका जा सकता है, न ही आपका भौतिक कल्मष से कोई नाता है। आप विनाशरहित और अमृत हैं।(१०.१४.२३)

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम्

जिन्होंने सूर्य जैसे आध्यात्मिक गुरु से ज्ञान की स्पष्ट दृष्टि प्राप्त कर ली है वे आपको समस्त आत्माओं की आत्मा तथा हर एक के परमात्मा के रूप में देख सकते हैं। इस तरह आपको आदि पुरुषस्वरूप समझकर वे मायारूपी भव-सागर को पार कर सकते हैं।(१०.१४.२४)

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम्
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा

जिस व्यक्ति को रस्सी से सर्प का भ्रम हो जाता है, वह भयभीत हो उठता है किन्तु यह अनुभव करने पर कि तथाकथित सर्प तो था ही नहीं, वह अपना भय त्याग देता है। इसी प्रकार जो लोग आपको समस्त आत्माओं (जीवों) के परमात्मा के रूप में नहीं पहचान पाते उनके लिए विस्तृत मायामय संसार उत्पन्न होता है किन्तु आपका ज्ञान होने पर वह तुरन्त दूर हो जाता है।(१०.१४.२५)

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात्
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी

भव-बन्धन तथा मोक्ष दोनों ही अज्ञान की अभिव्यक्तियाँ हैं। सच्चे ज्ञान की सीमा के बाहर होने के कारण, इन दोनों का अस्तित्व मिट जाता है जब मनुष्य ठीक से यह समझ लेता है कि शुद्ध आत्मा, पदार्थ से भिन्न है और सदैव पूर्णतया चेतन है। उस समय बन्धन तथा मोक्ष का कोई महत्व नहीं रहता जिस तरह सूर्य के परिप्रेक्ष्य में दिन तथा रात का कोई महत्व नहीं होता।(१०.१४.२६)

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता

जरा उन अज्ञानी पुरुषों की मूर्खता तो देखिये जो आपको मोह की भिन्न अभिव्यक्ति मानते हैं और अपने (आत्मा) को, जो कि वास्तव में आप हैं, अन्य कुछ—भौतिक शरीर—मानते हैं। ऐसे मूर्खजन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परमात्मा की खोज परम पुरुष आप से बाहर अन्यत्र की जानी चाहिए।(१०.१४.२७)

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः

हे अनन्त भगवान्, सन्तजन आपसे भिन्न हर वस्तु का तिरस्कार करते हुए अपने ही शरीर के भीतर आपको खोज निकालते हैं। निस्सन्देह, विभेद करनेवाले व्यक्ति भला किस तरह अपनेसमक्ष पड़ी हुई रस्सी की असली प्रकृति को जान सकते हैं जब तक वे इस भ्रम का निराकरण नहीं कर लेते कि यह सर्प है ?(१०.१४.२८)

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-प्रसादलेशानुगृहीत एव हि
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्

हे प्रभु, यदि किसी पर आपके चरणकमलों की लेशमात्र भी कृपा हो जाती है, तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। किन्तु जो लोग भगवान् को समझने के लिए चिन्तन करते हैं, वे अनेक वर्षों तक वेदों का अध्ययन करते रहने पर भी आपको जान नहीं पाते।(१०.१४.२९)

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्
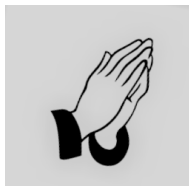
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्

अत: हे प्रभु, मेरी प्रार्थना है कि मैं इतना भाग्यशाली बन सकूँ कि इसी जीवन में ब्रह्मा के रूप में या दूसरे जीवन में जहाँ कहीं भी जन्म लूँ, मेरी गणना आपके भक्तों में हो। मैं प्रार्थना करता हूँ कि चाहे पशु योनि में ही सही, मैं जहाँ कहीं भी होऊँ, आपके चरणकमलों की भक्ति में लग सकूँ।(१०.१४.३०)

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः

हे सर्वशक्तिमान भगवान्, वृन्दावन की गौवें तथा स्त्रियाँ कितनी भाग्यशालिनी हैं जिनके बछड़े तथा पुत्र बनकर आपने परम प्रसन्नतापूर्वक एवं संतोषपूर्वक उनके स्तनपान का अमृत पिया है! अनन्तकाल से अब तक संपन्न किये गये सारे वैदिक यज्ञों से भी आपको उतना सन्तोष नहीं हुआ होगा।(१०.१४.३१)

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्

नन्द महाराज, सारे ग्वाले तथा व्रजभूमि के अन्य सारे निवासी कितने भाग्यशाली हैं! उनके सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है क्योंकि दिव्य आनन्द के स्रोत परम सत्य अर्थात् सनातन परब्रह्म उनके मित्र बन चुके हैं।(१०.१४.३२)

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ताम् एकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः
एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते

वृन्दावन के इन वासियों की सौभाग्य सीमा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता; फिर भी विविध इन्द्रियों के ग्यारह अधिष्ठाता देवता हम, जिनमें शिवजी प्रमुख हैं, परम भाग्यशाली हैं क्योंकि वृन्दावन के इन भक्तों की इन्द्रियाँ वे प्याल□ हैं जिनसे हम आपके चरणकमलों का अमृत तुल्य मादक मधुपेय बारम्बार पीते हैं।(१०.१४.३३)

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्दस् त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव

मेरा संभावित परम सौभाग्य यह होगा कि मैं गोकुल के इस वन में जन्म ले सकूँ और इसके निवासियों में से किसी के भी चरणकमलों से गिरी हुई धूल से अपने सिर का अभिषेक करूँ। उनका सारा जीवनसार पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् मुकुन्द हैं जिनके चरणकमलों की धूल की खोज आज भी वैदिक मंत्रों में की जा रही है।(१०.१४.३४)

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति नश्
चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते

मेरा मन मोहग्रस्त हो जाता है जब मैं यह सोचने का प्रयास करता हूँ कि कहीं भी आपके अतिरिक्त अन्य कोई पुरस्कार (फल) क्या हो सकता है? आप समस्त वरदानों के साकार रूप हैं, जिन्हें आप वृन्दावन के ग्वाल जाति के निवासियों को प्रदान करते हैं। आपने पहले ही उस पूतना द्वारा भक्त का वेश बनाने के बदले में उसे तथा उसके परिवारवालों को अपने आप को दे डाला

है। अतएव वृन्दावन के इन भक्तों को देने के लिए आपके पास बचा ही क्या है जिनके घर, धन, मित्रगण, प्रिय परिजन, शरीर, सन्तानें तथा प्राण और हृदय—सभी केवल आपको समर्पित हो चुके हैं? (१०.१४.३५)

तावद्रागादयः स्तेनास् तावत्कारागृहं गृहम्
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः

हे भगवान् कृष्ण, जब तक लोग आपके भक्त नहीं बन जाते तब तक उनकी भौतिक आसक्तियाँ तथा इच्छाएँ चोर बनी रहती हैं; उनके घर बन्दीगृह बने रहते हैं और अपने परिजनों के प्रति उनकी स्नेहपूर्ण भावनाएँ पाँवों की बेड़ियाँ बनी रहती हैं।(१०.१४.३६)

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले
प्रपन्नजनतानन्द-सन्दोहं प्रथितुं प्रभो

हे स्वामी, यद्यपि भौतिक जगत से आपको कुछ भी लेना-देना नहीं रहता किन्तु आप इस धरा पर आकर अपने शरणागत भक्तों के लिए आनन्द-भाव की विविधताओं को विस्तृत करने के लिए भौतिक जीवन का अनुकरण करते हैं।(१०.१४.३७)

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः

ऐसे लोग भी हैं, जो यह कहते हैं कि वे कृष्ण के विषय में सब कुछ जानते हैं—वे ऐसा सोचा करें। किन्तु जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं इस विषय में कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। हे प्रभु, मैं तो इतना ही कहूँगा कि जहाँ तक आपके ऐश्वर्यों की बात है वे मेरे मन, शरीर तथा शब्दों की पहुँच से बाहर हैं।(१०.१४.३८)

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक्
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम्

हे कृष्ण, अब मैं आपसे विदा लेने की अनुमति के लिए विनीत भाव से अनुरोध करता हूँ। वास्तव में आप सारी वस्तुओं के ज्ञाता तथा द्रष्टा हैं। आप समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं फिर भी मैं आपको यह एक ब्रह्माण्ड अर्पित करता हूँ।(१०.१४.३९)

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन्
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुग् आकल्पमार्कमर्हन् भगवन्नमस्ते

हे कृष्ण, आप कमल तुल्य वृष्णि कुल को सुख प्रदान करनेवाले हैं और पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण तथा गौवों से युक्त महासागर को बढ़ाने वाले हैं। आप अधर्म के गहन अंधकार को दूर करते हैं और इस पृथ्वी में प्रकट हुए असुरों का विरोध करते हैं। हे भगवन्, जब तक यह ब्रह्माण्ड बना रहेगा और जब तक सूर्य चमकेगा मैं आपको सादर नमस्कार करता रहूँगा।(१०.१४.४०)

57. नागपत्नी स्तव

नागपत्न्य ऊचुः
न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस् तवावतारः खलनिग्रहाय
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टिर् धत्से दमं फलमेवानुशंसन्

कालिय सर्प की पत्नियों ने कहा : इस अपराधी को जो दण्ड मिला है, वह निस्संदेह उचित ही है। आपने इस जगत में ईर्ष्यालु तथा क्रूर पुरुषों का दमन करने के लिए ही अवतार लिया है। आप इतने निष्पक्ष हैं कि आप शत्रुओं तथा अपने पुत्रों को समान भाव से देखते हैं क्योंकि जब आप किसी जीव को दण्ड देते हैं, तो आप यह जानते होते हैं कि अन्ततः यह उसके हित के लिए है।(१०.१६.३३)

अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः
यद्दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः

आपने जो कुछ यहाँ किया है, वह वास्तव में हम पर अनुग्रह है क्योंकि आप दुष्टों को जो दण्ड देते हैं वह निश्चित रूप से उनके कल्मष को दूर कर देता है। चूँकि यह बद्धजीव हमारा पति इतना पापी है कि इसने सर्प का शरीर धारण किया है अतएव उसके प्रति आपका यह क्रोधउसके प्रति आपकी कृपा ही समझी जानी चाहिए।(१०.१६.३४)

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः

क्या हमारे पति ने पूर्वजन्म में गर्वरहित होकर तथा अन्यों के प्रति आदरभाव से पूरित होकर सावधानी से तपस्या की थी? क्या इसीलिए आप उससे प्रसन्न हैं? अथवा क्या उसने किसी पूर्वजन्म में समस्त जीवों के प्रति दयापूर्वक धार्मिक कर्तव्य पूरा किया था और क्या इसीलिए समस्त जीवों के प्राणाधार आप अब उससे सन्तुष्ट हैं? (१०.१६.३५)

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्परशाधिकारः
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता

हे प्रभु, हम नहीं जानतीं कि इस कालिय नाग ने किस तरह आपके चरणकमलों की धूल को स्पर्श करने का सुअवसर प्राप्त किया। इसके लिए तो लक्ष्मीजी ने अन्य सारी इच्छाएँ त्यागकर कठोर व्रत धारण करके सैकड़ों वर्षों तक तपस्या की थी।(१०.१६.३६)

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः

जिन्होंने आपके चरणकमलों की धूल प्राप्त कर ली है वे न तो स्वर्ग का राज्य, न असीम वर्चस्व, न ब्रह्मा का पद, न ही पृथ्वी का साम्राज्य चाहते हैं। उन्हें योग की सिद्धियों अथवा मोक्ष तक में कोई रुचि नहीं रहती।(१०.१६.३७)

तदेष नाथाप दुरापमन्यैस् तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः

हे प्रभु, यद्यपि इस सर्पराज कालिय का जन्म तमोगुण में हुआ है और यह क्रोध के वशीभूत है किन्तु इसने अन्यों के लिए जो दुष्प्राप्य है उसे भी प्राप्त कर लिया है। इच्छाओं से पूर्ण होकर जन्म-मृत्यु के चक्कर में भ्रमण करनेवाले देहधारी जीव आपके चरणकमलों की धूल प्राप्त करने से ही अपने समक्ष सारे आशीर्वादों को प्रकट होते देख सकते हैं।(१०.१६.३८)

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने
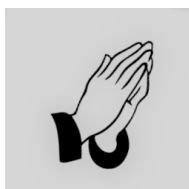
हे भगवन्, हम आपको सादर नमस्कार करती हैं। यद्यपि आप सभी जीवों के हृदयों में परमात्मा रूप में स्थित हैं, तो भी आप सर्वव्यापक हैं। यद्यपि आप सभी उत्पन्न भौतिक तत्त्वों के आदि आश्रय हैं किन्तु आप उनके सृजन के पूर्व से विद्यमान हैं। यद्यपि आप हर वस्तु के कारण हैं किन्तु परमात्मा होने से आप भौतिक कार्य-कारण से परे हैं।(१०.१६.३९)

ज्ञानविज्ञाननीधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये
अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च

हे परम सत्य, हम आपको नमस्कार करती हैं। आप समस्त दिव्य चेतना एवं शक्ति के आगार हैं और अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं। यद्यपि आप भौतिक गुणों एवं विकारों से पूर्णतया मुक्त हैं किन्तु आप भौतिक प्रकृति के आदि संचालक हैं।(१०.१६.४०)

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे

हम आपको नमस्कार करती हैं। आप साक्षात् काल, काल के आश्रय तथा काल की विभिन्न अवस्थाओं के साक्षी हैं। आप ब्रह्माण्ड हैं और इसके पृथक् द्रष्टा भी हैं। आप इसके स्रष्टा हैं और इसके समस्त कारणों के कारण हैं।(१०.१६.४१)

भूतमात्रेन्द्रियप्राण-मनोबुद्ध्याशयात्मने
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये

आप भौतिक तत्त्वों के, अनुभूति के सूक्ष्म आधार के, इन्द्रियों के, प्राणवायु के तथा मन,बुद्धि एवं चेतना के परमात्मा हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं। आपकी ही व्यवस्था के फलस्वरूप सूक्ष्मतम चिन्मय आत्माएँ प्रकृति के तीनों गुणों के रूप में अपनी झूठी पहचान बनाती हैं फलस्वरूप उनकी स्व की अनुभूति प्रच्छन्न हो जाती है। हे अनन्त भगवान्, हे परम सूक्ष्म एवं सर्वज्ञ भगवान्,हम आपको प्रणाम करती हैं,जो सदैव स्थायी दिव्यता में विद्यमान रहते हैं, विभिन्न वादों के विरोधी विचारों को स्वीकृति देते हैं और व्यक्त विचारों तथा उनको व्यक्त करनेवाले शब्दों को प्रोत्साहन देने वाली शक्ति हैं।(१०.१६.४२-४३)
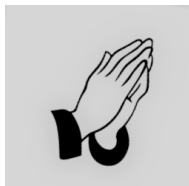
नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः

समस्त प्रमाणों के आधार,शास्त्रों के प्रणेता तथा परम स्रोत, इन्द्रिय तृप्ति को प्रोत्साहित करनेवाले (प्रवृत्ति मार्ग) तथा भौतिक जगत से विराग उत्पन्न करनेवाले वैदिक साहित्य में अपने को प्रकट करनेवाले आपको हम बारम्बार नमस्कार करती हैं।(१०.१६.४४)

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः

हम वसुदेव के पुत्र, भगवान् कृष्ण तथा भगवान् राम को और भगवान् प्रद्युम्न तथा भगवान् अनिरुद्ध को सादर नमस्कार करती हैं। हम विष्णु के समस्त सन्त सदृश भक्तों के स्वामी को सादर नमस्कार करती हैं।(१०.१६.४५)

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च
गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे

नाना प्रकार के भौतिक तथा आध्यात्मिक गुणों को प्रकट करनेवाले, हे भगवन्, आपको हमारा नमस्कार। आप अपने को भौतिक गुणों से छिपा लेते हैं किन्तु अन्ततः उन्हीं भौतिक गुणों के अन्तर्गत हो रहे कार्य आपके अस्तित्व को प्रकट कर देते हैं। आप साक्षी रूप में भौतिक गुणों से पृथक् रहते हैं और एकमात्र अपने भक्तों द्वारा भलीभाँति ज्ञेय हैं।(१०.१६.४६)

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने

हे इन्द्रियों के स्वामी, हृषीकेश, हम आपको नमस्कार करती हैं क्योंकि आपकी लीलाएँ अचिन्त्य रूप से महिमामयी हैं। आपके अस्तित्व को समस्त दृश्य जगत के लिए स्रष्टा तथा प्रकाशक की आवश्यकता से समझा जा सकता है। यद्यपि आपके भक्त आपको इस रूप में समझ सकते हैं किन्तु अभक्तों के लिए आप आत्मलीन रह कर मौन बने रहते हैं।(१०.१६.४७)

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे

उत्तम तथा अधम समस्त वस्तुओं के गन्तव्य को जाननेवाले तथा समस्त जगत के अध्यक्ष नियन्ता आपको हमारा नमस्कार। आप इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि से पृथक् हैं फिर भी आप वह मूलाधार हैं जिस पर भौतिक सृष्टि की माया का विकास होता है। आप इस माया के साक्षी भी हैं। निस्सन्देह आप अखिल जगत के मूल कारण हैं।(१०.१६.४८)

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक्
तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः समीक्षयामोघविहार ईहसे

हे सर्वशक्तिमान प्रभु, यद्यपि आपके भौतिक कर्म में फँसने का कोई कारण नहीं है, फिर भी आप इस ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार की व्यवस्था करने के लिए अपनी शाश्वत कालशक्ति के माध्यम से कर्म करते हैं। इसे आप सृजन के पूर्व सुप्त पड़े प्रकृति के प्रत्येक गुण के विशिष्ट कार्य को जाग्रत करते हुए संपन्न करते हैं। ब्रह्माण्ड-नियंत्रण के इन सारे कार्यों को आप खेल खेल में केवल अपनी चितवन से पूर्णतया संपन्न कर देते हैं।(१०.१६.४९)

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः

इसलिए तीनों लोकों भर में सारे भौतिक शरीर—जो सतोगुणी होने के कारण शान्त हैं, जो रजोगुणी होने से विक्षुब्ध हैं तथा जो तमोगुणी होने से मूर्ख हैं—आपकी ही सृष्टियाँ हैं। तो भी जिनके शरीर सतोगुणी हैं, वे आपको विशेष रूप से प्रिय हैं और उन्हीं के पालन हेतु तथा उन्हीं के धर्म की रक्षा करने के लिए ही अब आप इस पृथ्वी पर विद्यमान हैं।(१०.१६.५०)

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः

स्वामी को चाहिए कि अपनी सन्तान या प्रजा द्वारा किये गये अपराध को कम से कम एक बार तो सह ले। इसलिए हे परम शान्त आत्मन्, आप हमारे इस मूर्ख पति को क्षमा कर दें जो यह नहीं समझ पाया कि आप कौन हैं।(१०.१६.५१)

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः
स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम्

हे भगवन्, आप हम पर कृपालु हों। साधु पुरुष को हम-जैसी स्त्रियों पर दया करना उचित है। यह सर्प अपना प्राण त्यागने ही वाला है। कृपया हमारे जीवन तथा आत्मा रूप हमारे पति को हमें वापस कर दें।(१०.१६.५२)

विधेहि ते किङ्करीणाम् अनुष्ठेयं तवाज्ञया
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतो भयात्

अब कृपा करके अपनी दासियों को बतलायें कि हम क्या करें। यह निश्चित है कि जो भी आपकी आज्ञा को श्रद्धापूर्वक पूरा करता है, वह स्वतः सारे भय से मुक्त हो जाता है।(१०.१६.५३)

58. कालिया स्तवः

कालिय उवाच
वयं खलाः सहोत्पत्त्या तमसा दीर्घमन्यवः
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः

कालिय नाग ने कहा : सर्प के रूप में जन्म से ही हम ईर्ष्यालु, अज्ञानी तथा निरन्तर क्रुद्ध बने हुए हैं। हे नाथ, मनुष्यों के लिए अपना बद्ध स्वभाव, जिससे वे असत्य से अपनी पहचान करते हैं, छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है।(१०.१६.५६)

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम्
नानास्वभाववीर्यौजो- योनिबीजाशयाकृति

हे परम विधाता, आप ही भौतिक गुणों की विविध व्यवस्था से निर्मित इस ब्रह्माण्ड के बनाने वाले हैं। इस प्रक्रिया में आप नाना प्रकार के व्यक्तित्व तथा योनियाँ, नाना प्रकार की ऐन्द्रिय तथा शारीरिक शक्तियाँ तथा भाँति भाँति की मनोवृत्तियों एवं आकृतियों वाले मातापिताओं को प्रकट करते हैं।(१०.१६.५७)

वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः
कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम्

हे भगवन्, आपकी भौतिक सृष्टि में जितनी भी योनियाँ हैं उनमें से हम सर्पगण स्वभाव से सदैव क्रोधी हैं। इस तरह आपकी दुस्त्यज मायाशक्ति से मुग्ध होकर भला हम उस स्वभाव को अपने आप कैसे त्याग सकते हैं? (१०.१६.५८)

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः
अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः

हे ईश्वर, ब्रह्माण्ड के सर्वज्ञ भगवान् होने के कारण आप मोह से छूटने के वास्तविक कारण हैं। कृपा करके आप जो भी उचित समझें, हमारे लिए व्यवस्था करें, चाहे हम पर कृपा करें या दण्ड दें।(१०.१६.५९)

59. गोपादिनाम स्तुति

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामोघ विक्रम
दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः
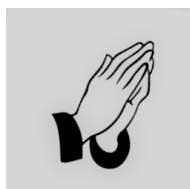
[ग्वालबालों ने कहा] हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे महावीर, हे राम, हे अमोघ शक्तिशाली, कृपा करके अपने उन भक्तों को बचायें जो जंगल की इस अग्नि से जलने ही वाले हैं और आपकी शरण में आये हैं।(१०.१९.९)

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसादितुम्
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः

कृष्ण! निस्सन्देह आपके अपने मित्रों को तो नष्ट नहीं होना चाहिए। हे समस्त वस्तुओं की प्रकृति को जाननेवाले, हमने आपको अपना स्वामी मान रखा है और हम आपके शरणागत हैं।(१०.१९.१०)

60. यज्ञ पत्निनाम स्तवः

श्रीपत्न्य ऊचुः
मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पदमूलम्
प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून्

ब्राह्मणपत्नियों ने उत्तर दिया: हे विभो, आप ऐसे कटु वचन न कहें। आपको चाहिए कि आप अपने उस वचन को पूरा करें कि आप अपने भक्तों को सदैव प्रतिदान करते हैं। चूँकि अब हम आपके चरणों को प्राप्त हैं, अत: हम इतना ही चाहती हैं कि हम वन में ही रहती जाएँ जिससे हम तुलसी-दल की उन मालाओं को अपने सिरों पर धारण कर सकें जिन्हें आप उपेक्षापूर्वक अपने चरणकमलों से ठुकरा देते हैं। हम अपने सारे भौतिक संबंध त्यागने को तैयार हैं।(१०.२३.२९)

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये
तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि

अब हमारे पति, माता-पिता, पुत्र, भाई, अन्य संबंधी तथा मित्र हमें वापस नहीं लेंगे और अन्य कोई हमें किस तरह शरण देने को तैयार हो सकेगा? क्योंकि अब हमने अपने आपको आपके चरणकमलों पर पटक दिया है और हमारे कोई अन्य गन्तव्य नहीं है अतएव हे अरिन्दम,हमारी इच्छापूरी कीजिये।(१०.२३.३०)

61. श्री कृष्णंप्रति इन्द्रस्य स्तवः

इन्द्र उवाच
विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम्
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो न विद्यते ते ग्रहणानुबन्धः

राजा इन्द्र ने कहा : आपका दिव्य रूप शुद्ध सतोगुण का प्राकट्य है, यह परिवर्तन से विचलित नहीं होता, ज्ञान से चमकता रहता है और रजो तथा तमोगुणों से रहित है। आपके भीतर माया तथा अज्ञान पर आश्रित भौतिक गुणों का प्रबल प्रवाह नहीं पाया जाता।(१०.२७.४)

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिन्गभावाः
तथापि दण्डं भगवान् बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय
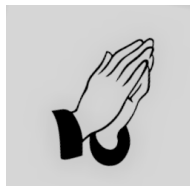
तो भला आपमें अज्ञानी व्यक्ति के लक्षण—यथा लोभ, काम, क्रोध तथा ईर्ष्या—किस तरह रह सकते हैं क्योंकि इनकी उत्पत्ति संसार में मनुष्य की पूर्व-लिप्तता के कारण होती है और ये मनुष्य को संसार में अधिकाधिक जकड़ते जाते हैं? फिर भी हे परमेश्वर, आप धर्म की रक्षा करने तथा दुष्टों का दमन करने के लिए उन्हें दण्ड देते हैं।(१०.२७.५)

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः
हिताय चेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम्

आप इस सम्पूर्ण जगत के पिता, आध्यात्मिक गुरु और परम नियन्ता भी हैं। आप दुर्लंघ्य काल हैं, जो पापियों को उन्हीं के हित के लिए दण्ड देता है। निस्सन्देह स्वेच्छा से लिये जाने वाले विविध अवतारों में आप उन लोगों का मिथ्या दर्प दूर करते हैं, जो अपने को इस जगत का स्वामी मान बैठते हैं।(१०.२७.६)

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस् त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम्
हित्वार्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम्

मुझ जैसे मूर्खजन जो अपने को जगत का स्वामी मान बैठते हैं तुरन्त ही अपने मिथ्या गर्व को त्याग देते हैं और जब वे आपको काल के समक्ष भी निडर देखते हैं, तो वे तुरन्त आध्यात्मिक प्रगति करने वाले भक्तों का मार्ग ग्रहण कर लेते हैं। इस तरह आप दुष्टों को शिक्षा देने के लिए ही दण्ड देते हैं।(१०.२७.७)

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम्
क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती

अपनी शासनशक्ति के मद में चूर एवं आपके दिव्य प्रभाव से अनजान मैंने आपका अपमान किया है। हे प्रभु, आप मुझे क्षमा करें। मेरी बुद्धि मोहग्रस्त हो चुकी थी किन्तु अब मेरी चेतना को कभी इतनी अशुद्ध न होने दें।(१०.२७.८)

तवावतारोऽयमधोक्षजेह भुवो भराणामुरुभारजन्मनाम्
चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम्

हे दिव्य प्रभु, आप इस जगत में उन सेनापतियों को विनष्ट करने के लिए अवतरित होते हैं, जो पृथ्वी का भार बढ़ाते हैं और अनेक भीषण उत्पात मचाते हैं। हे प्रभु, उसी के साथ साथ आप उन लोगों के कल्याण के लिए कर्म करते हैं, जो श्रद्धापूर्वक आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं।(१०.२७.९)
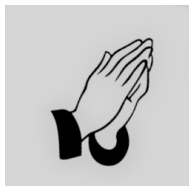
नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः

सर्वव्यापी तथा सबों के हृदयों में निवास करने वाले हे परमात्मा, आपको मेरा नमस्कार। हे यदुकुलश्रेष्ठ कृष्ण, आपको मेरा नमस्कार।(१०.२७.१०)

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः

अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार दिव्य शरीर धारण करने वाले, शुद्ध चेतना रूप, सर्वस्व, समस्त वस्तुओं के बीज तथा समस्त प्राणियों के आत्मा रूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ।(१०.२७.११)

मयेदं भगवन् गोष्ठ- नाशायासारवायुभिः
चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना

हे प्रभु, जब मेरा यज्ञ भंग हो गया, तो मैं मिथ्या अहंकार के कारण बहुत क्रुद्ध हुआ। इस तरह मैंने घनघोर वर्षा तथा वायु के द्वारा आपके ग्वाल समुदाय को विनष्ट कर देना चाहा।(१०.२७.१२)

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः
ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः

हे प्रभु, मेरे मिथ्या अहंकार को चकनाचूर करके तथा मेरे प्रयास (वृन्दावन को दण्डित करने का) को पराजित करके आपने मुझपर दया दिखाई है। अब मैं, परमेश्वर, गुरु तथा परमात्मा रूप आपकी शरण में आया हूँ।(१०.२७.१३)

62. सुरभि स्तव

सुरभिरुवाच
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत

माता सुरभि ने कहा : हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे योगियों में श्रेष्ठ, हे विश्व की आत्मा तथा उद्गम, आप विश्व के स्वामी हैं और हे अच्युत, आपकी ही कृपा से हम सबों को आप जैसा स्वामी मिला है।(१०.२७.१९)

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते
भवाय भव गोविप्र देवानां ये च साधवः

आप हमारे आराध्य देव हैं। अतएव हे जगत्पति, गौवों, ब्राह्मणों, देवताओं एवं सारे सन्त पुरुषों के लाभ हेतु आप हमारे इन्द्र बनें।(१०.२७.२०)

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा चोदिता वयम्
अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये

ब्रह्माजी के आदेशानुसार हम इन्द्र के रूप में आपका राज्याभिषेक करेंगी। हे विश्वात्मा, आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए इस संसार में अवतरित होते हैं।(१०.२७.२१)

63. श्री वरुण स्तुति

श्रीवरुण उवाच
अद्य मे निभृतो देहो ऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो
त्वत्पादभाजो भगवन्न् अवापुः पारमध्वनः

श्रीवरुण ने कहा : आज मेरे शरीर ने अपना कार्य पूरा कर लिया। हे प्रभु, निस्सन्देह अब मुझे अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त हो चुका। हे भगवन्, जो लोग आपके चरणकमलों को स्वीकार करते हैं, वे भौतिक संसार के मार्ग को पार कर सकते हैं।(१०.२८.५)
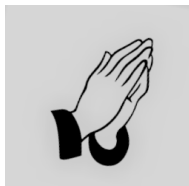
नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना

हे पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्, परम सत्य परमात्मा, मैं आपको नमस्कार करता हूँ; आपके भीतर इस सृष्टि को अपने अनुरूप बनाने वाली माया-शक्ति का लेशमात्र भी नहीं है।(१०.२८.६)

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना
आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति

यहाँ पर बैठे हुए आपके पिता मेरे एक मूर्ख अज्ञानी नौकर द्वारा मेरे पास लाये गये हैं, जो अपने कर्तव्य को नहीं समझता था। कृपा करके हमें क्षमा कर दें।(१०.२८.७)

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक्
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल

हे कृष्ण, हे सर्वद्रष्टा, आप मुझे भी अपनी कृपा प्रदान करें। हे गोविन्द, आप अपने पिता के प्रति अत्यधिक स्नेहवान् हैं। आप उन्हें घर ले जाँय।(१०.२८.८)

64. श्री गोपी गीत

गोप्य ऊचुः
जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास् त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते

गोपियों ने कहा : हे प्रियतम, व्रजभूमि में तुम्हारा जन्म होने से ही यह भूमि अत्यधिक महिमावान हो उठी है और इसीलिए इन्दिरा (लक्ष्मी) यहाँ सदैव निवास करती हैं। केवल तुम्हारें लिए ही तुम्हारी भक्त दासियाँ हम अपना जीवन पाल रही हैं। हम तुम्हें सर्वत्र ढूँढ़ती रही हैं अतः कृपा करके हमें अपना दर्शन दीजिये।(१०.३१.१)

शरदुदाशये साधुजातसत्-सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः

हे प्रेम के स्वामी, आपकी चितवन शरदकालीन जलाशय के भीतर सुन्दरतम सुनिर्मित कमल के कोश की सुन्दरता को मात देने वाली है। हे वर-दाता, आप उन दासियों का वध कर रहे हैं जिन्होंने बिना मोल ही अपने को आपको पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है। क्या यह वध नहीं है? (१०.३१.२)

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद्वैद्युतानलात्
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयाद् ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः

हे पुरुषश्रेष्ठ, आपने हम सबों को विविध प्रकार के संकटों से—यथा विषैले जल से, मानवभक्षी भयंकर अघासुर से, मूसलाधार वर्षा से, तृणावर्त से, इन्द्र के अग्नि तुल्य वज्र से, वृषासुर से तथा मय दानव के पुत्र से बारम्बार बचाया है।(१०.३१.३)

न खलु गोपीकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्
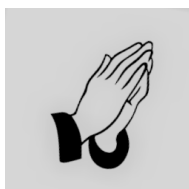
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले

हे सखा, आप वास्तव में गोपी यशोदा के पुत्र नहीं अपितु समस्त देहधारियों के हृदयों में अन्तस्थ साक्षी हैं। चूँकि ब्रह्माजी ने आपसे अवतरित होने एवं ब्रह्माण्ड की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की थी इसलिए अब आप सात्वत कुल में प्रकट हुए हैं।(१०.३१.४)

विरचिताभयं वृष्णिधूर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्

हे वृष्णिश्रेष्ठ, लक्ष्मीजी के हाथ को थामने वाला आपका कमल सदृश हाथ उन लोगों को अभय दान देता है, जो भवसागर के भय से आपके चरणों के निकट पहुँचते हैं। हे प्रियतम, उसी कामना को पूर्ण करने वाले करकमल को हमारे सिरों के ऊपर रखें।(१०.३१.५)

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय

हे व्रज के लोगों के कष्टों को विनष्ट करने वाले, समस्त स्त्रियों के वीर, आपकी हँसी आपके भक्तों के मिथ्या अभिमान को चूर चूर करती है। हे मित्र, आप हमें अपनी दासियों के रूप में स्वीकार करें और हमें अपने सुन्दर कमल-मुख का दर्शन दें।(१०.३१.६)

प्रणतदेहिनां पापकर्षणं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्

आपके चरणकमल आपके शरणागत समस्त देहधारियों के विगत पापों को नष्ट करने वाले हैं। वे ही चरण गौवों के पीछे पीछे चरागाहों में चलते हैं और लक्ष्मीजी के दिव्य धाम हैं। चूँकि आपने एक बार उन चरणों को महासर्प कालिय के फनों पर रखा था अत: अब आप उन्हें हमारे स्तनों पर रखें और हमारे हृदय की कामवासना को छिन्नभिन्न कर दें।(१०.३१.७)

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीर् अधरसीधुनाप्याययस्व नः

हे कमलनेत्र, आपकी मधुर वाणी तथा मोहक शब्द, जो कि बुद्धिमान के मन को आकृष्ट करने वाले हैं,हम सबों को अधिकाधिक मोह रहे हैं। हमारे प्रिय वीर, आप अपने होंठों के अमृत से अपनी दासियों को पुनरुज्जीवित कर दीजिये।(१०.३१.८)

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः

आपके शब्दों का अमृत तथा आपकी लीलाओं का वर्णन इस भौतिक जगत में कष्ट भोगने वालों के जीवन और प्राण हैं। विद्वान मुनियों द्वारा प्रसारित ये कथाएँ मनुष्य के पापों को समूल नष्ट करती हैं और सुनने वालों को सौभाग्य प्रदान करती हैं। ये कथाएँ जगत-भर में विस्तीर्ण हैंऔर आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत हैं। निश्चय ही जो लोग भगवान् के सन्देश का प्रसार करते हैं,वे सबसे बड़े दाता हैं।(१०.३१.९)

प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्
रहसि संविदो या हृदि स्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि
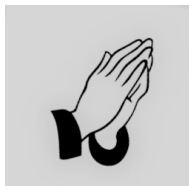
आपकी हँसी, आपकी मधुर प्रेम-भरी चितवन, आपके साथ हमारे द्वारा भोगी गई घनिष्ठ लीलाएँ तथा गुप्त वार्ताएँ—इन सबका ध्यान करना मंगलकारी है और ये हमारे हृदयों को स्पर्श करती हैं। किन्तु उस के साथ ही, हे छलिया, वे हमारे मन को अतीव क्षुब्ध भी करती हैं।(१०.३१.१०)

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति

हे स्वामी, हे प्रियतम, जब आप गाँव छोड़कर गौवें चराने के लिए जाते हैं, तो हमारे मन इस विचार से विचलित हो उठते हैं कि कमल से भी अधिक सुन्दर आपके पाँवों में अनाज के नोकदार छिलके तथा घास-फूस एवं पौधे चुभ जायेंगे।(१०.३१.११)

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर् वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर् मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि

दिन ढलने पर आप हमें बारम्बार गहरे नीले केश की लटों से ढके तथा धूल से पूरी तरह धूसरित अपना कमल-मुख दिखलाते हैं। इस तरह, हे वीर, आप हमारे मन में कामवासना जागृत कर देते हैं।(१०.३१.१२)

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्

ब्रह्माजी द्वारा पूजित आपके चरणकमल उन सबों की इच्छाओं को पूरा करते हैं, जो उनमें नतमस्तक होते हैं। वे पृथ्वी के आभूषण हैं, वे सर्वोच्च सन्तोष के देने वाले हैं और संकट के समय चिन्तन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। हे प्रियतम, हे चिन्ता के विनाशक, आप उन चरणों को हमारे स्तनों पर रखें।(१०.३१.१३)

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्

हे वीर, आप अपने होंठों के उस अमृत को हममें वितरित कीजिये जो युगल आनन्द को बढ़ाने वाला और शोक को मिटाने वाला है। उसी अमृत का आस्वाद आपकी ध्वनि करती हुई वंशी लेती है और लोगों को अन्य सारी आसक्तियाँ विसरा देती है।(१०.३१.१४)

अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटि युगायते त्वामपश्यताम्
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्

जब आप दिन के समय जंगल चले जाते हैं, तो क्षण का एक अल्पांश भी हमें युग सरीखा लगता है क्योंकि हम आपको देख नहीं पातीं। और जब हम आपके सुन्दर मुख को जो घुँघराले बालों से सुशोभित होने के कारण इतना सुन्दर लगता है, देखती भी हैं, तो ये हमारी पलकें हमारे आनन्द में बाधक बनती हैं, जिन्हें मूर्ख स्रष्टा ने बनाया है।(१०.३१.१५)

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान् अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि
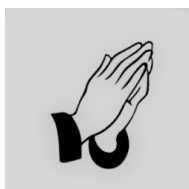
हे अच्युत, आप भलीभाँति जानते हैं कि हम क्यों आई हैं। आप जैसे छलिये के अतिरिक्त भला और कौन होगा, जो अर्धरात्रि में उसकी बाँसुरी के तेज संगीत से मोहित होकर उसे देखने के लिए आई तरुणी स्त्रियों का परित्याग करेगा? आपके दर्शनों के लिए ही हमने अपने पतियों, बच्चों, बड़े-बूढ़ों, भाइयों तथा अन्य रिश्तेदारों को पूरी तरह ठुकरा दिया है। (१०.३१.१६)

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः

जब हम आपके साथ एकान्त में हुई घनिष्ठ वार्ताओं का चिन्तन करती हैं, तो अपने हृदयों में कामोदय अनुभव करती हैं और आपकी हँसमुख आकृति, आपकी प्रेममयी चितवन तथा आपके चौड़े सीने का, जो कि लक्ष्मी का वासस्थान है, स्मरण करती हैं तब हमारे मन बारम्बार मोहित हो जाते हैं। इस तरह हमें आपके लिए अत्यन्त गहन लालसा की अनुभूति होती है।(१०.३१.१७)

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्
त्यज मनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्

हे प्रियतम, आपका सर्व मंगलमय प्राकट्य व्रज के वनों में रहने वालों के कष्ट को दूर करता है। हमारे मन आपके सान्निध्य के लिए लालायित हैं। आप हमें थोड़ी-सी वह औषधि दे दें, जो आपके भक्तों के हृदयों के रोग का शमन करती है।(१०.३१.१८)

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः

हे प्रियतम, आपके चरणकमल इतने कोमल हैं कि हम उन्हें धीरे से अपने स्तनों पर डरते हुए हल्के से ऐसे रखती हैं कि आपके पैरों को चोट पहुँचेगी। हमारा जीवन केवल आप पर टिका हुआ है। अत: हमारे मन इस चिन्ता से भरे हैं कि कहीं जंगल के मार्ग में घूमते समय आपके कोमल चरणों में कंकड़ों से चोट न लग जाए।(१०.३१.१९)

65. श्रीमद अक्रुरा स्तवः

श्रीअक्रूर उवाच
नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्
यन्नाभिजातादरविन्दकोषाद् ब्रह्माविरासीद्यत एष लोकः

श्री अक्रूर ने कहा : हे समस्त कारणों के कारण, आदि तथा अव्यय महापुरुष नारायण, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी नाभि से उत्पन्न कमल के कोष से ब्रह्मा प्रकट हुए हैं और उनसे यह ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आया है।(१०.४०.१)

भूस्तोयमग्निः पवनं खमादिर् महानजादिर्मन इन्द्रियाणि
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश एवं इसका स्रोत तथा मिथ्या अहंकार, महत्-तत्त्व, समस्त भौतिक प्रकृति और उसका उद्गम तथा भगवान् का पुरुष अंश, मन, इन्द्रियाँ, इन्द्रिय विषय तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता—ये सब विराट जगत के कारण आपके दिव्य शरीर से उत्पन्न हैं।(१०.४०.२)

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीतः

अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम्

सम्पूर्ण भौतिक प्रकृति तथा ये अन्य सृजन-तत्त्व निश्चय ही आपको यथा-रूप में नहीं जान सकते क्योंकि ये निर्जीव पदार्थ के परिमण्डल में प्रकट होते हैं। चूँकि आप प्रकृति के गुणों से परे हैं, अतः इन गुणों से बद्ध ब्रह्माजी भी आपके असली रूप को नहीं जान पाते।(१०.४०.३)

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम्
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः

शुद्ध योगीजन आप की अर्थात् परमेश्वर की तीन रूपों में अनुभूति करते हुए पूजा करते हैं। ये तीन हैं—जीव, भौतिक तत्त्व जिनसे जीवों के शरीर बने हैं तथा इन तत्त्वों के नियंत्रक देवता (अधिदेव)।(१०.४०.४)

त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः
यजन्ते विततैर्यज्ञैर् नानारूपामराख्यया

तीन पवित्र अग्नियों से संबंध नियमों का पालन करने वाले ब्राह्मण तीनों वेदों से मंत्रोचार करके तथा अनेक रूपों और नामों वाले विविध देवताओं के लिए व्यापक अग्नि यज्ञ करके पूजा करते हैं।(१०.४०.५)

एके त्वाखिलकमरनि सन्न्यस्योपशमं गताः
ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम्

आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में कुछ लोग सारे भौतिक कार्यों का परित्याग कर देते हैं और इस तरह शान्त होकर समस्त ज्ञान के आदि रूप आपकी पूजा करने के लिए ज्ञान-यज्ञ करते हैं।(१०.४०.६)

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम्

और अन्य लोग जिनकी बुद्धि शुद्ध है वे आपके द्वारा लागू किये गये वैष्णव शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हैं। वे आपके चिन्तन में अपने मन को लीन करके आपकी पूजा परमेश्वर रूप में करते हैं, जो अनेक रूपों में प्रकट होता है।(१०.४०.७)

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्तर्नुपासते

कुछ अन्य लोग भी हैं, जो आपकी पूजा भगवान् शिव के रूप में करते हैं। वे उनके द्वारा बताये गये तथा अनेक उपदेशकों द्वारा नाना प्रकार से व्याख्यायित मार्ग का अनुसरण करते हैं।(१०.४०.८)

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम्
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो

किन्तु हे प्रभु, ये सारे लोग, यहाँ तक कि जिन्होंने आपसे अपना ध्यान मोड़ रखा है और जो अन्य देवताओं की पूजा कर रहे हैं, वे वास्तव में, हे समस्त देवमय, आपकी ही पूजा कर रहे हैं।(१०.४०.९)

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः
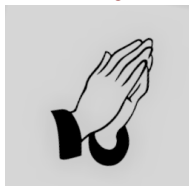
हे प्रभो, जिस प्रकार पर्वतों से उत्पन्न तथा वर्षा से पूरित नदियाँ सभी ओर से समुद्र में आकर मिलती हैं उसी तरह ये सारे मार्ग अन्त में आप तक पहुँचते हैं।(१०.४०.१०)

सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः
तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः

आपकी भौतिक प्रकृति के सतो, रजो तथा तमो गुण ब्रह्मा से लेकर अचर प्राणियों तक के समस्त बद्धजीवों को पाशबद्ध किये रहते हैं।(१०.४०.११)

तुभ्यं नमस्ते त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु

मैं आपको नमस्कार करता हूँ, जो समस्त जीवों के परमात्मा रूप होकर निष्पक्ष दृष्टि से हर एक की चेतना के साक्षी हैं। अज्ञान से उत्पन्न आपके भौतिक गुणों का प्रवाह उन जीवों के बीच प्रबलता के साथ प्रवाहित होता है, जो देवताओं, मनुष्यों तथा पशुओं का रूप धारण करते हैं।(१०.४०.१२)

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः
द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम्
रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः
निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर् मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते

अग्नि आपका मुख कही जाती है, पृथ्वी आपके पाँव हैं, सूर्य आपकी आँख है और आकाश आपकी नाभि है। दिशाएँ आपकी श्रवणेन्द्रिय हैं, प्रमुख देवता आपकी बाँहें हैं और समुद्र आपका उदर है। स्वर्ग आपका सिर समझा जाता है और वायु आपकी प्राण-वायु तथा शारीरिक बल है। वृक्ष तथा जड़ी-बूटियाँ आपके शरीर के रोम हैं, बादल आपके सिर के बाल हैं तथा पर्वत आपकी अस्थियाँ तथा नाखून हैं। दिन तथा रात का गुजरना आपकी पलकों का झपकना है, प्रजापति आपकी जननेन्द्रिय है और वर्षा आपका वीर्य है।(१०.४०.१३-१४)

त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसङ्कुलाः
यथा जले सञ्जिहते जलौकसो ऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये

अपने अपने अधिष्ठातृ देवताओं तथा असंख्य जीवों समेत सारे जगत आप परम अविनाशी से उद्‌भूत हैं। ये सारे जगत मन तथा इन्द्रियों पर आधारित होकर आपके भीतर घूमते रहते हैं जिस प्रकार समुद्र में जलचर तैरते हैं अथवा छोटे छोटे कीट गूलर फल के भीतर छेदते रहते हैं।(१०.४०.१५)

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः

आप अपनी लीलाओं का आनन्द लेने के लिए इस भौतिक जगत में नाना रूपों में अपने को प्रकट करते हैं और ये अवतार उन लोगों के सारे दुखों को धो डालते हैं, जो हर्षपूर्वक आपके यश का गान करते हैं।(१०.४०.१६)

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च
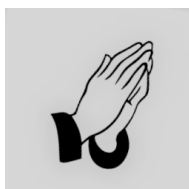
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे
अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे
क्षित्युद्धारविहाराय नमः शूकरमूर्तये

मैं सृष्टि के कारण भगवान् मत्स्य रूप आपको नमस्कार करता हूँ जो प्रलय के सागर में इधर उधर तैरते रहे। मैं मधु तथा कैटभ के संहारक हयग्रीव को, मन्दराचल को धारण करने वाले विशाल कच्छप (भगवान् कूर्म) को तथा पृथ्वी को उठाने में आनन्द का अनुभव करने वाले सूकर अवतार (भगवान् वराह) रूप आपको नमस्कार करता हूँ।(१०.४०.१७-१८)

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च

अपने सन्त-भक्तों के भय को भगाने वाले अद्भुत सिंह (भगवान् नृसिंह) तथा तीनों जगतों को अपने पगों से नापने वाले वामन मैं आपको नमस्कार करता हूँ।(१०.४०.१९)

नमो भृगुणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च

घमंडी राजाओं रूपी जंगल को काट डालने वाले भृगुपति तथा राक्षस रावण का अन्त करने वाले रघुकुल शिरोमणि भगवान् राम, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।(१०.४०.२०)

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च
प्रद्युम्नायनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः

सात्वतों के स्वामी आपको नमस्कार है। आपके वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूपों को नमस्कार है।(१०.४०.२१)

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने
म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे

आपके शुद्ध रूप भगवान् बुद्ध को नमस्कार है, जो दैत्यों तथा दानवों को मोह लेगा। आपके कल्कि रूप को नमस्कार है, जो राजा बनने वाले मांस-भक्षकों का संहार करने वाला है।(१०.४०.२२)

भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया
अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु

हे परमेश्वर, इस जगत में सारे जीव आपकी शक्ति माया से भ्रमित हैं। वे ''मैं'' तथा ''मेरा'' की मिथ्या धारणाओं में फँसकर सकाम कर्मों के मार्गों पर भटकते रहने के लिए बाध्य होते रहते हैं।(१०.४०.२३)

अहं चात्मात्मजागार- दारार्थस्वजनादिषु
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो

हे शक्तिशाली विभो, मैं भी अपने शरीर, सन्तानों, घर,पत्नी, धन तथा अनुयायियों को मूर्खता से वास्तविक मानकर इस प्रकार से भ्रमित हो रहा हूँ यद्यपि ये सभी स्वप्न के समान असत्य हैं।(१०.४०.२४)

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम्
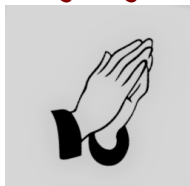
द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम्

इस तरह नश्वर को नित्य, अपने शरीर को आत्मा तथा कष्ट के साधनों को सुख के साधन मानते हुए मैंने भौतिक द्वन्द्वों में आनन्द उठाने का प्रयत्न किया है। इस तरह अज्ञान से आवृत होकर मैं यह नहीं पहचान सका कि आप ही मेरे प्रेम के असली लक्ष्य हैं।(१०.४०.२५)

यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः
अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः

जिस तरह कोई मूर्ख व्यक्ति जल के अन्दर उगी हुई वनस्पति से ढके हुए जल की उपेक्षा करके मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता है उसी तरह मैंने आपसे मुख मोड़ रखा है।(१०.४०.२६)

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः
रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर् ह्रियमाणमितस्ततः

मेरी बुद्धि इतनी कुंठित है कि मैं अपने मन को रोक पाने की शक्ति नहीं जुटा पा रहा जो भौतिक इच्छाओं तथा कार्यों से विचलित होता रहता है और मेरी जिद्दी इन्द्रियों द्वारा निरन्तर इधर उधर घसीटा जाता है।(१०.४०.२७)

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये
पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस् त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात्

हे प्रभु, इस तरह पतित हुआ मैं आपके चरणों में शरण लेने आया हूँ, क्योंकि, यद्यपि अशुद्ध लोग आपके चरणों को कभी भी प्राप्त नहीं कर पाते, मेरा विचार है कि आपकी कृपा से तो यह संभव हो सका है। हे कमल-नाभ भगवान्, जब किसी का भौतिक जीवन समाप्त हो जाता है तभी वह आपके शुद्ध भक्तों की सेवा करके आपके प्रति चेतना उत्पन्न कर सकता है।(१०.४०.२८)

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये

असीम शक्तियों के स्वामी परम सत्य को नमस्कार है। वे शुद्ध दिव्य-ज्ञान स्वरूप हैं, समस्त चेतनाओं के स्रोत हैं और जीव पर शासन चलाने वाली प्रकृति की शक्तियों के अधिपति हैं।(१०.४०.२९)

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो

हे वसुदेवपुत्र आपको नमस्कार है। आपमें सारे जीवों का निवास है। हे मन तथा इन्द्रियों केस्वामी,मैं पुनः आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभु,मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें।(१०.४०.३०)

66. श्री मुचुकुन्द स्तवः

श्रीमुचुकुन्द उवाच
विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्
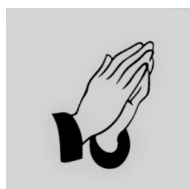
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः

श्री मुचुकुन्द ने कहा : हे प्रभु, इस जगत के सभी स्त्री-पुरुष आपकी मायाशक्ति के द्वारा मोहग्रस्त हैं। वे अपने असली लाभ से अनजान रहते हुए आपको न पूजकर अपने को कष्टों के मूल स्रोत अर्थात् पारिवारिक मामलों में फँसाकर सुख की तलाश करते हैं।(१०.५१.४५)

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ
पादारविन्दं न भजत्यसन्मतिर् गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः

उस मनुष्य का मन अशुद्ध होता है, जो अत्यन्त दुर्लभ एवं अत्यन्त विकसित मनुष्य-जीवन के येन-केन-प्रकारेण स्वतः प्राप्त होने पर भी आपके चरणकमलों की पूजा नहीं करता। ऐसा व्यक्ति अंधे कुएँ में गिरे हुए पशु के समान, भौतिक घरबार रूपी अंधकार में गिर जाता है।(१०.५१.४६)

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्व् आसज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया

हे अजित, मैंने पृथ्वी के राजा के रूप में अपने राज्य तथा वैभव के मद में अधिकाधिक उन्मत्त होकर सारा समय गँवा दिया है। मर्त्य शरीर को आत्मा मानते हुए तथा संतानों, पत्नियों, खजाना तथा भूमि में आसक्त होकर मैंने अनन्त क्लेश भोगा है।(१०.५१.४७)

कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम्
वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर् गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः

अत्यन्त गर्वित होकर मैंने अपने को शरीर मान लिया था, जो घड़े या दीवाल जैसी एक भौतिक वस्तु है। अपने को मनुष्यों में देवता समझ कर मैंने अपने सारथियों, हाथियों, अश्वारोहियों, पैदल सैनिकों तथा सेनापतियों से घिरकर और अपने प्रवंचित गर्व के कारण आपकी अवमानना करते हुए पृथ्वी भर में विचरण किया।(१०.५१.४८)

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः

करणीय के विचारों में लीन, अत्यन्त लोभी तथा इन्द्रिय-भोग से प्रसन्न रहने वाले मनुष्य का सदा सतर्क रहने वाले आपसे अचानक सामना होता है। जैसे भूखा साँप चूहे के आगे अपने विषैले दाँतों को चाटता है उसी तरह आप उसके समक्ष मृत्यु के रूप में प्रकट होते हैं।(१०.५१.४९)

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन् मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः
स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः

जो शरीर पहले भयानक हाथियों या सोने से सजाये हुए रथों पर सवार होता है और 'राजा' के नाम से जाना जाता है, वही बाद में आपकी अजेय काल-शक्ति से मल, कृमि या भस्म कहलाता है।(१०.५१.५०)

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवन्दितः
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते
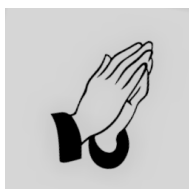
समस्त दिग-दिगान्तरों को जीत कर और इस तरह लड़ाई से मुक्त होकर मनुष्य भव्य राज सिंहासन पर आसीन होता है और अपने उन नायको से प्रशंसित होता है, जो किसी समय उसके बराबर थे। किन्तु जब वह स्त्रियों के कक्ष में प्रवेश करता है जहाँ संभोग-सुख पाया जाता है, तो हे प्रभु, वह पालतू पशु की तरह हाँका जाता है।(१०.५१.५१)

करोति कर्माणि तपःसुनिष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत्
पुनश्च भूयासमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते

जो राजा पहले से प्राप्त शक्ति से भी और अधिक शक्ति (अधिकार) की कामना करता है, वह तपस्या करके तथा इन्द्रिय-भोग का परित्याग करके कठोरता से अपने कर्तव्य पूरा करता है। किन्तु जिसके वेग (तृष्णाएँ) यह सोचते हुए कि "मैं स्वतंत्र तथा सर्वोच्च हूँ," इतने प्रबल हैं, वह कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता।(१०.५१.५२)

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज् जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः

हे अच्युत, जब भ्रमणशील आत्मा (जीव) का भौतिक जीवन समाप्त हो जाता है, तो वह आपके भक्तों की संगति प्राप्त कर सकता है। और जब वह उनकी संगति करता है, तो भक्तों के लक्ष्य और समस्त कारणों तथा उनके प्रभावों के स्वामी आपके प्रति उसमें भक्ति उत्पन्न होती है।(१०.५१.५३)

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया
यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः

हे प्रभु, मैं सोचता हूँ कि आपने मुझ पर कृपा की है क्योंकि आपने साम्राज्य के प्रति मेरी आसक्ति अपने आप समाप्त हो गई है। ऐसी मुक्ति (स्वतंत्रता) के लिए विशाल साम्राज्य के साधु शासकों द्वारा प्रार्थना की जाती है, जो एकान्त जीवन बिताने के लिए जंगल में जाना चाहते हैं।(१०.५१.५४)

न कामयेऽन्यं तव पादसेवनाद् अकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम्

हे सर्वशक्तिमान, मैं आपके चरणकमलों की सेवा के अतिरिक्त और किसी वर की कामना नहीं करता क्योंकि यह वर उन लोगों के द्वारा उत्सुकतापूर्वक चाहा जाता है, जो भौतिक कामनाओं से मुक्त हैं। हे हरि! ऐसा कौन प्रबुद्ध व्यक्ति होगा जो मुक्तिदाता अर्थात् आपकी पूजा करते हुए ऐसा वर चुनेगा जो उसका ही बन्धन बने? (१०.५१.५५)

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञाप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम्

इसलिए हे प्रभु, उन समस्त भौतिक इच्छाओं को त्यागकर जो रजो, तमो तथा सतो गुणों से बद्ध हैं, मैं शरण लेने के लिए आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रार्थना कर रहा हूँ। आप संसारी उपाधियों से प्रच्छन्न नहीं हैं, प्रत्युत आप शुद्ध ज्ञान से पूर्ण तथा भौतिक गुणों से परे परम सत्य हैं।(१०.५१.५६)

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैर् अवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित्
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन् अभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश
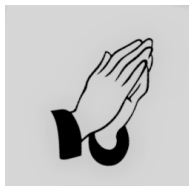
इतने दीर्घकाल से मैं इस जगत में कष्टों से पीड़ित होता रहा हूँ और शोक से जलता रहा हूँ। मेरे छह शत्रु कभी भी तृप्त नहीं होते और मुझे शान्ति नहीं मिल पाती। अत: हे शरणदाता, हे परमात्मा! मेरी रक्षा करें। हे प्रभु, सौभाग्य से इतने संकट के बीच मैं आपके चरणकमलों तक पहुँचा हूँ, जो सत्य रूप हैं और जो निर्भय तथा शोक-रहित बनाने वाले हैं।(१०.५१.५७)

67.श्री वैदर्भिकृत स्तवः(रुक्मिणी)

श्रीरुक्मिण्युवाच

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे

[ब्राह्मण द्वारा पढ़े जा रहे अपने पत्र में] श्री रुक्मिणी ने कहा : हे जगतों के सौन्दर्य, आपके गुणों के विषय में सुनकर जो कि सुनने वालों के कानों में प्रवेश करके उनके शारीरिक ताप को दूर कर देते हैं और आपके सौन्दर्य के बारे में सुनकर कि वह देखने वाले की सारी दृष्टि संबंधी इच्छाओं को पूरा करता है, हे कृष्ण, मैंने अपना निर्लज्ज मन आप पर स्थिर कर दिया है।(१०.५२.३७)

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप- विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम्
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम्

हे मुकुन्द, आप वंश, चरित्र, सौन्दर्य, ज्ञान, युवावस्था, सम्पदा तथा प्रभाव में केवल अपने समान हैं। हे पुरुषों में सिंह, आप सारी मानवता के मन को आनन्दित करते हैं। उपयुक्त समय आ जाने पर ऐसी कौन-सी राजकुल की धीर तथा विवाहयोग्य कन्या होगी जो आपको पति रूप में नहीं चुनेगी ?(१०.५२.३८)

तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जायाम् आत्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष

अतएव हे प्रभु, मैंने आपको अपने पति-रूप में चुना है और मैं आपकी शरण में आई हूँ। हे सर्वशक्तिमान, तुरन्त आइये और मुझे अपनी पत्नी बना लीजिये। हे मेरे कमल-नेत्र स्वामी, किसी सिंह की सम्पत्ति को चुराने वाले सियार जैसे शिशुपाल को एक वीर के अंश को कभी छूने न दीजिये।(१०.५२.३९)

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये

यदि मैंने पुण्य कर्म, यज्ञ, दान, अनुष्ठान-व्रत के साथ साथ देवताओं, ब्राह्मणों तथा गुरुओं की पूजा द्वारा भगवान् की पर्याप्त रूप से उपासना की हो तो हे गदाग्रज, आप आकर मेरा हाथ ग्रहण करें और दमघोष का पुत्र या कोई अन्य ग्रहण न करने पाये।(१०.५२.४०)

श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्
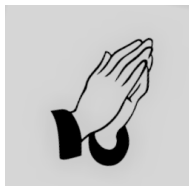
हे अजित, कल जब मेरा विवाहोत्सव प्रारम्भ हो तो आप विदर्भ में अपनी सेना के नायकों से घिर कर गुप्त रूप से आयें। तत्पश्चात् चैद्य तथा मगधेन्द्र की सेनाओं को कुचल कर अपने पराक्रम से मुझे जीत कर राक्षस विधि से मेरे साथ विवाह कर लें।(१०.५२.४१)

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धून् त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम्
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवयात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात्

चूँकि मैं रनिवास के भीतर रहूँगी अत: आप आश्चर्य करेंगे और सोचेंगे कि "मैं तुम्हारे कुछ सम्बंधियों को मारे बिना तुम्हें कैसे ले जा सकता हूँ?" किन्तु मैं आपको एक विधि बतलाऊँगी: विवाह के एक दिन पूर्व राजकुल के देवता के सम्मान में एक विशाल जुलूस निकलेगा जिसमें दुलहन नगर के बाहर देवी गिरिजा का दर्शन करने जाती है।(१०.५२.४२)

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात्

"हे कमल-नयन, शिवजी जैसे महात्मा आपके चरणकमलों की धूलि में स्नान करके अपने अज्ञान को नष्ट करना चाहते हैं। यदि मुझे आपकी कृपा प्राप्त नहीं होती तो मैं अपने उस प्राण को त्याग दूँगी जो मेरे द्वारा की जाने वाली कठिन तपस्या के कारण क्षीण हो चुका होगा। तब कहीं सैकड़ों जन्मों तक परिश्रम करने के बाद शायद आपकी कृपा प्राप्त हो सके।"(१०.५२.४३)

68. धरणीदेवीकृत स्तवः

भूमिरुवाच
नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते

भूमिदेवी ने कहा : हे देवदेव, हे शंख, चक्र तथा गदा के धारणकर्ता, आपको नमस्कार है। हे परमात्मा, आप अपने भक्तों की इच्छाओं को पूरा करने के लिए विविध रूप धारण करते हैं। आपको नमस्कार है।(१०.५९.२५)

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्तेपङ्कजाङ्घ्रये

हे प्रभु, आपको मेरा सादर नमस्कार है। आपके उदर में कमल के फूल जैसा गड्ढा अंकित है, आप सदैव कमल के फूल की मालाओं से सुसज्जित रहते हैं, आपकी चितवन कमल जैसी शीतल है और आपके चरणों में कमल अंकित हैं।(१०.५९.२६)

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः

हे वासुदेव, हे विष्णु, हे आदि-पुरुष, हे आदि-बीज भगवान्, आपको सादर नमस्कार है। हे सर्वज्ञ, आपको नमस्कार है।(१०.५९.२७)

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये
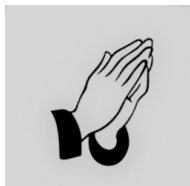
परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन्नमोऽस्तु त

अनन्त शक्तियों वाले, इस ब्रह्माण्ड के अजन्मा जनक ब्रह्म, आपको नमस्कार है। हे वर तथा अवर के आत्मा, हे सृजित तत्त्वों के आत्मा, हे सर्वव्यापक परमात्मा, आपको नमस्कार है।(१०.५९.२८)

त्वं वै सिसृक्षुरज उत्कटं प्रभो तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः

हे अजन्मा प्रभु, सृजन की इच्छा करके आप वृद्धि करते हैं और तब रजो गुण धारण करते हैं। इसी तरह जब आप ब्रह्माण्ड का संहार करना चाहते हैं, तो तमो गुण और जब इसका पालन करना चाहते हैं, तो सतो गुण धारण करते हैं। तो भी आप इन गुणों से अनाच्छादित रहते हैं। हे जगत्पति, आप काल, प्रधान तथा पुरुष हैं फिर भी आप पृथक् एवं भिन्न रहते हैं।(१०.५९.२९)

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवनयं भ्रमः

यह भ्रम है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रिय-विषय, देवता, मन, इन्द्रियाँ, मिथ्या अहंकार तथा महत् तत्त्व आपसे स्वतंत्र होकर विद्यमान हैं। वास्तव में वे सब आपके भीतर हैं क्योंकि हे प्रभु, आप अद्वितीय हैं।(१०.५९.३०)

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः
तत्पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम्

यह भौमासुर का पुत्र है। यह भयभीत है और आपके चरणकमलों के समीप आ रहा है क्योंकि आप उन सबों के कष्टों को हर लेते हैं, जो आपकी शरण में आते हैं। कृपया इसकी रक्षा कीजिये। आप इसके सिर पर अपना कर-कमल रखें जो समस्त पापों को दूर करने वाला है।(१०.५९.३१)

69.श्री माहेश्वर ज्वरस्य श्री कृष्णा स्तवः

ज्वर उवाच

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशम् सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम्प्रशान्तम्

शिवज्वर ने कहा : हे अनन्त शक्ति वाले, समस्त जीवों के परमात्मा भगवान्, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप शुद्ध तथा पूर्ण चेतना से युक्त हैं और इस विराट ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन तथा संहार के कारण हैं। आप पूर्ण शान्त हैं और आप परम सत्य (ब्रह्म) हैं जिनका प्रकारान्तर से सारे वेद उल्लेख करते हैं।(१०.६३.२५)

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः
तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाहस् त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये

काल, भाग्य, कर्म, जीव तथा उसका स्वभाव, सूक्ष्म भौतिक तत्त्व, भौतिक शरीर, प्राणवायु, मिथ्या अहंकार, विभिन्न इन्द्रियाँ तथा जीव के सूक्ष्म शरीर में प्रतिबिम्बित इन सबों की समग्रता—ये सभी आपकी माया हैं, जो बीज तथा पौधे के अन्तहीन चक्र जैसे हैं। इस माया का निषेध, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।(१०.६३.२६)
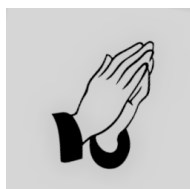
नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर् देवान् साधून्लोकसेतून् बिभर्षि
हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः

आप देवताओं, साधुओं तथा इस जगत के लिए धर्मसंहिता को बनाये रखने के लिए अनेक भावों से लीलाएँ करते हैं। इन लीलाओं से आप उनका भी वध करते हैं, जो सही मार्ग से हट जाते हैं और हिंसा द्वारा जीवन-यापन करते हैं। निस्सन्देह आपका वर्तमान अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिए है।(१०.६३.२७)

तप्तोऽहम्ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण
तावत्तापो देहिनां तेऽन्घ्रिमूलं नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः

मैं आपके भयानक ज्वर अस्त्र के भयानक तेज से त्रस्त हूँ जो शीतल होकर भी ज्वल्यमान है। सारे देहधारी जीव तब तक कष्ट भोगते हैं जब तक वे भौतिक महत्वाकांक्षाओं से बँधे रहते हैं और आपके चरणकमलों की सेवा करने से दूर भागते हैं।(१०.६३.२८)

70.श्री रुद्रस्य भगवत स्तवः

श्रीरुद्र उवाच
त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर् गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम्

श्री रुद्र ने कहा : आप ही एकमात्र परम सत्य, परम ज्योति तथा ब्रह्म की शाब्दिक अभिव्यक्ति के भीतर के गुह्य रहस्य हैं। जिनके हृदय निर्मल हैं, वे आपका दर्शन कर सकते हैं क्योंकि आप आकाश की भाँति निर्मल हैं।(१०.६३.३४)

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी
चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः
रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः

आकाश आपकी नाभि है, अग्नि आपका मुख है, जल आपका वीर्य है और स्वर्ग आपका सिर है। दिशाएँ आपकी श्रवणेन्द्रिय (कान) हैं, औषधि-पौधे आपके शरीर के रोएँ हैं तथा जलधारक बादल आपके सिर के बाल हैं। पृथ्वी आपका पाँव है, चन्द्रमा आपका मन है तथा सूर्य आपकी दृष्टि (नेत्र) है, जबकि मैं आपका अहंकार हूँ। समुद्र आपका उदर है, इन्द्र आपकी भुजा है, ब्रह्मा आपकी बुद्धि है, प्रजापति आपकी जननेन्द्रिय (लिंग) है और धर्म आपका हृदय है। असल में आप आदि-पुरुष हैं, लोकों के स्रष्टा हैं।(१०.६३.३५-३६)

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो हिताय
वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त

हे असीम शक्ति के स्वामी, इस भौतिक जगत में आपका वर्तमान अवतार न्याय के सिद्धान्तों की रक्षा करने तथा समग्र ब्रह्माण्ड को लाभ दिलाने के निमित्त है। हममें से प्रत्येक देवता आपकी कृपा तथा सत्ता पर आश्रित है और हम सभी देवता सात लोक मण्डलों को उत्पन्न करते हैं।(१०.६३.३७)

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस् तुर्यः स्वदृग्धेतुरहेतुरीशः
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै

आप अद्वितीय, दिव्य तथा स्वयं-प्रकाश आदि-पुरुष हैं। अहैतुक होकर भी आप सबों के कारण हैं और परम नियन्ता हैं। तिस पर भी आप पदार्थ के उन विकारों के रूप में अनुभव किये जाते हैं, जो आपकी माया द्वारा उत्पन्न हैं। आप इन विकारों की स्वीकृति इसलिए देते हैं जिससे विविध भौतिक गुण पूरी तरह प्रकट हो सकें।(१०.६३.३८)

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति
एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वम् आत्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन्

हे सर्वशक्तिमान, जिस प्रकार सूर्य बादल से ढका होने पर भी बादल को तथा अन्य सारे दृश्य रूपों को भी प्रकाशित करता है उसी तरह आप भौतिक गुणों से ढके रहने पर भी स्वयं प्रकाशित बने रहते हैं और उन सारे गुणों को, उन गुणों से युक्त जीवों समेत, प्रकट करते हैं।(१०.६३.३९)

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु
उन्मज्ज्न्ति निमज्ज्न्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे

आपकी माया से मोहित बुद्धि वाले अपने बच्चों, पत्नी, घर इत्यादि में पूरी तरह से लिप्त और भौतिक दुख के सागर में निमग्न लोग कभी ऊपर उठते हैं, तो कभी नीचे डुब जाते हैं।(१०.६३.४०)

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः

जिसने ईश्वर से यह मनुष्य जीवन उपहार के रूप में प्राप्त किया है किन्तु फिर भी जो अपनी इन्द्रियों को वश में करने तथा आपके चरणों का आदर करने में विफल रहता है, वह सचमुच शोचनीय है क्योंकि वह अपने को ही धोखा देता है।(१०.६३.४१)

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम्
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन्

जो मर्त्य प्राणी अपने इन्द्रियविषयों के लिए, जिनका की स्वभाव सर्वथा विपरीत है, आपको, अर्थात् उसकी असली आत्मा, सर्वप्रिय मित्र तथा स्वामी हैं, छोड़ देता है, वह अमृत छोड़ कर उसके बदले में विष-पान करता है।(१०.६३.४२)

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वाम् आत्मानं प्रेष्ठमीश्वरम्

मैंने, ब्रह्मा ने, अन्य देवता तथा शुद्ध मन वाले मुनिगण—सभी लोगों ने पूर्ण मनोयोग से आपकी शरण ग्रहण की है। आप हमारे प्रियतम आत्मा तथा प्रभु हैं।(१०.६३.४३)

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं प्रसान्तं सुहृदात्मदैवम्
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम्
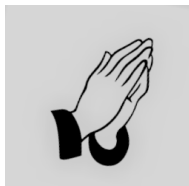
हे भगवन्, भौतिक जीवन से मुक्त होने के लिए हम आपकी पूजा करते हैं। आप ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता और इसके सृजन तथा मृत्यु के कारण हैं। आप समभाव तथा पूर्ण शान्त, असली मित्र, आत्मा तथा पूज्य स्वामी हैं। आप अद्वितीय हैं और समस्त जगतों तथा जीवों के आश्रय हैं।(१०.६३.४४)

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाभयं दत्तममुष्य देव
सम्पाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः

यह बाणासुर मेरा अति प्रिय तथा आज्ञाकारी अनुचर है और इसे मैंने अभयदान दिया है। अतएव हे प्रभु, इसे आप उसी तरह अपनी कृपा प्रदान करें जिस तरह आपने असुर-राज प्रह्लाद पर कृपा दर्शाई थी।(१०.६३.४५)

71.श्री नृग राजस्य श्री कृष्णा स्तवः

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः

हे केशव, मैं आपके दास रूप में ब्राह्मणों का भक्त था और उनके प्रति उदार था और मैं सदैव आपके दर्शन के लिए लालायित रहता था। इसीलिए आजतक मैं (अपने विगत जीवन को) नहीं भूल पाया।(१०.६४.२५)

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः

हे विभु! मैं आपको अपने समक्ष कैसे देख पा रहा हूँ? आप तो परमात्मा हैं जिस पर बड़े से बड़े योगेश्वर केवल वेद रूपी दिव्य आँख के द्वारा अपने शुद्ध हृदयों के भीतर ध्यान लगा सकते हैं। तो हे दिव्य प्रभु, आप किस तरह मुझे प्रत्यक्ष दिख रहे हैं क्योंकि मेरी बुद्धि भौतिक जीवन के कठिन कष्टों से अन्धी हो चुकी है? जिसने इस जगत के भव-बन्धनों को समाप्त कर दिया है, वही आपको देख सकता है।(१०.६४.२६)

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय
अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम्

हे देवदेव, जगन्नाथ, गोविन्द, पुरुषोत्तम, नारायण, हृषीकेश, पुण्यश्लोक, अच्युत, अव्यय, हे कृष्ण, कृपा करके मुझे अब देवलोक के लिए प्रस्थान करने की अनुमति दें। हे प्रभु, मैं जहाँ भी रहूँ, मेरा मन सदैव आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करे।(१०.६४.२७-२८)

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः

हे वसुदेवपुत्र कृष्ण, मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ आप समस्तजीवों के उद्गम हैं, परम सत्य हैं, अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं और समस्त आध्यात्मिक प्रवर्गों के स्वामी हैं।(१०.६४.२९)
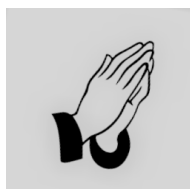
72.यमुनाकृत श्री बलदेव स्तवः

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम्
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते

[यमुनादेवी ने कहा] : हे विशाल भुजाओं वाले राम, हे राम, मैं आपके पराक्रम के बारे में कुछ भी नहीं जानती। हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, आप अपने एक अंशमात्र से पृथ्वी को धारण किए हुए हैं।(१०.६५.२८)

परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम्
मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन् प्रपन्नां भक्तवत्सल

हे प्रभु, आप मुझे छोड़ दें। हे ब्रह्माण्ड के आत्मा, मैं भगवान् के रूप में आपके पद को नहीं जानती थी किन्तु अब मैं आपकी शरण में हूँ और आप अपने भक्तों पर सदैव दयालु रहते हैं।(१०.६५.२९)

73.श्री नारदस्य भगवत स्तुति

श्रीनारद उवाच
नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम्
निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु

श्री नारद ने कहा : हे सर्वशक्तिमान, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि समस्त जगतों के शासक आप सारे लोगों से मित्रता प्रदर्शित करते हुए भी दुष्टों का दमन करते हैं। जैसा कि हम सभी लोग भलीभाँति जानते हैं आप इस ब्रह्माण्ड में इसके पालन तथा रक्षण के द्वारा परम लाभ प्रदान करने के लिए स्वेच्छा से अवतरित होते हैं।(१०.६९.१७)

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात्

अब मैंने आपके उन चरणों के दर्शन किये हैं, जो आपके भक्तों को मोक्ष प्रदान करते हैं तथा जिन्हें ब्रह्मा तथा अन्य अथाह बुद्धि वाले महापुरुष भी केवल अपने हृदयों में ध्यान कर सकते हैं किन्तु जो भवकूप में गिर चुके हैं, वे उद्धार हेतु जिनकी शरण ग्रहण करते हैं। आप मुझ पर कृपालु हों जिससे विचरण करते हुए मैं निरन्तर आपका स्मरण कर सकूँ। कृपा करके मुझे शक्ति दें कि मैं आपका स्मरण कर सकूँ।(१०.६९.१८)

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम्
योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया

[नारद ने कहा] : हे परमात्मा, हे योगेश्वर, अब हम आपकी योगशक्तियों को समझ सके हैं, जिन्हें बड़े बड़े योगी भी मुश्किल से समझ पाते हैं। एकमात्र आपके चरणों की सेवा करने से मैं आपकी शक्तियों का अनुभव कर सका हूँ।(१०.६९.३८)

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान्
पर्यटामि तवोद्गायन् लीला भुवनपावनीः
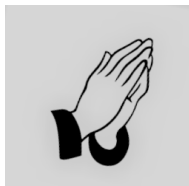
हे प्रभु, मुझे जाने की आज्ञा दें। मैं उन लोकों में, जो आपके यश से आप्लावित हैं, ब्रह्माण्डको पवित्र करने वाली आपकी लीलाओं का जोर जोर से गायन करते हुए विचरण करूँगा।(१०.६९.३९)

74.जरासन्ध रुद्धा राज-गण कृत

राजान ऊचुः

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्नभयभञ्जन
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः

[दूत के द्वारा दिये गये वृतान्त के अनुसार] राजाओं ने कहा : हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे अप्रमेय आत्मा, हे शरणागतों के भय के विनाशक, हम पृथक् पृथक् मत रखने के बावजूद संसार से भयभीत होकर आपके पास शरण लेने आये हैं।(१०.७०.२५)

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै

इस जगत में लोग सदैव पापकर्मों में लगे रहते हैं और इस तरह वे अपने असली कर्तव्य के विषय में, जो आपके आदेशानुसार आपकी पूजा करना है, विभ्रमित रहते हैं। इस कार्य से सचमुच ही उन्हें सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। हम सर्वशक्तिमान भगवान् को नमस्कार करते हैं, जो काल रूप में प्रकट होते हैं और इस जगत में दीर्घायु की प्रबल आशा को सहसा छिन्न कर देते हैं।(१०.७०.२६)

लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः
कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः

आप विश्व के अधिष्ठाता प्रभु हैं और आप इस जगत में सन्तों की रक्षा करने तथा दुष्टों का दमन करने के लिए अपनी निजी शक्ति के साथ अवतरित हुए हैं। हे प्रभु, हम यह समझ नहीं पाते कि कोई आपके नियम का उल्लंघन करने पर भी अपने कर्म के फलों को कैसे भोग सकता है? (१०.७०.२७)

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः
हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह

हे प्रभु, इस शवतुल्य शरीर से, जो कि सदैव भय से ओतप्रोत रहता है, हम राजा लोग सुख के बोझ को स्वप्न की तरह वहन करते हैं। इस तरह हमने असली आत्म-सुख को त्याग दिया है, जो आपकी निस्वार्थ सेवा करने से प्राप्त होता है। इतने अधिक अभागे होने से हम आपकी माया के पाश के अन्तर्गत कष्ट भोग रहे हैं।(१०.७०.२८)

तन्नो भवान् प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात्
यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको बिभ्रद्रुरोध भवने मृगराडिवावीः

इसलिए आप हम बन्दियों को कर्म के बन्धनों से, जो कि मगध के राजा के रूप में प्रकट हुए हैं, मुक्त कीजिये, क्योंकि आपके चरण उन लोगों के शोक को हरने वाले हैं, जो उनकी शरण में जाते हैं। दस हजार उन्मत्त हाथियों के पराक्रम को वश में करके अकेले उसने हम सबों को अपने घर में उसी तरह बन्दी कर रखा है, जिस तरह कोई सिंह भेड़ों को पकड़ लेता है।(१०.७०.२९)
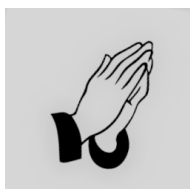
यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम्
जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि

हे चक्रधारी, आपकी शक्ति अथाह है और इस तरह आपने जरासन्ध को युद्ध में सत्रह बार कुचला है। किन्तु मानवीय कामकाज में लीन होने से आपने उसे आप को पराजित करने का एक बार अवसर दिया है। अब वह गर्व से इस कदर फूला हुआ है कि आपकी जनता रूप हम सबों को, सताने का दुस्साहस कर रहा है। हे अजित, आप इस स्थिति को सुधारें।(१०.७०.३०)

75.जरासन्ध कारगारन मुक्तानाम

राजान ऊचुः
नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय
प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोरसंसृतेः

राजाओं ने कहा : हे शासनकर्ता देवताओं के स्वामी, हे शरणागत भक्तों के क्लश को नष्ट करने वाले, हम आपको नमस्कार करते हैं। चूँकि हमने आपकी शरण ग्रहण की है, अतः हे अव्यय कृष्ण, हमें इस विकट भौतिक जीवन से बचाइये, जिसने हमें इतना निराश बना दिया है।(१०.७३.८)

नैनं नाथानुसूयामो मागधं मधुसूदन
अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो

हे प्रभु मधुसूदन, हम इस मगधराज को दोष नहीं देते क्योंकि वास्तव में यह तो आपकी कृपा है कि हे विभु, सारे राजा अपने राज-पद से नीचे गिरते हैं।(१०.७३.९)

राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः
त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः

अपने ऐश्वर्य तथा शासनशक्ति के मद से चूर राजा आत्मसंयम खो देता है और अपना असली कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता। इस तरह आपकी मायाशक्ति से मोहग्रस्त होकर वह अपनी क्षणिक सम्पदा को स्थायी मान बैठता है।(१०.७३.१०)

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम्
एवं वैकारिकीं मायाम् अयुक्ता वस्तु चक्षते

जिस तरह बालबुद्धि वाले लोग मरूस्थल में मृगतृष्णा को जलाशय मान लेते हैं, उसी तरह जो अविवेकी हैं, वे माया के विकारों को वास्तविक मान लेते हैं।(१०.७३.११)

वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः
घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः
त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरन्तेवीर्येण विचालिताः श्रियः
कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते

इसके पूर्व धन के मद से अन्धे होकर हमने इस पृथ्वी को जीतना चाहा था और इस तरह हम अपनी ही प्रजा को क्रूरतापूर्वक यातना देते हुए विजय पाने के लिए एक-दूसरे से लड़ते रहे। हे प्रभु, हमने दम्भ में आकर अपने समक्ष मृत्यु रूप में उपस्थित
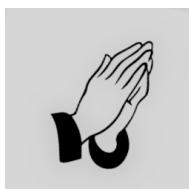
आपका अनादर किया। किन्तु हे कृष्ण, अब आपका वह शक्तिशाली स्वरूप जो काल कहलाता है और रहस्यमय ढंग से तथा दुर्दम रूप में गतिशील है उसने हमसे हमारे ऐश्वर्य छीन लिये हैं। चूँकि अब आपने दया करके हमारे गर्व को नष्ट कर दिया है, अतएव हमारी आपसे याचना है कि हम केवल आपके चरणकमलों का स्मरण करते रहें।(१०.७३.१२-१३)

अथो न राज्यम्मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा
उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम्

अब हम कभी भी मृगतृष्णा तुल्य ऐसे राज्य के लिए लालायित नहीं होंगे जो इस मर्त्य शरीर द्वारा सेवित हो वह शरीर जो रोग तथा कष्ट का कारण हो और प्रत्येक क्षण क्षीण होने वाला हो। हे विभु, न ही हम अगले जन्म में पुण्यकर्म के दिव्य फल भोगने की लालसा रखेंगे, क्योंकि ऐसे फलों का वायदा कानों के लिए रिक्त बहलावे के समान है।(१०.७३.१४)

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः
स्मृतिर्यथा न विरमेद् अपि संसरतामिह

कृपया हमें बतलाएँ कि हम किस तरह आपके चरणकमलों का निरन्तर स्मरण कर सकें, यद्यपि हम इस संसार में जन्म-मृत्यु के चक्र में घूम रहे हैं।(१०.७३.१५)

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः

हम वसुदेव के पुत्र भगवान् कृष्ण अर्थात् हरि को बारम्बार नमस्कार करते हैं। वह परमात्मा गोविन्द उन सबों के कष्टों को दूर कर देता है, जो उनकी शरण में जाते हैं।(१०.७३.१६)

76.श्री युधिस्ठिरस्य श्री कृष्णा स्तवः

श्रीयुधिष्ठिर उवाच
ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोका महेश्वराः
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम्
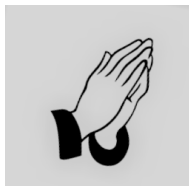
श्री युधिष्ठिर ने कहा : तीनों लोकों के प्रतिष्ठित गुरु तथा विभिन्न लोकों के निवासी एवं शासक आपके आदेश को, जो विरले ही किसी को मिलता है, सिर-आँखों पर लेते हैं।(१०.७४.२)

स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम्
धत्तेऽनुशासनं भूमंस् तदत्यन्तविडम्बनम्

वही कमल-नेत्र भगवान् आप उन दीन मूर्खों के आदेशों को स्वीकार करते हैं, जो अपने आपको शासक मान बैठते हैं, जबकि हे सर्वव्यापी, यह आपके पक्ष में महान् आडम्बर है।(१०.७४.३)

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः
कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः

किन्तु वस्तुतः परम सत्य, परमात्मा, अद्वितीय आदि पुरुष का तेज उनके कर्मों से न तो किसी प्रकार बढ़ता है, न घटता है, जिस प्रकार सूर्य का तेज उसकी गति से घटता-बढ़ता नहीं है।(१०.७४.४)

न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव
त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृती

हे अजित माधव, आपके भक्त तक "मैं तथा मेरा" और "तुम तथा तुम्हारा" में कोई अन्तर नहीं मानते, क्योंकि यह तो पशुओं की विकृत प्रवृत्ति है।(१०.७४.५)

77.मुनिनाम प्रतिवचनेन स्तोत्रं

श्रीमुनय ऊचुः
यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः
यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रम्भगवद्विचेष्टितम्

उन महान् मुनियों ने कहा : आपकी माया-शक्ति ने सत्य को सर्वोत्तम ढंग से जानने वाले तथा विश्व के प्रमुख स्रष्टा हम सबों को मोहित कर लिया है। ओह! भगवान् का आचरण कितना आश्चर्यजनक है! वे अपने को मानव जैसे कार्यों से आच्छादित करके अपने को किसी श्रेष्ठ नियंत्रण के अधीन होने का स्वाँग रच रहे हैं।(१०.८४.१६)

अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा
भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम्

निस्सन्देह, सर्वशक्तिमान की मनुष्य जैसी लीलाएँ केवल बहाना हैं। वे बिना प्रयास के ही अपने में से इस रंगबिरंगी सृष्टि को उत्पन्न करते हैं, इसका पालन करते हैं और फिर इसे निगल जाते हैं। आप यह सब बिना बँधे ही करते हैं, जिस तरह पृथ्वी-तत्त्व अपने विविध रूपान्तरों (विकारों) में अनेक नाम तथा रूप ग्रहण करती रहती है।(१०.८४.१७)

अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च
स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान्

तो भी उचित अवसरों पर आप अपने भक्तों की रक्षा करने तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिए शुद्ध सतोगुणी रूप धारण करते हैं। इस तरह वर्णाश्रम के आत्मास्वरूप आप भगवान् अपनी आनन्द-लीलाओं का भोग करते हुए वेदों के शाश्वत पथ को बनाये रखते हैं।(१०.८४.१८)

ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः
यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तम् अव्यक्तं च ततः परम्

वेद आपके निर्मल हृदय हैं और उनके माध्यम से तपस्या, अध्ययन एवं आत्मसंयम द्वारा मनुष्य प्रकट, अप्रकट तथा इन दोनों से परे शुद्ध अस्तित्व को देख सकता है।(१०.८४.१९)

तस्माद् ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः
सभाजयसि सद्धाम तद् ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान्

अतएव हे परब्रह्म, आप ब्राह्मण कुल के सदस्यों का आदर करते हैं, क्योंकि वे ही पूर्ण अभिकर्ता हैं, जिनके माध्यम से वेदों के साक्ष्य द्वारा कोई व्यक्ति आपका साक्षात्कार कर सकता है। इसी कारण से आप ब्राह्मणों के अग्रणी पूजक हैं।(१०.८४.२०)
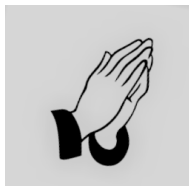
अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः
त्वया सङ्गम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः

आज हमारा जन्म, शिक्षा, तपस्या तथा दृष्टि सभी पूर्ण हो चुके हैं, क्योंकि हम समस्त सन्तपुरुषों के लक्ष्य, आपसे सान्निध्य प्राप्त करने में समर्थ हो सके हैं। निस्सन्देह आप स्वयं ही अनन्तिम, अर्थात् परम आशीर्वाद हैं।(१०.८४.२१)

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे
स्वयोगमाययाच्छन्न-महिम्ने परमात्मने

हम अनन्त बुद्धि वाले परमात्मा अर्थात् पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हैं, जिन्होंने अपनी योगमाया द्वारा अपनी महानता को छिपा रखा है।(१०.८४.२२)

न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः
मायाजवनिकाच्छन्नम् आत्मानं कालमीश्वरम्

न तो ये राजा, न ही वृष्णिगण, जो आपकी घनिष्ठ संगति का आनन्द उठाते हैं, आपको समस्त सृष्टि के आत्मा, काल की शक्ति तथा परम नियन्ता के रूप में जानते हैं। उनके लिए तो आप माया के पर्दे से ढके रहते हैं।(१०.८४.२३)

यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक्
नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम्
एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया
मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात्

सोया हुआ व्यक्ति अपने को एक वैकल्पिक सत्य मानता है और स्वयं यह देखते हुए कि उसके विविध नाम तथा रूप हैं, वह अपनी जाग्रत पहचान को भूल जाता है, जो उसके स्वप्न से सर्वथा पृथक् होती है। इसी प्रकार जिसकी चेतना माया द्वारा मोहित हो जाती है, वह भौतिक वस्तुओं के ही नामों तथा स्वरूपों को देखता है। इस तरह ऐसा पुरुष अपनी स्मरणशक्ति खो देता है और आपको जान नहीं सकता।(१०.८४.२४-२५)

तस्याद्य ते ददृशिमाङ्घ्रिमघौघमर्ष-तीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः
उत्सिक्तभक्त्युपहताशय जीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथानुगृहान भक्तान्

आज हमने आपके उन चरणों का प्रत्यक्ष दर्शन पा लिया, जो उस पवित्र गंगा नदी के उद्गम हैं, जो पापों के ढेरों को धो डालती है। पूर्णयोगी आपके चरणों का ध्यान उत्तम विधि से अपने हृदयों में कर सकते हैं, किन्तु केवल वे, जो आपकी पूरे मन से भक्ति करते हैं और इस तरह आत्मा के आवरण—भौतिक मन—को दूर करते हैं, वे आपको अपने अन्तिम गन्तव्य के रूप में प्राप्त करते हैं। अतएव आप हम अपने भक्तों पर कृपा प्रदर्शित करें।(१०.८४.२६)

78.श्री राम-कृष्णाव प्रति श्री वसुदेव स्तुति

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सङ्कर्षण सनातन
जाने वामस्य यत्साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ
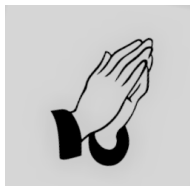
[वसुदेव ने कहा] : हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे योगीश्रेष्ठ, हे नित्य संकर्षण, मैं जानता हूँ कि तुम दोनों निजी तौर पर ब्रह्माण्ड की सृष्टि के कारणस्वरूप और साथ ही साथ सृष्टि के अवयव भी हो।(१०.८५.३)

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः

आप पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् हैं, जो प्रकृति तथा प्रकृति के स्रष्टा (महाविष्णु) दोनों के स्वामी के रूप में प्रकट होते हैं। फिर भी प्रत्येक वस्तु जिस का अस्तित्व बनता है और जब कभी ऐसा होता है, वह आपके भीतर, आपके द्वारा, आपसे, आपके लिए तथा आपसे ही संबंधित होती है।(१०.८५.४)

एतन्नानाविधं विश्वम् आत्मसृष्टमधोक्षज
आत्मनानुप्रविश्यात्मन् प्राणो जीवो बिभर्ष्यज

हे दिव्य प्रभु, आपने इस विचित्र ब्रह्माण्ड की रचना अपने में से की और तब अपने परमात्मा स्वरूप में आप इसके भीतर प्रविष्ट हुए। इस तरह हे अजन्मा परमात्मा, आप प्रत्येक व्यक्ति के प्राण तथा चेतना के रूप में सृष्टि का पालन करने वाले हैं।(१०.८५.५)

प्राणादीनां विश्वसृजम शक्तयो याः परस्य ताः
पारतन्त्र्याद्वैसादृष्याद् द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम्

प्राण तथा ब्रह्माण्ड-सृजन के अन्य तत्त्व, जो भी शक्तियाँ प्रदर्शित करते हैं, वे वास्तव में भगवान् की निजी शक्तियाँ हैं, क्योंकि प्राण तथा पदार्थ दोनों ही उनके अधीन तथा उनके आश्रित हैं और एक-दूसरे से भिन्न भी हैं। इस तरह इस भौतिक जगत की प्रत्येक सक्रिय वस्तु भगवान् द्वारा ही गतिशील बनाई जाती है।(१०.८५.६)

कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम्
यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर् वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान्

चन्द्रमा की कान्ति, अग्नि का तेज, सूर्य की चमक, तारों का टिमटिमाना, बिजली की दमक, पर्वतों का स्थायित्व तथा पृथ्वी की सुगंध एवं धारणशक्ति—ये सब वास्तव में आप ही हैं।(१०.८५.७)

तर्पणं प्राणनमपां देव त्वं ताश्च तद्रसः
ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर

हे प्रभु, आप जल हैं और इसका आस्वाद तथा प्यास बुझाने एवं जीवन धारण करने की क्षमता भी हैं। आप अपनी शक्तियों का प्रदर्शन वायु के द्वारा शरीर की उष्णता, जीवन-शक्ति, मानसिक शक्ति, शारीरिक शक्ति, प्रयास तथा गति के रूप में करते हैं।(१०.८५.८)

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः
नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः

आप ही दिशाएँ एवं उनकी अनुकूलन-क्षमता, सर्वव्यापक आकाश तथा इसके भीतर वास करने वाली ध्वनि (स्फोट) हैं। आप आदि अप्रकट ध्वनि रूप हैं, आप ही प्रथम अक्षर ॐ हैं और आप ही श्रव्य वाणी हैं, जिसके द्वारा शब्दों के रूप में ध्वनि विशिष्ट प्रसंग बन जाती है।(१०.८५.९)

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः
अवबोधो भवान् बुद्धेर् जीवस्यानुस्मृतिः सती

आप वस्तुओं को प्रकट करने की इन्द्रिय-शक्ति, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता तथा ऐन्द्रिय कार्यों को करने के इन देवताओं द्वारा दिये गये अधिकार हैं। आप निर्णय लेने की बुद्धि-क्षमता तथा जीव द्वारा वस्तुओं को सही सही स्मरण रखने की क्षमता हैं।(१०.८५.१०)

भूतानामसि भूतादिर् इन्द्रियाणां च तैजसः
वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनम्

आप ही तमोगुणी मिथ्या अहंकार हैं, जो भौतिक तत्त्वों का स्रोत है; आप रजोगुणी मिथ्या अहंकार हैं, जो शारीरिक इन्द्रियों का स्रोत है; सतोगुणी मिथ्या अहंकार हैं, जो देवताओं का स्रोत है तथा आप ही अप्रकट सम्पूर्ण भौतिक शक्ति हैं, जो हर वस्तु की मूलाधार है।(१०.८५.११)

नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम्
यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम्

आप इस जगत की समस्त नश्वर वस्तुओं में से एकमात्र अनश्वर जीव हैं, जिस तरह कोई मूलभूत वस्तु अपरिवर्तित रहती दिखती है, जबकि उससे बनी वस्तुओं में रूपान्तर आ जाता है।(१०.८५.१२)

सत्त्वम्रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः
त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया

प्रकृति के गुण—यथा सतो, रजो तथा तमो गुण—अपने सारे कार्यों समेत आप अर्थात् परम सत्य के भीतर आपकी योगमाया की व्यवस्था के द्वारा सीधे प्रकट होते हैं।(१०.८५.१३)

तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः
त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाव्यावहारिकः

इस तरह प्रकृति के विकार स्वरूप ये सृजित जीव तभी विद्यमान रहते हैं, जब भौतिक प्रकृति उन्हें आपके भीतर प्रकट करती है। उस समय आप भी उनके भीतर प्रकट होते हैं। किन्तु सृजन के ऐसे अवसरों के अतिरिक्त आप दिव्य सत्य की भाँति अकेले रहते हैं।(१०.८५.१४)

गुणप्रवाह एतस्मिन्न् अबुधास्त्वखिलात्मनः
गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः

वे सचमुच अज्ञानी हैं, जो इस जगत में भौतिक गुणों के निरन्तर प्रवाह के भीतर बन्दी रहते हुए आपको अपने चरम सूक्ष्म गन्तव्य परमात्मा स्वरूप जान नहीं पाते। अपने अज्ञान के कारण भौतिक कर्म का बन्धन ऐसे जीवों को जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमने के लिए बाध्य कर देता है।(१०.८५.१५)

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम्
स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर
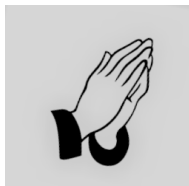
सौभाग्य से जीव स्वस्थ मनुष्य-जीवन प्राप्त कर सकता है, जो कि विरले ही प्राप्त होने वाला सुअवसर होता है। किन्तु हे प्रभु, यदि इतने पर भी वह अपने लिए, जो सर्वोत्तम है, उसके विषय में मोहग्रस्त रहता है, तो आपकी माया उसको अपना सारा जीवन नष्ट करने के लिए बाध्य कर सकती है।(१०.८५.१६)

असावहम्ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु
स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान् सर्वमिदं जगत्

आप स्नेह की रस्सियों से इस सारे संसार को बाँधे रहते हैं, अतः जब लोग अपने भौतिक शरीरों पर विचार करते हैं, तो वे सोचते हैं, ''यह मेरा है'' और जब वे अपनी सन्तान तथा अन्य सम्बंधियों पर विचार करते हैं, तो वे सोचते हैं, ''ये मेरे हैं।''(१०.८५.१७)

युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ
भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह

आप दोनों हमारे पुत्र नहीं हैं, अपितु प्रकृति तथा उसके स्रष्टा (महाविष्णु) दोनों ही के स्वामी हैं। जैसा कि आपने स्वयं हमसे कहा है, आप पृथ्वी को उन शासकों से मुक्त करने के लिए अवतरित हुए हैं, जो उस पर अत्यधिक भार बने हुए हैं।(१०.८५.१८)

तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्दम् आपन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो
एतावतालमलमिन्द्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक्त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः

इसलिए, हे दुखियों के मित्र, अब मैं शरण के लिए आपके चरणकमलों के पास आया हूँ—ये वही चरणकमल हैं, जो शरणागतों के सारे संसारिक भय को दूर करने वाले हैं। बस, इन्द्रिय-भोग की लालसा बहुत हो चुकी, जिसके कारण मैं अपनी पहचान इस मर्त्य शरीर से करता हूँ और आपको अर्थात् परम पुरुष को अपना पुत्र समझता हूँ।(१०.८५.१९)

सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ सञ्जज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै
नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम्

निस्सन्देह आपने हमें प्रसूति-गृह में ही बतला दिया था कि आप अजन्मा हैं और इसके पूर्व के युगों में कई बार हमारे पुत्र के रूप में जन्म ले चुके हैं। आपने अपने धर्म की रक्षा करने के लिए इन दिव्य शरीरों को प्रकट करने के बाद उन्हें छिपा लिया, जिस तरह बादल प्रकट होते हैं और लुप्त हो जाते हैं। हे परम महिमामय सर्वव्यापक भगवान्, आपके विभूति अंशों की भ्रान्तिपूर्ण माया को कौन समझ सकता है ? (१०.८५.२०)

79.श्री देवकी प्रार्थनाम

श्रीदेवक्युवाच

राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर
वेदाहं वां विश्वसृजाम् ईश्वरावादिपूरुषौ

श्री देवकी ने कहा : हे राम, हे राम, हे अप्रमेय परमात्मा, हे कृष्ण, हे सभी योगेश्वरों के स्वामी, मैं जानती हूँ कि तुम दोनों समस्त ब्रह्माण्ड सृष्टिकार्ताओं के परम शासक आदि भगवान् हो।(१०.८५.२९)
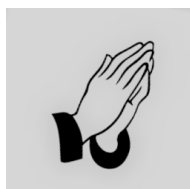
कलविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम्
भूमेर्भारायमाणानाम् अवतीर्णो किलाद्य मे

मुझसे जन्म लेकर तुम इस जगत में उन राजाओं का वध करने के लिए अवतरित हुए हो, जिनके उत्तम गुण वर्तमान युग के द्वारा विनष्ट हो चुके हैं और जो इस प्रकार से शास्त्रों की सत्ता का उल्लंघन करते हैं और पृथ्वी का भार बनते हैं।(१०.८५.३०)

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदया:
भवन्ति किल विश्वात्मंस् तं त्वाद्याहं गतिं गता

हे विश्वात्मा, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पालन तथा संहार—ये सभी आपके अंश के अंश के अंश के भी एक अंश द्वारा संपन्न किये जाते हैं। हे भगवान्, मैं आज आपकी शरण में आई हूँ।(१०.८५.३१)

चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ
आनिन्यथु: पितृस्थानाद् गुरवे गुरुदक्षिणाम्
तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ
भोजराजहतान् पुत्रान् कामये द्रष्टुमाहृतान्

ऐसा कहा जाता है कि जब आपके गुरु ने अपने बहुत पहले मर चुके पुत्र को वापस लाने के लिए आपको आदेश दिया, तो आप गुरु-दक्षिणा के प्रतीकस्वरूप उसे पूर्वजों के धाम से वापस ले आये। हे योगेश्वरों के भी ईश्वर, मेरी इच्छा को भी उसी तरह पूरी कीजिये। कृपया भोजराज द्वारा मारे गये मेरे पुत्रों को वापस ला दीजिये, जिससे मैं उन्हें फिर से देख सकूँ।(१०.८५.३२-३३)

४०.श्री बलिकृत स्तव:

बलिरुवाच
नमोऽनन्ताय बृहते नम: कृष्णाय वेधसे
साङ्ख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने

राजा बलि ने कहा : समस्त जीवों में महानतम अनन्त देव को नमस्कार है। ब्रह्माण्ड के स्रष्टा भगवान् कृष्ण को नमस्कार है, जो सांख्य तथा योग के सिद्धान्तों का प्रसार करने के लिए निर्विशेष ब्रह्म तथा परमात्मा के रूप में प्रकट होते हैं।(१०.८५.३९)

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम्
रजस्तम:स्वभावानां यन्न: प्राप्तौ यदृच्छया

अनेक जीवों के लिए आप दोनों विभुओं के दर्शन दुर्लभ हैं, किन्तु तमोगुण तथा रजोगुण में स्थित हमारे जैसे व्यक्ति भी सुगमता से आपके दर्शन पा सकते हैं, जब आप स्वेच्छा से प्रकट होते हैं।(१०.८५.४०)

दैत्यदानवगन्धर्वा: सिद्धविद्याध्रचारणा:
यक्षरक्ष:पिशाचाश्च भूतप्रमथनायका:
विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि
नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशा:

केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः
न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः

ऐसे अनेक लोग जो आपके प्रति शत्रुता में निरन्तर लीन रहते थे, अंत में आपके प्रति आकृष्ट हो गये, क्योंकि आप शुद्ध सत्त्वगुण के साकार रूप हैं और आपका दिव्य स्वरूप शास्त्रों से युक्त है। इन सुधरे हुए शत्रुओं में दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथ तथा नायक एवं हम तथा हमारे जैसे अनेक लोग सम्मिलित हैं। हममें से कुछ तो विशेष घृणा के कारण और कुछ काम-वासना पर आधारित भक्तिभाव से आपके प्रति आकृष्ट हुए हैं। किन्तु देवता तथा भौतिक सतोगुण से मुग्ध अन्य लोग आपके प्रति वैसे आकर्षण का अनुभव नहीं कर पाते।(१०.८५.४१-४३)

इदमित्थमिति प्रायस् तव योगेश्वरेश्वर
न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम्

हे पूर्णयोगियों के स्वामी, हम अपने बारे में क्या कहें, बड़े से बड़े योगी भी यह नहीं जानते कि आपकी योगमाया क्या है, अथवा वह कैसे कार्य करती है? (१०.८५.४४)

तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत् पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात्
निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्र्युपलब्धवृत्तिः शान्तो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि

कृपया मुझ पर दया करें, जिससे मैं गृहस्थ जीवन के अंध कूप से—अपने मिथ्या घर से—बाहर निकल सकूँ और आपके चरणकमलों की सच्ची शरण ग्रहण कर सकूँ, जिसकी खोज निष्काम सदैव साधु करते रहते हैं। तब मैं या तो अकेले या सबों के मित्र स्वरूप महान् सन्तों के साथ मुक्तरूप से विचरण कर सकूँ और विश्व-भर को दान देने वाले वृक्षों के नीचे जीवन की आवश्यकताएँ पूरी कर सकूँ।(१०.८५.४५)

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान् कुरु नः प्रभो
पुमान् यच्छ्रद्धयातिष्ठंश् चोदनाया विमुच्यते

हे समस्त अधीन प्राणियों के स्वामी, कृपा करके हमें बतायें कि हम क्या करें और इस तरह हमें सारे पापों से मुक्त कर दें। हे प्रभु, जो व्यक्ति आपके आदेश का श्रद्धापूर्वक पालन करता है, उसे सामान्य वैदिक अनुष्ठानों का पालन करना अनिवार्य नहीं है।(१०.८५.४६)

81.श्री बहुलाश्व स्तवः

श्रीबहुलाश्व उवाच
भवान् हि सर्वभूतानाम् आत्मा साक्षी स्वदृग्विभो
अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः

श्री बहुलाश्व ने कहा : हे सर्वशक्तिमान प्रभु, आप समस्त जीवों के आत्मा एवं उनके स्वप्रकाशित साक्षी हैं और अब आप हम सबों को, जो निरन्तर आपके चरणकमलों का ध्यान करते हैं, अपना दर्शन दे रहे हैं।(१०.८६.३१)

स्ववचस्तदृतं कर्तुम् अस्मदृग्गोचरो भवान्
यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः
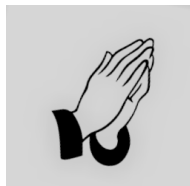
आपने कहा है, ''मुझे अपने अनन्य भक्त की तुलना में न तो अनन्त, देवी श्री या न ही अजन्मा ब्रह्मा अधिक प्रिय हैं।'' अपने ही शब्दों को सत्य सिद्ध करने के लिए, अब आपने हमारे नेत्रों के समक्ष अपने को प्रकट किया है।(१०.८६.३२)

को नु त्वच्चरणाम्भोजम् एवंविद्विसृजेत्पुमान्
निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः

ऐसा कौन पुरुष है, जो इस सत्य को जानते हुए कभी आपके चरणकमलों का परित्याग करेगा, जब आप उन शान्त मुनियों को अपने आप तक को दे डालने के लिए उद्यत रहते हैं, जो किसी भी वस्तु को अपनी नहीं कहते? (१०.८६.३३)

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह
यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम्

आपने यदुवंश में प्रकट होकर तीनों लोकों के समस्त पापों को दूर कर सकने में समर्थ अपने यश का विस्तार, जन्म-मृत्यु के चक्कर में फँसे हुओं का उद्धार करने के लिए ही किया है।(१०.८६.३४)

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे
नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे

हे पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् कृष्ण, आपको नमस्कार है, जिनकी बुद्धि सदैव ही असीम है। ऋषि नर-नारायण को नमस्कार है, जो पूर्ण शान्ति में रह कर सदैव तपस्या करते रहते हैं।(१०.८६.३५)

दिनानि कतिचिद्भूमन् गृहान्नो निवस द्विजैः
समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम्

हे सर्वव्यापी, कृपया इन ब्राह्मणों समेत मेरे घर में कुछ दिन ठहरें और अपने चरणों की धूलि से इस निमिवंश को पवित्र बनायें।(१०.८६.३६)

82.श्री श्रुतदेव स्तुति

श्रुतदेव उवाच
नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः
यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया

श्रुतदेव ने कहा : ऐसा नहीं है कि हमने केवल आज ही परम पुरुष का दर्शन किया है, क्योंकि जब से उन्होंने अपनी शक्तियों से इस ब्रह्माण्ड की रचना की है और अपने दिव्य रूप से उसमें प्रविष्ट हुए हैं, तब से हम उनका सान्निध्य प्राप्त करते रहे हैं।(१०.८६.४४)

यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया
सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नम् अनुविश्यावभासते

भगवान् उस सोये हुए व्यक्ति की तरह हैं, जो अपनी कल्पना में पृथक् जगत का निर्माण करता है और तब अपने ही स्वप्न में प्रवेश करता है तथा उसके भीतर अपने को देखता है।(१०.८६.४५)

शृण्वतां गदतां शश्वद् अर्चतां त्वाभिवन्दताम्
णृणां संवदतामन्तर् हृदि भास्यमलात्मनाम्

आप उन शुद्ध चेतना वाले मनुष्यों के हृदयों के भीतर अपने को प्रकट करते हैं, जो निरन्तर आपके विषय में सुनते हैं, आपका कीर्तन करते हैं, आपकी पूजा करते हैं, आपका गुणगान करते हैं और आपके ही विषय में एक-दूसरे से चर्चायें करते हैं।(१०.८६.४६)

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम्
आत्मशक्तिभिरग्राह्यो ऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम्

किन्तु हृदय के भीतर वास करते हुए भी आप उनसे बहुत दूर रहते हैं, जिनके मन भौतिक कार्यों में उलझने से विचलित रहते हैं। दरअसल कोई भी आपको भौतिक शक्तियों द्वारा पकड़ नहीं सकता, क्योंकि आप केवल उन लोगों के हृदयों में प्रकट होते हैं, जिन्होंने आपके दिव्य गुणों की प्रशंसा करनी सीख ली है।(१०.८६.४७)

नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे
सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे स्वमाययासंवृतरुद्धदृष्टये

मैं आपको नमस्कार करता हूँ। परम सत्य को जानने वालों द्वारा आप परमात्मा के रूप में अनुभव किये जाते हैं, जबकि काल रूप में आप विस्मरणशील जीवों के लिए मृत्यु स्वरूप हैं। आप अपने अहैतुक आध्यात्मिक रूप में तथा इस ब्रह्माण्ड के सृजित रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह आप एक ही समय अपने भक्तों की आँखें खोलते हैं और अभक्तों की दृष्टि को बाधित करते हैं।(१०.८६.४८)

स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवाम हे
एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः

हे प्रभु, आप ही वह परमात्मा हैं और हम आपके दास हैं। हम आपकी किस तरह सेवा करें? हे प्रभु, आपके दर्शन मात्र से मनुष्य-जीवन के सारे क्लशों का अन्त हो जाता है।(१०.८६.४९)

83.श्रुति स्तवः

श्रीश्रुतय ऊचुः
जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः

श्रुतियों ने कहा : हे अजित, आपकी जय हो, जय हो, अपने स्वभाव से आप समस्त ऐश्वर्य से परिपूर्ण हैं, अतएव आप माया की शाश्वत शक्ति को परास्त करें, जो बद्धजीवों के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न करने के लिए तीनों गुणों को अपने वश में कर लेती है। चर तथा अचर देहधारियों की समस्त शक्ति को जागृत करने वाले, कभी कभी जब आप अपनी भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के साथ क्रीड़ा करते हैं, तो वेद आपको पहचान लेते हैं।(१०.८७.१४)
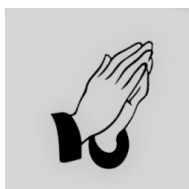
बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया
यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाविकृतात्
अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं
कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम्

इस दृश्य जगत की पहचान ब्रह्म से की जाती है, क्योंकि परब्रह्म समस्त जगत की अनन्तिम नींव है। यद्यपि समस्त उत्पन्न वस्तुएँ उनसे उद्भूत होती हैं और अन्त में उसी में लीन होती हैं, तो भी ब्रह्म अपरिवर्तित रहता है, जिस तरह कि मिट्टी जिससे अनेक वस्तुएँ बनाई जाती हैं और वे वस्तुएँ फिर उसी में लीन हो जाती हैं, वह अपरिवर्तित रहती है। इसीलिए सारे वैदिक ऋषि अपने विचारों, अपने शब्दों तथा अपने कर्मों को आपको ही अर्पित करते हैं। भला ऐसा कैसे हो सकता है कि जिस पृथ्वी पर मनुष्य रहते हैं, उसे उनके पैर स्पर्श न कर सकें ?(१०.८७.१५)

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमल-
क्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः
किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः
परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम्

अतएव हे त्रिलोकपति, बुद्धिमान लोग आपकी कथाओं के अमृतमय सागर में गहरी डुबकी लगाकर समस्त क्लेशों से छुटकारा पा लेते हैं, क्योंकि आपकी कथाएँ ब्रह्माण्ड के सारे दूषण को धो डालती हैं। तो फिर उन लोगों के बारे में क्या कहा जाय, जिन्होंने आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा अपने मनों को बुरी आदतों से और स्वयं को काल से मुक्त कर लिया है और, हे परम पुरुष, आपके असली स्वभाव की, जिसके भीतर निर्बाध आनन्द भरा है, पूजा करने में समर्थ हैं ? (१०.८७.१६)

दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा
महदहमादयोऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः
पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः
सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम्

यदि वे आपके श्रद्धालु अनुयायी बन जाते हैं, तभी वे साँस लेते हुए वास्तव में जीवित हैं, अन्यथा उनका साँस लेना धौंकनी जैसा है। यह तो आपकी एकमात्र कृपा ही है कि महत् तत्त्व तथा मिथ्या अहंकार से प्रारम्भ होने वाले तत्त्वों ने इस ब्रह्माण्ड रूपी अंडे को जन्म दिया। अन्नमय इत्यादि स्वरूपों में आप ही चरम हैं, जो जीव के साथ भौतिक आवरणों में प्रवेश करके उसके ही जैसे स्वरूप ग्रहण करते हैं। स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक स्वरूपों से भिन्न, आप उन सबों में निहित वास्तविकता हैं।(१०.८७.१७)

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे

बड़े बड़े ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट विधियों के अनुयायियों में से, जिनकी दृष्टि कुछ कम परिष्कृत होती है, वे ब्रह्म को उदर क्षेत्र में उपस्थित मानकर पूजा करते हैं, किन्तु आरुणिगण उसे हृदय में उपस्थित मानकर पूजा करते हैं, जो सूक्ष्म केन्द्र है जहाँ से सारी प्राणिक शाखाएँ (नाड़ियाँ) निकलती हैं। हे अनन्त, ये पूजक अपनी चेतना को वहाँ से ऊपर उठाकर सिर की चोटी तक ले
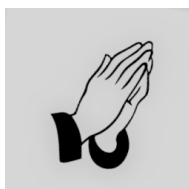
जाते हैं, जहाँ वे आपको प्रत्यक्ष देख सकते हैं। तत्पश्चात् सिर की चोटी से चरम गन्तव्य की ओर बढ़ते हुए वे उस स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ से वे पुनः इस जगत में, जो मृत्यु के मुख स्वरूप हैं, नहीं गिरेंगे।(१०.८७.१८)

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया
तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः
अथ वितथास्वमूष्ववितथां तव धाम समं
विरजधियोऽनुयन्त्यभिविपण्यव एकरसम्

आपने जीवों की जो विविध योनियाँ उत्पन्न की हैं, उनमें प्रवेश करके, उनकी उच्च तथा निम्न अवस्थाओं के अनुसार आप अपने को प्रकट करते हैं और उन्हें कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं, जिस प्रकार अग्नि अपने द्वारा जलाई जाने वाली वस्तु के अनुसार अपने को विविध रूपों में प्रकट करती है। अतएव जो लोग भौतिक आसक्तियों से सर्वथा मुक्त हैं, ऐसे निर्मल बुद्धि वाले लोग आपके अभिन्न तथा अपरिवर्तनशील आत्मा को इन तमाम अस्थायी योनियों में स्थायी सत्य के रूप में साक्षात्कार करते हैं।(१०.८७.१९)

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं
तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम्
इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं
भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवम्भुवि विश्वसिताः

प्रत्येक जीव अपने कर्म द्वारा सृजित भौतिक शरीरों में निवास करते हुए, वास्तव में, स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ से आच्छादित हुए बिना रहता है। जैसा कि वेदों में वर्णन हुआ है, ऐसा इसलिए है, क्योंकि वह समस्त शक्तियों के स्वामी, आपका ही भिन्नांश है। जीव की ऐसी स्थिति को निश्चित करके ही, विद्वान मुनिजन श्रद्धा से पूरित होकर, आपके उन चरणकमलों की पूजा करते हैं, जो मुक्ति के स्रोत हैं और जिन पर इस संसार की सारी वैदिक भेंटें अर्पित की जाती हैं।(१०.८७.२०)

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनो श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः

हे प्रभु, कुछ भाग्यशाली आत्माओं ने आपकी उन लीलाओं के विस्तृत अमृत सागर में गोता लगाकर भौतिक जीवन की थकान से मुक्ति पा ली है, जिन लीलाओं को आप अगाध आत्मतत्त्व का प्रचार करने के लिए साकार रूप धारण करके संपन्न करते हैं। ये विरली आत्माएँ, मुक्ति की भी परवाह न करके घर-बार के सुख का परित्याग कर देती हैं, क्योंकि उन्हें आपके चरणकमलों का आनन्द लूटने वाले हंसों के समूह सदृश भक्तों की संगति प्राप्त हो जाती है।(१०.८७.२१)

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्
चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च
न बत रमन्त्यहो असदुपासनयात्महनो
यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः

जब यह मानवीय शरीर आपकी पूजा के निमित्त काम में लाया जाता है, तो यह आत्मा, मित्र तथा प्रेमी की तरह कार्य करता है। किन्तु दुर्भाग्यवश, यद्यपि आप बद्धजीवों के प्रति सदैव कृपा प्रदर्शित करते हैं और हर तरह से स्नेहपूर्वक सहायता करते हैं और यद्यपि आप उनके असली आत्मा हैं, किन्तु सामान्य लोग आप में आनन्द नहीं लेते। उल्टे वे माया की पूजा करके
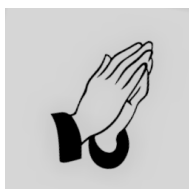
आध्यात्मिक आत्महत्या करते हैं। हाय! असत्य के प्रति भक्ति करके, वे निरन्तर सफलता की आशा करते हैं, किन्तु वे विविध निम्न शरीर धारण करके इस अत्यन्त भयावह जगत में निरन्तर इधर-उधर भटकते रहते हैं।(१०.८७.२२)

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्
मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः

भगवान् के शत्रुओं ने भी, निरन्तर मात्र उनका चिन्तन करते रहने से, उसी परम सत्य को प्राप्त किया, जिसे योगीजन अपने श्वास, अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में करके योग-पूजा में स्थिर कर लेते हैं। इसी तरह हम श्रुतियाँ, जो सामान्यतः आपको सर्वव्यापी देखती हैं, आपके चरणकमलों से वही अमृत प्राप्त कर सकेंगी, जिसका आनन्द आपकी प्रियतमाएँ, आपकी विशाल सर्प सदृश बाहुओं के प्रति अपने प्रेमाकर्षण के कारण लूटती हैं, क्योंकि आप हमें तथा अपनी प्रियतमाओं को एक ही तरह से देखते हैं।(१०.८७.२३)

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं
यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये
तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः
किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा

इस जगत का हर व्यक्ति हाल ही में उत्पन्न हुआ है और शीघ्र ही मर जायेगा। अतएव यहाँ का कोई भी व्यक्ति, उसे कैसे जान सकता है, जो हर वस्तु के पूर्व से विद्यमान है और जिसने प्रथम विद्वान ऋषि ब्रह्मा को और उसके बाद के छोटे तथा बड़े देवताओं को जन्म दिया है? जब वह लेट जाता है और हर वस्तु को अपने भीतर समेट लेता है, तो कुछ भी नहीं बचता—न तो स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ, न ही इनसे बने शरीर, न ही काल की शक्ति और न शास्त्र।(१०.८७.२४)

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां
विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता
त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे

माने हुए विद्वान जो यह घोषित करते हैं कि पदार्थ ही जगत का उद्गम है, कि आत्मा के स्थायी गुणों को नष्ट किया जा सकता है, कि आत्मा तथा पदार्थ के पृथक् पक्षों से मिलकर आत्मा बना है या कि भौतिक व्यापारों से सच्चाई बनी हुई है—ऐसे विद्वान उन भ्रान्त विचारों पर अपनी शिक्षाओं को आधारित करते हैं, जो सत्य को छिपाते हैं। यह द्वैत धारणा कि जीव प्रकृति के तीन गुणों से उत्पन्न है, अज्ञानजन्य मात्र है। ऐसी धारणा का आपमें कोई आधार नहीं है, क्योंकि आप समस्त भ्रम (मोह) से परे हैं और पूर्ण चेतना का भोग करने वाले हैं।(१०.८७.२५)

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्
सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः
न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया
स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम्
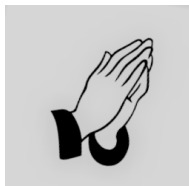
इस जगत में सारी वस्तुएँ—सरलतम घटना से लेकर जटिल मानव-शरीर तक—प्रकृति के तीन गुणों से बनी हैं। यद्यपि ये घटनाएँ सत्य प्रतीत होती हैं, किन्तु वे आध्यात्मिक सत्य की मिथ्या प्रतिबिम्ब होती हैं, वे आप पर मन के अध्यारोपण हैं। फिर भी जो लोग परमात्मा को जानते हैं, वे सम्पूर्ण भौतिक सृष्टि को सत्य तथा साथ ही साथ आपसे अभिन्न मानते हैं। जिस तरह स्वर्ण की बनी वस्तुओं को, इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे असली सोने की बनी हैं, उसी तरह यह जगत उन भगवान् से अभिन्न है, जिसने इसे बनाया और फिर वे उसमें प्रविष्ट हो गये।(१०.८७.२६)

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया
त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः
परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्
त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः

जो भक्त आपको समस्त जीवों के आश्रय रूप में पूजते हैं, वे मृत्यु की परवाह नहीं करते और उनके सिर पर आप अपना चरण रखते हैं, लेकिन आप वेदों के शब्दों से अभक्तों को पशुओं की तरह बाँध लेते हैं, भले ही वे प्रकाण्ड विद्वान क्यों न हों। आपके स्नेहिल भक्तगण ही अपने को तथा अन्यों को शुद्ध कर सकते हैं, आपके प्रति शत्रु-भाव रखने वाले नहीं।(१०.८७.२७)

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्
तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयानिमिषाः
वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो
विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः

यद्यपि आपकी भौतिक इन्द्रियाँ नहीं हैं, किन्तु आप हर एक की इन्द्रिय-शक्ति के आत्मतेजवान धारणकर्ता हैं। देवता तथा प्रकृति स्वयं आपकी पूजा करते हैं, जबकि अपने पूजा करने वालों द्वारा अर्पित भेंट का भोग भी करते हैं, जिस तरह किसी राज्य के विविध जनपदों के अधीन शासक अपने स्वामी को, जो कि पृथ्वी का चरम स्वामी होता है, भेंटें प्रदान करते हैं और साथ ही स्वयं अपनी प्रजा द्वारा प्रदत्त भेंट का भोग भी करते हैं। इस तरह आपके भय से ब्रह्माण्ड के स्रष्टा अपने अपने नियत कार्यों को श्रद्धापूर्वक संपन्न करते हैं।(१०.८७.२८)

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो
विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः
न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्
वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः

हे नित्यमुक्त दिव्य भगवान्, आपकी भौतिक शक्ति विविध जड़ तथा चेतन जीव योनियों को उनकी भौतिक इच्छाएँ जगाकर प्रकट कराती है, लेकिन ऐसा तभी होता है, जब आप उस पर अल्प दृष्टि डालकर उसके साथ क्रीड़ा करते हैं। हे भगवान्, आप किसी को न तो अपना घनिष्ठ मित्र मानते हैं, न ही पराया, ठीक उसी तरह जिस तरह आकाश का अनुभवगम्य गुणों से कोई संबंध नहीं होता। इस मामले में आप शून्य के समान हैं।(१०.८७.२९)

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्
तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा
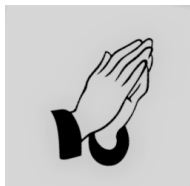
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया

यदि ये असंख्य जीव सर्वव्यापी होते और अपरिवर्तनशील शरीरों से युक्त होते, तो हे निर्विकल्प, आप संभवतः उनके परम शासक न हुए होते। लेकिन चूँकि वे आपके स्थानिक अंश हैं और उनके स्वरूप परिवर्तनशील हैं, अतएव आप उनका नियंत्रण करते हैं। निस्सन्देह, जो किसी वस्तु की उत्पत्ति के लिए अवयव की आपूर्ति करता है, वह अवश्यमेव उसका नियन्ता है, क्योंकि कोई भी उत्पाद अपने अवयव कारण से पृथक् विद्यमान नहीं रहता। यदि कोई यह सोचे कि उसने भगवान् को, जो अपने प्रत्येक अंश में समरूप से रहते हैं जान लिया है, तो यह मात्र उसका भ्रम है, क्योंकि मनुष्य जो भी ज्ञान भौतिक साधनों से अर्जित करता है, वह अपूर्ण होगा।(१०.८७.३०)

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोर्
उभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत्
त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे
सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः

न तो प्रकृति, न ही उसका भोग करने के लिए प्रयत्नशील आत्मा कभी जन्म लेते हैं, फिर भी जब ये दोनों संयोग करते हैं, तो जीवों का जन्म होता है, जिस तरह जहाँ जहाँ जल से वायु मिलती है, वहाँ वहाँ बुलबुले बनते हैं। जिस तरह नदियाँ समुद्र में मिलती हैं या विभिन्न फूलों का रस शहद में मिल जाता है, उसी तरह ये सारे बद्धजीव अन्ततोगत्वा अपने विविध नामों तथा गुणों समेत आप ब्रह्म में पुनः लीन हो जाते हैं।(१०.८७.३१)

नृषु तव मयया भ्रमममीष्ववगत्य भृशं
त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्
कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद् भ्रुकुटिः
सृजति मुहुस्त्रिनेमिरभवच्छरणेषु भयम्

विद्वान आत्माएँ, जो यह समझते हैं कि आपकी माया, किस तरह सारे मनुष्यों को मोहती है, वे आपकी उत्कट प्रेमाभक्ति करते हैं, क्योंकि आप जन्म तथा मृत्यु से मुक्ति के स्रोत हैं। भला आपके श्रद्धावान सेवकों को भौतिक जीवन का भय कैसे सता सकता है ? दूसरी ओर, आपकी कुटिल भौंहें, जो कालचक्र की तिहरी–नेमि हैं बारम्बार उन्हें भयभीत बनाती हैं, जो आपकी शरण ग्रहण करने से इनकार करते हैं।(१०.८७.३२)

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं
वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ

मन ऐसे उच्छृंखल घोड़े की तरह है, जिसको अपनी इन्द्रियों एवं श्वास को संयमित कर चुके व्यक्ति भी वश में नहीं कर सकते। इस संसार में वे लोग, जो अवश मन को वश में करना चाहते हैं, किन्तु अपने गुरु के चरणों का परित्याग कर देते हैं, उन्हें विविध दुखदायी विधियों के अनुशीलन में सैकड़ों बाधाओं का सामना करना पड़ता है। हे अजन्मा भगवान्, वे समुद्र में नाव पर बैठे उन व्यापारियों के समान हैं, जो किसी नाविक को भाड़े पर नहीं लेते।(१०.८७.३३)
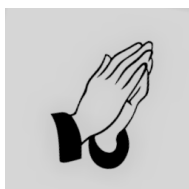
स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैस्
त्वयि सति किं नृणाम्श्रयत आत्मनि सर्वरसे
इति सद्जानतां मिथुनतो रतये चरतां
सुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे

जो व्यक्ति आपकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें आप परमात्मा स्वरूप दिखते हैं, जो समस्त दिव्य-आनन्द स्वरूप है। ऐसे भक्तों के लिए अपने सेवकों, बच्चों या शरीरों, अपनी पत्नियों, धन या घरों, अपनी भूमि, स्वास्थ्य या वाहनों का क्या उपयोग रह जाता है? और जो आपके विषय में सच्चाई को समझने में असफल होते हैं तथा यौन-आनन्द के पीछे भागते रहते हैं, उनके लिए इस सम्पूर्ण जगत में, जो सदैव विनाशशील है और महत्त्व से विहीन है, ऐसा क्या है, जो उन्हें असली सुख प्रदान कर सके?।(१०.८७.३४)

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्
त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः
दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे
न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान्

ऋषिगण मिथ्या गर्व से रहित होकर पवित्र तीर्थस्थानों तथा जहाँ जहाँ भगवान् ने अपनी लीलाएँ प्रदर्शित की हैं, उनका भ्रमण करते हुए इस पृथ्वी पर निवास करते हैं। चूँकि ऐसे भक्त आपके चरणकमलों को अपने हृदयों में रखते हैं, अत: उनके पाँवों को धोने वाला जल सारे पापों को नष्ट कर देता है। जो कोई अपने मन को एक बार भी समस्त जगत के नित्य आनन्दमय आत्मा आपकी ओर मोड़ता है, वह घर पर ऐसे पारिवारिक जीवन के अधीन नहीं रहता, जिससे मनुष्य के अच्छे गुण छीन लिये जाते हैं।(१०.८७.३५)

सत इदं उत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं
व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक्
व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया
भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान्

यह प्रतिपादित किया जा सकता है कि यह जगत स्थायी रूप से सत्य है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति स्थायी सत्य से हुई है, किन्तु इसका तार्किक खण्डन हो सकता है। निस्सन्देह, कभी कभी कार्य-कारण का ऊपरी अभेद सत्य नहीं सिद्ध हो पाता और कभी तो सत्य वस्तु का फल भ्रामक होता है। यही नहीं, यह जगत स्थायी रूप से सत्य नहीं हो सकता, क्योंकि यह केवल परमसत्य के ही स्वभावों में भाग नहीं लेता, अपितु उस सत्य को छिपाने वाले भ्रम में भी लेता है। वस्तुत: इस दृश्य जगत के दृश्य-रूप उन अज्ञानी पुरुषों की परम्परा द्वारा अपनाई गई काल्पनिक व्यवस्था है, जो अपने भौतिक मामलों को सुगम बनाना चाहते थे। आपके वेदों के बुद्धिमत्तापूर्ण शब्द अपने विविध अर्थों तथा अन्तर्निहित व्यवहारों से उन सारे पुरुषों को मोहित कर लेते हैं, जिनके मन यज्ञों के मंत्रोच्चारों को सुनते-सुनते जड़ हो चुके हैं।(१०.८७.३६)

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनाद्
अनु मितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे
अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्
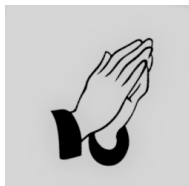
वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः

चूँकि यह ब्रह्माण्ड अपनी सृष्टि के पूर्व विद्यमान नहीं था और अपने संहार के बाद विद्यमान नहीं रहेगा, अतः हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मध्यावधि में यह आपके भीतर दृश्य रूप में कल्पित होता है, जिनका आध्यात्मिक आनन्द कभी नहीं बदलता। हम इस ब्रह्माण्ड की तुलना विविध भौतिक वस्तुओं के विकारों से करते हैं। निश्चय ही, जो यह विश्वास करते हैं कि यह छोटी-सी कल्पना सत्य है, वे अल्पज्ञ हैं।(१०.८७.३७)

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्
भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः
त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो
महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः

मोहिनी प्रकृति सूक्ष्म जीव को, उसका आलिंगन करने के लिए आकृष्ट करती है और फलस्वरूप जीव उसके गुणों से बने रूप धारण करता है। बाद में वह अपने सारे आध्यात्मिक गुण खो देता है और उसे बारम्बार मृत्यु भोगनी पड़ती है। किन्तु आप भौतिक शक्ति से अपने को उसी तरह बचाते रहते हैं, जिस तरह सर्प पुरानी केंचुल त्यागता है। आप आठ योगसिद्धियों से महिमायुक्त स्वामी हैं और असीम ऐश्वर्य का भोग करते हैं।(१०.८७.३८)

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा
दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः
असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्न्
अनपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः

सन्यास-आश्रम के जो सदस्य अपने हृदय से भौतिक इच्छा को समूल उखाड़ कर फेंक नहीं देते, वे अशुद्ध बने रहते हैं और इस तरह आप उन्हें अपने को समझने नहीं देते। यद्यपि आप उनके हृदयों में वर्तमान रहते हैं, किन्तु उनके लिए आप उस मणि की तरह हैं, जिसे मनुष्य गले में पहने हुए भी भूल जाता है कि वह गले में है। हे प्रभु, जो लोग केवल इन्द्रिय-तृप्ति के लिए योगाभ्यास करते हैं, उन्हें इस जीवन में तथा अगले जीवन में भी उस मृत्यु से, जो उन्हें नहीं छोड़ेगी, दण्ड मिलना चाहिए और आपसे भी, जिनके धाम तक, वे नहीं पहुँच सकते।(१०.८७.३९)

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्
गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः
अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरम्परया
श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः

जब मनुष्य आपका साक्षात्कार कर लेता है, तो वह अपने विगत पवित्र तथा पापमय कर्मों से उदित होने वाले अच्छे तथा बुरे भाग्य की परवाह नहीं करता, क्योंकि इस अच्छे तथा बुरे भाग्य को नियंत्रित करने वाले एकमात्र आप हैं। ऐसा स्वरूपसिद्ध भक्त इसकी भी परवाह नहीं करता कि सामान्य जन उसके विषय में क्या कह रहे हैं। वह प्रतिदिन अपने कानों को आपके यशों से भरता रहता है, जो हर युग में मनु के वंशजों की अविच्छिन्न परम्परा से गाये जाते हैं।इस तरह आप उसका चरम मोक्ष बन जाते हैं।(१०.८७.४०)

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
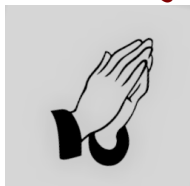
त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्
त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः

चूँकि आप असीम हैं, अतः न तो स्वर्ग के अधिपति, न ही स्वयं आप अपनी महिमा के छोर तक पहुँच सकते हैं। असंख्य ब्रह्माण्ड अपने अपने खोलों में लिपटे हुए कालचक्र के द्वारा आपके भीतर घूमने के लिए उसी तरह बाध्य हैं, जिस तरह कि आकाश में धूल के कण इधर- उधर उड़ते रहते हैं। श्रुतियाँ आपको अपने अन्तिम निष्कर्ष के रूप में प्रकट करके सफल बनती हैं, क्योंकि वे आपसे पृथक् हर वस्तु को अपनी निरसन विधि से विलुप्त कर देती हैं।(१०.८७.४१)

84.श्री कृष्णार्जुना स्तवः

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे

[महाविष्णु ने कहा] : मैं ब्राह्मणों के पुत्रों को यहाँ ले आया था, क्योंकि मैं आप दोनों के दर्शन करना चाह रहा था। आप मेरे अंश हैं, जो धर्म की रक्षा हेतु पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं। ज्योंही आप पृथ्वी के भारस्वरूप असुरों का वध कर चुकें आप तुरन्त ही मेरे पास यहाँ वापस आ जायँ।(१०.८९.५८)

पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी
धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसङ्ग्रहम्

हे महापुरुषों में श्रेष्ठ, यद्यपि आपकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं, किन्तु सामान्य जनों के लाभ हेतु आप नर तथा नारायण मुनियों के रूप में अपने धार्मिक आचरण का आदर्श प्रस्तुत करते रहें।(१०.८९.५९)

85.श्री शुका स्तुति

तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं
विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपर श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः
यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः
कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य

स्वर्ग की गंगा पवित्र तीर्थ है, क्योंकि उसका जल भगवान् के चरणों को पखारता है। किन्तु जब भगवान् ने यदुओं के बीच अवतार लिया, तो उनके यश के कारण पवित्र स्थान के रूप में गंगा नदी का महत्त्व कम हो गया। किन्तु कृष्ण से घृणा करने वालों तथा उनसे प्रेम करने वालों ने आध्यात्मिक लोक में उन्हीं के समान नित्य स्वरूप प्राप्त किया। अप्राप्य तथा परम आत्मतुष्ट लक्ष्मी जिनकी कृपा के लिए हर कोई संघर्ष करता है एकमात्र उन्हीं की हैं। उनके नाम का श्रवण या कीर्तन करने से समस्त अमंगल नष्ट हो जाता है। एकमात्र उन्हीं ने ऋषियों की विविध शिष्य-परम्पराओं के सिद्धान्त निश्चित किये हैं। इसमें कौन-सा आश्चर्य है कि कालचक्र, जिसका हथियार हो, उसने पृथ्वी के भार को उतारा? (१०.९०.४७)

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम्
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम्
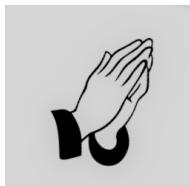
भगवान् श्रीकृष्ण जन-निवास के नाम से विख्यात हैं अर्थात् वे समस्त जीवों के परम आश्रय हैं। वे देवकीनन्दन या यशोदानन्दन भी कहलाते हैं। वे यदुकुल के पथ-प्रदर्शक हैं और वे अपनी बलशाली भुजाओं से समस्त अमंगल को तथा समस्त अपवित्र व्यक्तियों का वध करते हैं। वे अपनी उपस्थिति से समस्त चर तथा अचर प्राणियों के अमंगल को नष्ट करते हैं। उनका आनन्दपूर्ण मन्द हासयुक्त मुख वृन्दावन की गोपियों की कामेच्छाओं को बढ़ाने वाला है। उनकी जय हो और वे प्रसन्न हों।(१०.९०.४८)

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयात्त- लीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन्

अपने प्रति भक्ति के सिद्धान्तों की रक्षा करने के लिए यदुश्रेष्ठ भगवान् कृष्ण उन लीला-रूपों को स्वीकार करते हैं, जिनका यहाँ पर श्रीमद्भागवत में महिमा-गान हुआ है। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक उनके चरणकमलों की सेवा करने का इच्छुक हो, उसे उन कार्यकलापों को सुनना चाहिए, जिन्हें वे प्रत्येक अवतार में संपन्न करते हैं—वे कार्यकलाप, जो उनके द्वारा धारण किए जाने वाले रूपों के अनुरूप हैं। इन लीलाओं के वर्णनों को सुनने से सकाम कर्मों के फल विनष्ट होते हैं।(१०.९०.४९)

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्द श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः

नित्यप्रति अधिकाधिक निष्ठापूर्वक भगवान् मुकुन्द की सुन्दर कथाओं के नियमित श्रवण, कीर्तन तथा ध्यान से मर्त्य प्राणी को भगवान् का दैवीधाम प्राप्त होगा, जहाँ मृत्यु की दुस्तर शक्ति का शासन नहीं है। इसी उद्देश्य से अनेक व्यक्तियों ने, जिनमें बड़े-बड़े राजा सम्मिलित हैं अपने-अपने संसारी घरों को त्याग कर जंगल की राह ली।(१०.९०.५०)
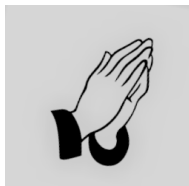
86.श्री नारायण स्तोत्रं

त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते
नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान् धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि

देवतागण उन लोगों के मार्ग में अनेक अवरोध प्रस्तुत करते हैं, जो देवताओं के अस्थायी आवासों को लाँघ कर, आपके परम धाम पहुँचने के लिए आपकी पूजा करते हैं। वे लोग, जो यज्ञों में देवताओं को उनका नियत भाग भेंट में दे देते हैं, ऐसे किसी अवरोध का सामना नहीं करते। किन्तु क्योंकि आप अपने भक्त के प्रत्यक्ष रक्षक हैं, अतएव वह उन सभी अवरोधों को, जो उसके सामने देवताओं द्वारा रखे जाते हैं, लाँघ जाने में समर्थ होता है।(११.४.१०)

क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वशैष्णान् अस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित्
क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर् मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति

कुछ लोग तो ऐसे हैं, जो हमारे प्रभाव को लाँघने के उद्देश्य से कठिन तपस्या करते हैं, जो भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी तथा कालजनित अन्य परिस्थितियों यथा रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के वेगों की अन्तहीन लहरों से युक्त अगाध समुद्र की तरह है। इस तरह कठिन तपस्या के द्वारा इन्द्रिय-तृप्ति के इस समुद्र को पार कर लेने पर भी, ऐसे व्यक्ति व्यर्थ के क्रोध के वशीभूत होने पर मूर्खता से गो-खुर में डूब जाते हैं। इस तरह वे अपनी कठिन तपस्या के लाभ को व्यर्थ गँवा बैठते हैं।(११.४.११)

87.ब्रह्मादिदेवानाम स्तवः

श्रीदेवा ऊचुः
नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः
यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर् मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात्

देवता कहने लगे : हे प्रभु, बड़े बड़े योगी कठिन कर्म-बन्धन से मुक्ति पाने का प्रयास करते हुए अपने हृदयों में आपके चरणकमलों का ध्यान अतीव भक्तिपूर्वक करते हैं। हम देवतागण अपनी बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण, मन तथा वाणी आपको समर्पित करते हुए, आपके चरणकमलों पर नत होते हैं।(११.६.७)

त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः
नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः

हे अजित प्रभुक, आप तीन गुणों से बनी अपनी मायाशक्ति को अपने ही भीतर अचिन्त्य व्यक्त जगत के सृजन, पालन तथा संहार में लगाते हैं। आप माया के परम नियन्ता के रूप में प्रकृति के गुणों की अन्योन्य क्रिया में स्थित जान पड़ते हैं, किन्तु आप भौतिक कार्यों द्वारा कभी प्रभावित नहीं होते। आप अपने नित्य आध्यात्मिक आनन्द में ही लगे रहते हैं, अतएव आप पर किसी भौतिक संदूषण का दोषारोपण नहीं किया जा सकता।(११.६.८)

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्ध-सच्छ्रद्धया श्रवणसम्भृतया यथा स्यात्
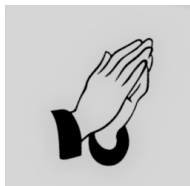
हे सर्वश्रेष्ठ, जिनकी चेतना मोह से कलुषित है, वे केवल सामान्य पूजा, वेदाध्ययन, दान,तप तथा अनुष्ठानों द्वारा अपने को शुद्ध नहीं कर सकते। हमारे स्वामी, जिन शुद्ध आत्माओं ने आपके यश के प्रति दिव्य प्रबल श्रद्धा उत्पन्न कर ली है, उन्हें ऐसा शुद्ध जन्म प्राप्त होता है, जो ऐसी श्रद्धा से रहित लोगों को कभी प्राप्त नहीं हो पाता।(११.६.९)

स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः
यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर् व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय

जीवन में सर्वोच्च लाभ की कामना करने वाले बड़े बड़े मुनि अपने उन हृदयों के भीतर सदैव आपके चरणकमलों का स्मरण करते हैं, जो आपके प्रेम में द्रवित हैं। इसी तरह आपके आत्मसंयमी भक्तगण, आपके ही समान ऐश्वर्य पाने के लिए स्वर्ग से परे जाने की इच्छा से, आपके चरणकमलों की पूजा प्रातः, दोपहर तथा संध्या समय करते हैं। इस तरह वे आपके चतुर्व्यूह रूप का ध्यान करते हैं। आपके चरणकमल उस प्रज्वलित अग्नि के तुल्य है, जो भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति विषयक समस्त अशुभ इच्छाओं को भस्म कर देती है।(११.६.१०)

यस्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा
अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः

जो लोग ऋग्, यजुः तथा सामवेद में दी गई विधि के अनुसार यज्ञ की अग्नि में आहुति देते समय, वे आपके चरणकमलों का ध्यान करते हैं। इसी प्रकार योगीजन आपकी दिव्य योगशक्ति का ज्ञान प्राप्त करने की आशा से आपके चरणकमलों का ध्यान करते हैं और जो पूर्ण महाभागवत हैं, वे आपकी मायाशक्ति को पार करने की इच्छा से, आपके चरणकमलों की अच्छी तरह से पूजा करते हैं।(११.६.११)

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पार्धिनी भगवती प्रतिपत्नीवच्छ्रीः
यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो भूयात्सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः

हे सर्वशक्तिमान, आप अपने सेवकों के प्रति इतने दयालु हैं कि आपने उस मुरझाई हुई (बासी) फूलमाला को स्वीकार कर लिया है, जिसे हमने आपके वक्षस्थल पर चढ़ाया था। चूँकि लक्ष्मी देवी आपके दिव्य वक्षस्थल पर वास करती हैं, इसलिए निस्सन्देह वे हमारी भेंटों को उसी स्थान पर अर्पित करते देखकर उसी तरह ईर्ष्या करेंगी, जिस तरह एक सौत करती है। फिर भी आप इतने दयालु हैं कि आप अपनी नित्य संगिनी लक्ष्मी देवी की परवाह न करते हुए हमारी भेंट को सर्वोत्तम पूजा मान कर ग्रहण करते हैं। हे दयालु प्रभु, आपके चरणकमल हमारे हृदयों की अशुभ कामनाओं को भस्म करने के लिए प्रज्वलित अग्नि का कार्य करें।(११.६.१२)

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः
स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन् पदः पुनातु भगवन् भजतामघं नः

हे सर्वशक्तिमान प्रभु, आपने अपने त्रिविक्रम अवतार में ब्रह्माण्ड के कवच को तोड़ने के लिए अपना पैर ध्वज-दंड की तरह उठाया और पवित्र गंगा को तीन शाखाओं में तीनों लोकों में से होकर विजय-ध्वजा की भाँति बहने दिया। आपने अपने चरणकमलों के तीन बलशाली पगों से बलि महाराज को उनके विश्वव्यापी साम्राज्य सहित वश में कर लिया। आपके चरण असुरों में भय उत्पन्न करते हैं, जिससे वे नरक में भाग जाते हैं और आपके भक्तों में निर्भीकता उत्पन्न करके, उन्हें स्वर्ग-जीवन की सिद्धि प्रदान करते हैं। हे प्रभु, हम आपकी निष्ठापूर्वक पूजा करना चाह रहे हैं, इसलिए आपके चरणकमल कृपा करके हमारे सभी पापकर्मों से हमें मुक्त करें।(११.६.१३)
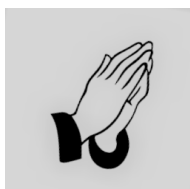
नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः
कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य

आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, दिव्य आत्मा हैं, जो भौतिक प्रकृति तथा इसके भोक्ता दोनों से श्रेष्ठ हैं। आपके चरणकमल हमें दिव्य आनन्द प्रदान करें। ब्रह्मा इत्यादि सारे बड़े बड़े देवता देहधारी जीव हैं। आपके काल के वश में एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते वे सब उन बैलों जैसे हैं, जिन्हें छिदे हुए उनकी नाक में पड़ी रस्सी (नथ) के द्वारा खींचा जाता है।(११.६.१४)

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानाम् अव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः
सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम्

आप इस ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार के कारण हैं। आप प्रकृति की स्थूल तथा सूक्ष्म दशाओं को नियमित करने वाले तथा हर जीव को अपने वश में करने वाले हैं। कालरूपी चक्र की तीन नाभियों के रूप में आप अपने गम्भीर कार्यों द्वारा सारी वस्तुओं का ह्रास करने वाले हैं और इस तरह आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।(११.६.१५)

त्वत्तः पुमान् समधिगम्य ययास्य वीर्यं धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः
सोऽयं तयानुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम्

हे प्रभु, आदि पुरुष-अवतार महाविष्णु अपनी सर्जक शक्ति आपसे ही प्राप्त करते हैं। इस तरह अच्युत शक्ति से युक्त वे प्रकृति में वीर्य स्थापित करके महत् तत्त्व उत्पन्न करते हैं। तब भगवान् की शक्ति से समन्वित यह महत् तत्त्व अपने में से ब्रह्माण्ड का आदि सुनहला अंडा उत्पन्न करता है, जो भौतिक तत्त्वों के कई आवरणों (परतों) से ढका होता है।(११.६.१६)

तत्तस्थूषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रियोपनीतान्
अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म

हे प्रभु, आप इस ब्रह्माण्ड के परम स्रष्टा हैं और समस्त चर तथा अचर जीवों के परम नियन्ता हैं। आप हृषीकेश अर्थात् सभी इन्द्रिय-विषयक कार्यों के परम नियंता हैं और आप कभी भी इस भौतिक सृष्टि के भीतर अनन्त इन्द्रिय-विषय-कार्यों के अधीक्षण के समय संदूषित या लिप्त नहीं होते। दूसरी ओर, अन्य जीव, यहाँ तक कि योगी तथा दार्शनिक भी उन भौतिक वस्तुओं का स्मरण करके विचलित तथा भयभीत रहते हैं केवल उन भौतिक पदार्थों को याद करके जिनका परित्याग प्रकाश की खोज करते समय उन्होंने त्याग दिया था।(११.६.१७)

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि-भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर् यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः

हे प्रभु, आप सोलह हजार अत्यन्त सुन्दर राजसी पत्नियों के साथ रह रहे हैं। अपनी अत्यन्त लजीली तथा मुस्कान-भरी चितवन तथा सुन्दर धनुष-रूपी भौंहों से वे आपको अपने उत्सुक प्रणय का सन्देश भेजती हैं। किन्तु वे आपके मन तथा इन्द्रियों को विचलित करने में पूरी तरह असमर्थ रहती हैं।(११.६.१८)

विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम्
आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसङ्गैस् तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति

आपके विषय में वार्ता रूपी अमृतवाहिनी नदियाँ तथा आपके चरणकमलों के धोने से उत्पन्न पवित्र नदियाँ तीनों लोकों के सारे कल्मष को विनष्ट करने में समर्थ हैं। जो शुद्धि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, वे अपने कानों से सुनी हुई आपकी
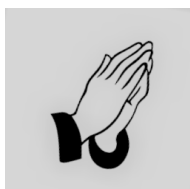
महिमा की पवित्र कथाओं का सान्निध्य पाते हैं और आपके चरणकमलों से निकलने वाली पवित्र नदियों से उनमें स्नान करके, सान्निध्य प्राप्त करते हैं।(११.६.१९)

४४.श्री शुकाकृत श्री कृष्णा स्तुति

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम्
अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान् पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि

मैं उन भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ जो आदि तथा समस्त जीवों में महानतम हैं। वे वेदों के रचयिता हैं और उन्होंने अपने भक्तों के भौतिक जगत के भय को नष्ट करने के लिए, मधुमक्खी की तरह समस्त ज्ञान तथा विज्ञान के इस अमृतमय सार का संग्रह किया। इस तरह उन्होंने अपने अनेक भक्तों को आनन्दसागर से यह अमृत प्रदान किया है और उनकी कृपा से उन्होंने इसका पान किया है।(११.२९.४९)

४७.श्री भागवत प्रकट प्रकाशकाले दारुकोक्ति

अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा
दिशो न जाने न लभे च शान्तिं यथा निशायामुडुपे प्रणष्टे

दारुक ने कहा : जिस तरह चन्द्रविहीन रात में लोग अंधकार में धँस जाते हैं और अपना रास्ता नहीं ढूँढ पाते हे प्रभु, अब मुझे आपके चरणकमल नहीं दिखते, मैं अपनी दृष्टि खो चुका हूँ और अंधकार में अंधे की तरह घूम रहा हूँ। न तो मैं अपनी दिशा बता सकता हूँ न कहीं कोई शान्ति पा सकता हूँ।(११.३०.४३)
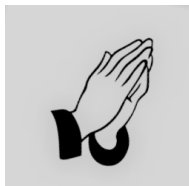
१०.श्री मार्कन्डेय स्तवः

श्रीमार्कण्डेय उवाच

किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि
स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः

श्री मार्कण्डेय ने कहा : ''हे सर्वशक्तिमान प्रभु, भला मैं आपका वर्णन कैसे कर सकता हूँ ?'' आप प्राणवायु को जागृत करते हैं, जो मन, इन्द्रियों तथा वाक्-शक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। यह सारे सामान्य बद्धजीवों पर, यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिव जैसे महान् देवताओं पर भी, लागू होता है। अतएव यह निस्सन्देह, मेरे लिए भी सही है। तो भी, आप अपनी पूजा करने वालों के घनिष्ठ मित्र बन जाते हैं।(१२.८.४०)

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै
नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः

हे भगवान्, आपके ये दो साकार रूप तीनों जगतों को परम लाभ प्रदान करने के लिए—भौतिक कष्ट की समाप्ति तथा मृत्यु पर विजय के लिए—प्रकट हुए हैं। हे प्रभु, यद्यपि आप इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं और इसकी रक्षा करने के लिए नाना प्रकार के दिव्य रूप धारण करते हैं, किन्तु आप इसे निगल भी लेते हैं जिस तरह मकड़ी पहले जाल बुनती है और बाद में उसे निगल जाती है।(१२.८.४१)

तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरङ्घ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः स्पृशन्ति
यद्वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै

चूँकि आप सारे चर तथा अचर प्राणियों के रक्षक तथा परम नियन्ता हैं, इसलिए जो भी आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, उसे भौतिक कर्म, भौतिक गुण या काल के दूषण छू तक नहीं सकते। जिन महर्षियों ने वेदों के अर्थ को आत्मसात् कर रखा है, वे आपकी स्तुति करते हैं। आपका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए वे हर अवसर पर आपको नमस्कार करते हैं, निरन्तर आपको पूजते हैं और आपका ध्यान करते हैं।(१२.८.४२)

नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितोभिय ईश विद्मः
ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्धधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम्

हे प्रभु, ब्रह्मा भी, जोकि ब्रह्माण्ड की पूरी अवधि तक अपने उच्च पद का भोग करता है, काल के प्रवाह से भयभीत रहता है। तो उन बद्धजीवों के बारे में क्या कहा जाय जिन्हें ब्रह्मा उत्पन्न करते हैं। वे अपने जीवन के पग-पग पर भयावने संकटों का सामना करते हैं।मैं इस भय से छुटकारा पाने के लिए आपके चरणमलों की जोकि साक्षात् मोक्ष स्वरूप हैं शरण ग्रहण करने के सिवाय और कोई साधन नहीं जानता।(१२.८.४३)

तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य
देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रम् विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम्

इसलिए मैं भौतिक शरीर तथा उन सारी वस्तुओं से, जो मेरी असली आत्मा को प्रच्छन्न करती हैं, अपनी पहचान का परित्याग करके आपके चरणकमलों की पूजा करता हूँ। ये व्यर्थ, अयथार्थ तथा क्षणिक आवरण, आपसे जिनकी बुद्धि समस्त सत्य को समेटने वाली है, पृथक् कल्पित मात्र किये जाते हैं। परमेश्वर तथा आत्मा के गुरु स्वरूप आपको प्राप्त करके मनुष्य प्रत्येक वांछित वस्तु प्राप्त कर लेता है।(१२.८.४४)

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य
लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम्

हे प्रभु, हे बद्धजीव के परम मित्र, यद्यपि इस जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार के लिए आप सतो, रजो तथा तमोगुणों को जो आपकी मायाशक्ति हैं, स्वीकार करते हैं? किन्तु बद्धजीवों को मुक्त करने के लिए आप सतोगुण का प्रयोग करते हैं। अन्य दो गुण उनके लिए कष्ट, मोह तथा भय लाने वाले हैं।(१२.८.४५)

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति
यत्सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत्

हे प्रभु, चूँकि निर्भीकता, आध्यात्मिक सुख तथा भगवद्धाम—ये सभी सतोगुण के द्वारा ही प्राप्त किये जाते हैं इसलिए आपके भक्त इसी गुण को आपकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति मानते हैं, रजो तथा तमोगुण को नहीं। इस तरह बुद्धिमान व्यक्ति आपके प्रिय दिव्य रूप को, जोकि शुद्ध सत्व से बना होता है, आपके शुद्ध भक्तों के आध्यात्मिक स्वरूपों के साथ पूजा करते हैं।(१२.८.४६)

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदैवताय
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय

मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ। वे ब्रह्माण्ड के सर्वव्यापक तथा सर्वस्व हैं और उसके गुरु भी हैं। मैं भगवान् नारायण को नमस्कार करता हूँ जो ऋषि के रूप में प्रकट होने वाले परम पूज्य देव हैं। मैं सन्त स्वभाव वाले नर को भी नमस्कार करता हूँ जो मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, जो पूर्ण सात्विक हैं, जिनकी वाणी संयमित है और जो वैदिक ग्रन्थों के प्रचारक हैं।(१२.८.४७)

यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः सन्तं स्वकेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु
तन्माययावृतमतिः स उ एव साक्षाद् आद्यस्तवाखिलगुरोरुपसाद्य वेदम्

भौतिकतावादी की बुद्धि उसकी धोखेबाज इन्द्रियों की क्रिया से विकृत रहती है, इसलिए वह आपको तनिक भी पहचान नहीं पाता यद्यपि आप उसकी इन्द्रियों तथा हृदय में और उसकी अनुभूति की वस्तुओं में सदैव विद्यमान रहते हैं। मनुष्य का ज्ञान आपकी माया से आवृत होते हुए भी, यदि वह, सबों के गुरु आपसे, वैदिक ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह आपको प्रत्यक्ष रूप से समझ सकता है।(१२.८.४८)

यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः
तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम्

हे प्रभु, केवल वैदिक ग्रंथ ही आपके परम स्वरूप का गुह्य ज्ञान प्रकट करने वाले हैं, अतएव भगवान् ब्रह्मा जैसे महान् विद्वान भी आगमन विधियों द्वारा आपको समझने के प्रयास में मोहित हो जाते हैं। हर दार्शनिक अपने विशेष चिन्तनपरक निष्कर्ष के अनुसार आपको समझता है। मैं उन परम पुरुष की पूजा करता हूँ जिनका ज्ञान बद्धात्माओं के आध्यात्मिक स्वरूप को आवृत करने वाली शारीरिक उपाधियों से छिपा हुआ है।(१२.८.४९)